स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा शिक्षण

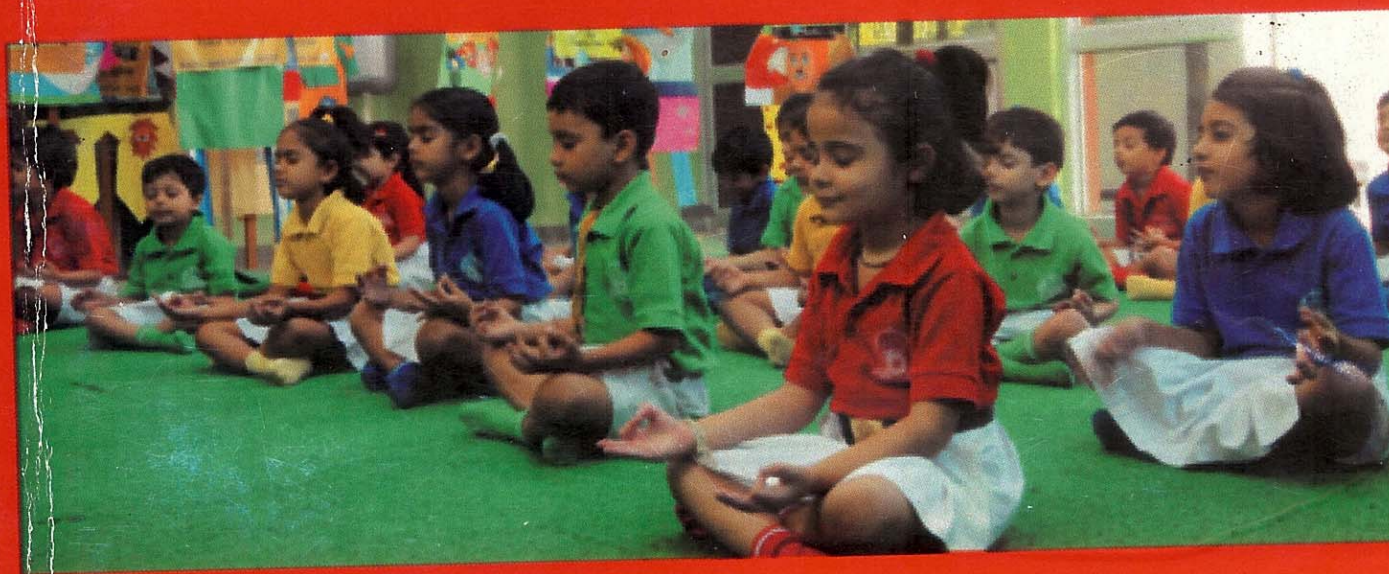

डॉ. कृष्णकांत साहू

स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा शिक्षण

स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा शिक्षण

डॉ. कृष्णकांत साहू

एसो. प्रोफेसर एवं असिस्टेंट डायरेक्टर
एमिटी स्कूल ऑफ फिजिकल एजूकेशन एण्ड स्पोर्ट्स साइंसेज
एमिटी यूनिवर्सिटी, नोएडा

GLOBE
ग्लोब पब्लिकेशन्स

ISBN : 978-81-8378-069-8

पुस्तक	:	स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा शिक्षण
लेखक	:	डॉ. कृष्णकांत साहू
प्रकाशक	:	ग्लोब पब्लिकेशन्स 483/21, रिजवी रोड, कानपुर
संस्करण	:	प्रथम, 2015
सर्वाधिकार	:	सुरक्षित
मुद्रण	:	रोशन आफसेट, दिल्ली
मूल्य	:	एक सौ अस्सी रुपये मात्र (Rs. 180.00)

भूमिका

'समुदाय का स्वास्थ्य' यह दो शब्दों के मेल से बना है–समुदाय और स्वास्थ्य। अतः इस दिशा में कार्य करने के लिए समुदाय और स्वास्थ्य दोनों के सम्बन्ध में अलग–अलग विशद ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। इसमें समुदाय को स्वास्थ्य सम्बन्धी सभी बातों की जानकारी देना आवश्यक है। जैसे–जीवशास्त्र, रसायन शास्त्र, भौतिक और औषधि शास्त्र। उन्हें यह भी सिखाया जाता है कि कब, क्या, कैसे और कितना खाना, पीना, सोना, जागना चाहिए अथवा किस प्रतिरोधक दवा से कौनसी बीमारी रोकी जा सकती है। अथवा मच्छरों को क्यों, कैसे, किस प्रकार से मारा जा सकता है। केवल इन बातों का ज्ञान ही समुदाय सम्बन्धी ज्ञान नहीं है, उन्हें समाज का ज्ञान भी होना चाहिये तभी समुदाय स्वास्थ्य सेवा का कार्यक्रम पूर्ण रूप से सफल हो सकता है।

भारत की अधिकांश जनसंख्या गाँवों में निवास करती है, जहाँ न तो शिक्षा के उचित साधन हैं और न ही आधुनिकतम सुविधाएँ। वे लोग आज भी काफी पिछड़े हैं और परम्परानुसार अपना जीवनयापन करते हैं। ग्राम एवं कस्बों की स्वास्थ्य सम्बन्धी परिस्थितियों में सुधार हेतु सर्वप्रथम उनका सर्वे करना आवश्यक है। हम जिस ग्राम या कस्बे में सुधार करना चाहते हैं वह ग्राम शहर से कितनी दूर है? वहाँ पक्की सड़कें, विद्युत, चिकित्सालय, विद्यालय आदि हैं या नहीं तथा उस ग्राम या कस्बे के लोगों की आदतों, परम्पराओं और स्वास्थ्य सम्बन्धी वर्तमान व्यवस्था क्या है, का पता करके ही भावी योजना का निर्माण करना चाहिए। साथ ही यह स्मरण रखना चाहिए कि एक ही ग्राम या कस्बे की योजना सभी गाँवों या कस्बों के लिए एक समान नहीं हो सकती क्योंकि हर ग्राम का सामाजिक स्तर और उसकी मान्यताएँ अलग–अलग हुआ करती हैं। यदि कोई गाँव शहर से काफी दूर और पिछड़ा हुआ है तो वहाँ के निवासियों को शिक्षित करना हमारी प्राथमिक आवश्यकता होगी।

स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यों में पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिए जनता को केवल स्वास्थ्य सम्बन्धी बातों का बतला देना भर ही पर्याप्त नहीं होता, वरन् उसके विचार परिवर्तन द्वारा उनका पूर्ण सहयोग प्राप्त करना आवश्यक होता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य संघ के स्वास्थ्य सम्बन्धी आन्दोलन का सूत्र इस प्रकार है–''व्यक्ति रूप से जनता को, जनता के लिए, जनता के साथ कार्य करना चाहिए।'' इसका अभिप्राय है कि स्वास्थ्य सम्बन्धी जो कार्य किये जायें, जनता जाने, समझे और ऐसे कार्यक्रमों के प्रति केवल अपनी सहानुभूति या अनुमोदन ही नहीं व्यक्त करे बल्कि ऐसे वातावरण का निर्माण हो जिसमें जनता स्वयं उन कार्यों के सफल सम्पादन के लिए प्रयत्नशील हो।''

लेखक

अनुक्रमणिका

1.	सामुदायिक स्वास्थ्य एवं पर्यावरण	1
2.	पर्यावरण स्वास्थ्य	63
3.	व्यक्तिगत एवं सामुदायिक स्वास्थ्य	84
4.	संक्रामक रोग	118
5.	धावक पथ और मैदानी खेल	137
6.	बालक का स्वास्थ्य और विद्यालय	149
7.	विद्यालयों में विभिन्न प्रकार के व्यायाम	161
8.	योग	208
9.	मनोरंजनात्मक एवं शैक्षणिक खेल	233

*****

1

सामुदायिक स्वास्थ्य एवं पर्यावरण

प्रकृति की अनेकानेक अभिव्यक्तियों में मनुष्य सर्वांगीण सुन्दर, सर्वोत्तम तथा सर्वाधिक आश्चर्यजनक रचना है।

प्रकृति के इस अद्‌भुत और विलक्षण व्यक्ति की महान् सम्पत्ति है– सुन्दर स्वास्थ्य। स्वस्थ व्यक्ति के लिए इस विश्व में न कुछ दुर्लभ है और न असम्भव। संसार के समस्त सुख और वैभव स्वस्थ व्यक्ति के संकेत मात्र से एकत्रित हो जाते हैं। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने शरीर को स्वस्थ बनाये रखने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए। इससे पूर्व की व्यक्ति इसे खोकर पछताये या पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न करें, बुद्धिमानी इसमें है कि वह आरम्भ से ही स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहे और स्वास्थ्यप्रद नियमों का जीवन पर्यन्त पालन करे। यदि किसी व्यक्ति के पास रूप-गुण, धन-दौलत, विद्या-बुद्धि, सुन्दर पत्नी, अच्छी नौकरी, मान-सम्मान, मनोरंजन के असीमित साधन और हास-विलास की प्रचुर सामग्री भी हो तो क्या वह स्वास्थ्य के अभाव में इनका उपभोग कर सकता है? एक अस्वस्थ व्यक्ति के लिए भौतिक और पारिवारिक सुखों के उपभोग की बात तो अलग, वह तो धार्मिक और राष्ट्रीय कर्त्तव्यों का निर्वाह भी यथावत नहीं कर सकता।

सामान्यतः स्वास्थ्य का अर्थ रोग मुक्त या स्वस्थ शरीर से लिया जाता है। जिसका शरीर बिना थके काम कर सकता है, चल-फिर सकता है, मेहनत-मजदूरी कर सकता है, भोजन पचा सकता है और जिसकी इन्द्रियाँ तथा मन स्वस्थ है; वह व्यक्ति निरोग या तन्दुरुस्त कहा जाता है। स्वास्थ्य के अर्थ को और स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाओं पर विचार करना उपयुक्त रहेगा।

आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार—"यदि शरीर में वात, पित्त, कफ तीनों दोष सम हों, पाचन संस्थान ठीक हो, रस-रक्त आदि धातुएँ उचित रूप में हों, मूत्र, पसीना नियमित रूप से यथासमय शरीर से निकलते हों, इन्द्रियों के शारीरिक और मानसिक कार्य विधिवत सम्पन्न होते हों और मानसिक प्रसन्नता बनी रहती हो तो ऐसा व्यक्ति स्वस्थ कहा जायेगा।"

अन्तर्राष्ट्रीय-स्वास्थ्य संघ के अनुसार–''स्वास्थ्य रोगों एवं शारीरिक निर्बलताओं की अनुपस्थिति मात्र ही नहीं बल्कि शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक कल्याण की सम्पूर्ण अवस्था है।''

स्पष्ट होता है कि स्वास्थ्य से आशय शरीर, मन और आत्मा का स्वस्थ होना है। इसमें शारीरिक स्वस्थता पर बल दिया जाता है। एक स्वस्थ व्यक्ति में स्फूर्ति, उत्साह, रुचि, कार्यनिष्ठा, रोग का अभाव, स्वस्थ मानसिक दृष्टिकोण, आत्मबल, आत्मविश्वास, संकल्प शक्ति, संयम, साहस निश्चिंतता और परस्पर सहयोग से कार्य करने की योग्यता आदि गुण होते हैं।

व्यक्तिगत स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले तत्त्व

विश्व का हर व्यक्ति सुखी और दीर्घ जीवन चाहता है। सुखी और दीर्घ जीवन के लिये आयुर्वेद के अनुसार,

''सन्तुलित पौष्टिक तथा आरोग्यप्रद आहार, स्वप्न अर्थात् समुचित विश्राम, निद्रा तथा मानसिक शान्ति तथा ब्रह्मचर्य या नियमानुकूल संयम या ओज की रक्षा।'' दूसरे शब्दों में स्वास्थ्यप्रद भोजन, नियमानुकूल निद्रा या विश्राम और धर्मानुकूल ब्रह्मचर्य पालन, संयम और शुद्धाचरण जीवन निर्माण की तीन कुंजियाँ हैं। और जो कुछ इनके विपरीत है, वही रोग या बिमारी का मुख्य कारण हैं। व्यक्तिगत स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्त्व तीन ही हैं– आहार, स्वप्न और ब्रह्मचर्य। यहाँ हम इनका विस्तार से वर्णन करेंगे।

(1) आहार—भोजन हमारे शरीर की प्राथमिक आवश्यकता है। इसके अभाव में हमारे प्राण संकट में पड़ सकते हैं। हम जो कुछ खाते हैं, उससे शरीर को कई ऐसे तत्त्व प्राप्त होते हैं, जो इसके लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। किसी भी यंत्र संचालित करने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है।

शरीर रूपी भोजन से शक्ति ग्रहण करता है। निरन्तर कार्यरत यन्त्र में तोड़-फोड़ या घिसावट भी होती है, उसको ठीक करना भी आवश्यक होता है। हमारे शरीर में कार्य करने से शक्ति का जो अपव्यय या घिसावट होती है उसकी मरम्मत भी भोजन से प्राप्त तत्त्वों से ही होती हैं। आहार से शरीर को निम्नलिखित पाँच लाभ होते हैं-

(1) यह शरीर के बाहरी और भीतरी अंगों को कार्यक्षमता प्रदान करने के लिए ऊर्जा का कार्य करता है।

(2) यह शरीर के कोषों का पोषण करता है, उनकी मरम्मत और पुन-निर्माण करता है।

(3) शरीर के ताप को बनाये रखता है।

(4) शरीर के विकास में सहयोग करता है।

(5) शरीर की जीवनी और रोगनिवारक क्षमता को बढ़ाता है।

अत: आवश्यक है कि हमारा भोजन पौष्टिक, सन्तुलित और आरोग्यवर्द्धक हो। उसमें भोजन के सभी आवश्यक तत्त्व कार्बोहाइड्रेट्स् , प्रोटीन, वसा, खनिज लवण, जल, रासायनिक पदार्थ और प्राणवायु अपेक्षित रूप से हो।

भारतीय शास्त्रों में आहार को तीन श्रेणियों में बांटा गया–सात्विक, राजस और तामस। इनमें सात्विक आहार श्रेष्ठ होता है। राजसी पोषक तत्त्व विहीन होने के कारण परिणाम में दु:खों और रोगों को उत्पन्न करते हैं तथा तामसी भोजन शरीर, मस्तिष्क और मन के लिए अत्यन्त अनुपयुक्त और स्वास्थ्य के लिए अत्यधिक हानिकारक होता है।

(2) निद्रा व विश्राम—निद्रा एक प्राकृतिक आवश्यकता है । निद्रा या विश्राम शरीर के लिए कितना आवश्यक है उतना ही मस्तिष्क के लिए भी। किसी यंत्र या मशीन को ठीक–ठीक रखने के लिए जिस प्रकार विश्राम आवश्यक होता है, उसी प्रकार शरीर, मन और मस्तिष्क को स्वस्थ, स्फूर्तिवान और गतिशील बनाये रखने के लिए विश्राम चाहिए।

आयु और आवश्यकता के अनुसार 6 से 8 घण्टे तक के लिए विश्राम और आवश्यक होती है। निद्रा प्रगाढ़ या बाधा रहित होनी चाहिए। बाधा रहित निद्रा थकावट दूर करने के अतिरिक्त प्रसन्नता, पुष्टि, स्वास्थ्य और बल के लिए भी आवश्यक होती है।

कुछ व्यक्ति अनिद्रा रोग से पीड़ित होते हैं। नींद के लिए उन्हें प्राय: नींद की गोली, मदिरापान या अन्य कृत्रिम साधनों का सहारा लेना पड़ता है, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का तो ह्रास करते ही है, इनके उपयोग से कभी–कभी व्यक्ति को अपने प्राणों से भी हाथ धोना पड़ जाता है।

(3) मानसिक सन्तुलन—कार्य को कुशलतापूर्वक सम्पादित करने के लिए मानसिक सन्तुलन का होना आवश्यक है। ट्रेफिक नियमों में एक सामान्य संकेत है–**'सावधानी हटी, दुर्घटना घटी।** यह सावधानी ही मानसिक सन्तुलन है। इसके असन्तुलित होते ही सब कुछ गडबड़ा जाता है। मानसिक सन्तुलन को बनाये रखने के लिए तनाव से मुक्ति, निश्चितता, सद्विचार, सदाचार, सद्ग्रन्थों का अध्ययन, सत्संग, दया, करुणा, अहिंसा का व्यवहार और ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि का त्याग आवश्यक है।

(4) ब्रह्मचर्य का नियमानुकूल संयम—जीवन में स्वास्थ्य, सुचरित्र और समृद्धि का सर्वोत्कृष्ट साधन है–ब्रह्मचर्य। दीर्घायु और रोगों से मुक्ति पाने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य होता है, महात्मा गाँधी के अनुसार– मन, वचन और कर्म से हर समय और हर स्थान में सम्पूर्ण इन्द्रियों का संयम ही ब्रह्मचर्य है।

"पूर्ण ब्रह्मचर्य पुरुष हों या स्त्री, पूर्णतया निष्पाप होते हैं। इसलिये वे परमात्मा के निकट होते हैं। वे परमात्मा के समान होते हैं।"

महात्मा गाँधी के अनुसार ब्रह्मचर्य के साधन हैं—(1) मन, वचन और कर्म से कामलिप्सा से मुक्ति, (2) इन्द्रियों का संयम, (3) पवित्र साथी, पवित्र मित्र और पवित्र पुस्तकें, तथा (4) प्रार्थना। ब्रह्मचर्य के थोड़े या बहुत पालन पर संसार अवलम्बित है। इस सत्य का अर्थ है कि ब्रह्मचर्य आवश्यक और सम्भव है।

(5) शारीरिक स्वच्छता—शारीरिक स्वच्छता शरीर को निरोग रखने के लिए महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि स्वच्छता के अभाव में शरीर अनेक रोगों का शिकार हो जाता है। रोगाणु स्वभाव से ही गन्दगी पसन्द होते हैं। अत: उत्तम स्वास्थ्य के लिये नियमित स्नान, त्वचा की सफाई, दाँत, नाखून, बाल, आँख, नाक, कान आदि की सफाई अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। शारीरिक अस्वच्छता ही रोग की जननी है।

(6) वस्त्र—वस्त्रों का भी हमारे स्वास्थ्य से निकट का सम्बन्ध हैं। केवल शरीर की सजावट के साधन ही नहीं वरन् शरीर के तापमान को संतुलित रखने और ऋतु परिवर्तन से होने वाले रोगों से भी हमारी रक्षा करते हैं। शीतकाल में ऊनी ग्रीष्म ऋतु में हलके या सफेद वस्त्र अधिक सुखकर होते हैं। रबर या नायलान के वस्त्र हमारे लिए हानिकारक होते हैं, क्योंकि उनमें पसीना सोखने की शक्ति नहीं होती है।

त्वचा से सटे हुए व्यवहार में लाये जाने वाले वस्त्र, जैसे-जाघियाँ व, गंजी, बनियान चोली आदि श्वेद और त्वचा के मेल को संग्रह करते हैं। अतएव इनकों बराबर धोते-फीचते और बदलते रहना परमावश्यक है।

(7) **आदतें**—आदतें मुख्यता दो प्रकार की होती हैं-अच्छी और बुरी। अच्छी आदतें मनुष्य को निरोग और दीर्घायु बनाती है जबकि बुरी आदतें कमजोर और अल्पायु। सूर्य उगने से पहले उठना, खुले मैदान में टहलना, नित्य स्नान करना इत्यादि अच्छी आदतें है जबकि जहाँ-तहाँ थूकना, झुककर बैठना, नशाखोरी आदि बुरी आदतें हैं।

(8) **व्यायाम और खेलकूद**—व्यायाम और खेलकूद भी भोजन और विश्राम की तरह हमारे लिए आवश्यक हैं, पर इनकी मात्रा अल्प अवस्था व शारीरिक अवस्था के अनुकूल इस प्रकार से नियंत्रित हो कि आवश्यक थकान पैदा न हो। जिन्हें दिन भर मेज के पास बैठकर काम करना पड़ता है उनके लिए तेजी के साथ टहलना, चलना और तैरना अच्छा व्यायाम है।

व्यायाम करने से हमें निम्नलिखित चार लाभ होते हैं—

(i) मांसपेशियाँ और नसें मजबूत होती हैं।

(ii) खून की गति तीव्र हो जाने के कारण वह देह के समस्त अवयवों तक पहुँच जाता है।

(iii) शरीर से पसीना छूटने से अन्दर का विकार बाहर निकलकर शरीर को स्वस्थ और फुर्तीला बनाता है।

(iv) कसरत करने से अच्छी भूख लगती है और गहरी नींद आती है।

पर्यावरण स्वास्थ्य की व्याख्या में जाने से पूर्व पहले इसकी सर्वमान्य परिभाषा जान लेना उचित होगा। विश्व स्वास्थ्य संघ (W.H.O.) द्वारा आयोजित विशेषज्ञों की एक समिति ने सन् 1950 में एक विषय पर जो विवरण प्रकाशित किया था, उसमें इसकी परिभाषा निम्न प्रकार से दी गई है—

अर्थात् "सम्पूर्ण परिवेश की सफाई का अर्थ है—मनुष्य के आस-पास की उन समस्त चीजों का नियंत्रण जो उसके विकास, स्वास्थ्य और वायु पर बुरा प्रभाव डालती हो या डाल सकती हो।"

उपर्युक्त समिति ने इसके अन्तर्गत निम्न आठ चीजों के नियंत्रण की योजना उपस्थित की—

(1) मल-मूत्र, नालियाँ और कूड़ा-कर्कट की सफाई का समुचित प्रबन्ध।

(2) जल प्राप्ति के विभिन्न साधनों का समुचित प्रबन्ध जिसके शुद्ध व स्वच्छ जल प्राप्त हो सके।

(3) गृह निर्माण सम्बन्धी नियन्त्रण जिससे भविष्य में केवल ऐसे ही घर बनाये जायें जो स्वास्थ्यप्रद हों, तथा जिनमें छूत की बीमारियों के फैलने की सम्भावनायें कम हों।

(4) दूध व अन्य खाद्य सामग्रियों की देखभाल।

(5) व्यक्तिगत सफाई के लिए जनता की अभिरुचि और ज्ञान की अभिवृद्धि जिससे रोगों के शुरुआत की सम्भावनाएँ कम हों।

(6) ऐसे कीड़े-मकोड़े, चूहे तथा अन्य छोटे-मोटे जानवर और अन्य जीव-जन्तु जो मनुष्यों में बीमारी फैलाते हैं, उन पर नियंत्रण।

(7) इस बात की देखरेख करना कि बड़े-बड़े कल कारखाने, लघु निर्माण शालाएँ उनमें काम करने वालों का निवास स्थान, सड़क, शौचालय, नालियाँ तथा उनके आस-पास का वातावरण स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से निर्दोष हो।

अब हम ग्राम और कस्बों की स्वास्थ्य सम्बन्धी परिस्थितियों के सुधार की आवश्यकता पर विचार करेंगे।

(1) ग्राम एवं कस्बों की स्वास्थ्य सम्बन्धी परिस्थितियों में सुधार की आवश्यकता–

भारत की अधिकांश जनसंख्या गाँवों में निवास करती है, जहाँ न तो शिक्षा के उचित साधन है और न ही आधुनिकतम सुविधाएँ। वे लोग आज भी काफी पिछड़े हैं और परम्परानुसार अपना जीवनयापन करते हैं। ग्राम एवं कस्बों की स्वास्थ्य सम्बन्धी परिस्थितियों में सुधार हेतु सर्वप्रथम उनका सर्वे करना आवश्यक है। हम जिस ग्राम या कस्बे में सुधार करना चाहते है वह ग्राम शहर से कितनी दूर है? वहाँ पक्की सड़कें, विद्युत, चिकित्सालय, विद्यालय आदि हैं या नहीं तथा उस ग्राम या कस्बे के लोगों की आदतों, परम्पराओं और स्वास्थ्य सम्बन्धी वर्तमान व्यवस्था क्या है, का पता करके ही भावी योजना का निर्माण करना चाहिए। साथ ही यह स्मरण रखना चाहिए कि एक ही ग्राम या कस्बे में योजना सभी गाँवों या कस्बों के लिए एक समान नहीं हो सकती, क्योंकि हर ग्राम का सामाजिक स्तर और उसकी मान्यताएँ अलग-अलग हुआ करती हैं। यदि कोई गाँव शहर से काफी दूर और पिछड़ा हुआ है तो वहाँ के निवासियों को शिक्षित करना हमारी प्राथमिक आवश्यकता होगी। ग्राम व कस्बों की स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें आती हैं—

(1) मल-मूत्रादि और कूड़े-कर्कट का निराकरण।

(2) पीने के पानी का सुप्रबन्ध। क

(3) भोजन सम्बन्धी सफाई।

(4) गृह-प्रबन्ध

(5) कीड़ों-मकोड़ों पर नियन्त्रण

(6) मृत-पशुओं का निराकरण

(7) ग्राम समिति

(8) स्वास्थ्य शिक्षा

(1) **मल-मूत्रादि और कूड़े-कर्कट का निराकरण**—देहात के 98% परिवार में निजी पाखाने का प्रबन्ध नहीं होता और लोग खुली जगह में मल त्याग करते हैं। इसके लिए आमतौर से तालाब या नदी का किनारा या आम के बगीचे को चुना जाता है। इन स्थानों का तापमान व नमी हुकवर्म के लार्वों को जीवित रखने व बढ़ाने के लिए उपयुक्त होती है। इसके अतिरिक्त गोबर का ढेर मकान के पास ही कर दिया जाता है जिससे मक्खियों को अपना वंश विस्तार करने में सुविधा होती है। घर का कूड़ा-कर्कट भी आम रास्तों में फेंक दिया जाता है जिससे धूल के कण और किटाणु पानी, भोजन और हवा को दूषित करते है। अत: मल-मूत्र तथा गन्दगी का निराकरण ग्रामीण स्वास्थ्य के लिए

सर्वप्रमुख आवश्यकता है। वर्तमान परिस्थितियों में गाँवों के लिए बोर होल (Bore-hole), ऊषा ग्राम (Usha Gram) और सेफ्टी टैंक (Safty Tank) पाखाने उपयुक्त हैं। घर का कूड़ा-कर्कट और गाय-बैल-घोड़े के मूत्र वगैरह के निराकरण के लिए कम्पोस्टिंग (Composting) सबसे अच्छा आधुनिक तरीका है।

(2) **पीने के पानी का सुप्रबंध**—अधिकाशं गाँवों में पीने के पानी की पूर्ति छिछले तालाब, खुले कुएँ और नदियों के जल से की जाती है। इनका पानी आसानी से गन्दा व दूषित हो जाता है जिससे हैजा, पेचिस, मियादी बुखार आदि फैलने का भय रहता है। देहातों में जल आपूर्ति का उपयुक्त तरीका सुरक्षित कुएँ और नलकूप हैं।

(3) **भोजन सम्बन्धी सफाई**—समुचित स्वास्थ्य शिक्षा के अभाव में ग्रामवासी खाने-पीने की चीजों को खुला छोड़ देते हैं जिससे उन पर धूल के कण और मक्खियाँ बैठकर उन्हें दूषित कर देते हैं। कभी-कभी कुत्ता-बिल्ली भी उन्हें झूठा कर दूषित कर देते हैं। खाने-पीने की चीजों को ढककर रखना चाहिये और उन्हें आवश्यकता के समय ही हाथ लगाना चाहिये।

(4) **गृह प्रबन्ध**—गाँवों में गृह-निर्माण की कोई समुचित व्यवस्था नहीं होती। अधिकांश घरों में खिड़कियों, रोशनदान तथा नालियों का अभाव होता है । रसोईघर से धुआँ निकलने का भी कोई प्रबन्ध नहीं होता, जिससे घर व आस-पास का वातावरण दूषित रहता है। देहातों में स्वास्थ्यकर घरों के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है–

1. घर को गोबर के घोल से नहीं लीपना चाहिये।
2. रसोईघर को सोने या पशु बाँधने के रूप में काम में नहीं लेना चाहिये।
3. हर कमरे में कम से कम दो खिड़कियाँ होनी चाहिए।
4. कूड़ा-कर्कट व गोबर ठीक प्रकार से इकठ्ठे किये जाने चाहिये।
5. नालियों का समुचित प्रबन्ध होना चाहिये।

(5) **कीड़े-मकोड़ों पर नियन्त्रण**—मक्खी, मच्छर चूहों आदि से अनेक रोगों के फैलने की सम्भावना रहती है। मच्छर मलेरिया और चूहे प्लेग रोग के किटाणुओं के वाहक हैं। अत: आवश्यक है कि इन कीटों पर नियन्त्रण रखने के लिए प्रभावशाली रसायनों का उपयोग किया जाना चाहिये।

(6) **मृत पशुओं का निराकरण**—देखा गया है कि गाँवों में मृत पशुओं को किसी स्थान विशेष पर फैंकने के बजाय यों ही छोड़ दिया जाता है जिससे वातावरण दूषित व दुर्गन्धयुक्त हो जाता है। अत: आवश्यक है कि मृत पशुओं को फेंकने का स्थान गाँव से बाहर होना चाहिये।

(7) **ग्राम समिति**—गाँवों में पर्यावरण स्वास्थ्य की देख-भाल के लिए एक ग्राम समिति का गठन किया जाना चाहिये। इसमें उत्साही व कर्मठ युवकों को आगे आकर स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यवस्था को बनाने में सहयोग करना चाहिये। इसमें ग्राम के मुखिया, डिस्पेन्सरी व प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र के चिकित्सक का पूरा सहयोग मिलना चाहिये।

(8) **स्वास्थ्य शिक्षा**—ग्रामीण बालकों, युवकों व स्त्रियों की शिक्षा के लिए विद्यालय और प्रोढ़ शिक्षा केन्द्र होने चाहिये। इनको स्लाइड्स, लघु फिल्मों व पोस्टरों आदि के सहयोग के विषय में शिक्षा दी जानी चाहिये, क्योंकि जब तक ग्रामीणों का इस कार्य में सहयोग नहीं मिलेगा तब तक स्वास्थ्य सम्बन्धी कोई भी योजना न तो आरम्भ ही हो सकती और न ही वह सफ़ल हो पायेगी।

ग्राम व कस्बों के लिए सफाई सम्बन्धी कार्यक्रम बनाते समय कुछ विचारणीय बातें निम्नलिखित हैं-

1. गाँवों में कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता योग्य तथा अनुभवी हों और उन्हें समुचित वेतन दिया जावे।
2. कार्य आरम्भ करने से पूर्व ग्राम या कस्बें की स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकताओं का सर्वेक्षण करा लेना चाहिये।
3. किसी भी तरह के कार्यक्रम की योजना बनाते समय यदि अन्य विभाग या व्यक्तियों से भी परामर्श लेना अपेक्षित हो तो उसे लेने में संकोच नहीं करना चाहिये। कार्यक्रम उपयोगी व ठोस होना चाहिये। दिखावटी व छिछले आयोजन से कोई लाभ होने वाला नहीं है।
4. सभी विभागों को परस्पर मिलकर सहयोग की भावना से कार्य करना चाहिये।
5. जनता को स्वास्थ्य सम्बन्धी शिक्षा देने की उचित व्यवस्था की जानी चाहिये।
6. आवश्यकता पड़ने पर सरकार का भी सहयोग लिया जा सकता है कार्यकर्ताओं को सदा खयाल रखना चाहिए कि उनका कार्य जनता का पथ-प्रदर्शन करना है, उन्हें हाँकना नहीं है।

2. मानवीय अवशिष्टों को हटाने के लिए अद्यतन विधियाँ

त्वचा, मुँख, आँत और गुदा से निकलने वाले अवशिष्टों, पसीना, कफ, थूक और मल-मूत्र को ही मानवीय अवशिष्ट कहा जाता है। पसीना, कफ व थूक आदि के निस्तारण का समुचित स्थान तो स्नानागार ही है। नहाने-धोने से पसीना पानी के साथ बह जाता है। नाक व गला घर के किसी अन्य स्थान पर साफ न करके स्नानागार में ही साफ किया जाना चाहिये। परन्तु मल-मूत्र का निष्कासन का प्रश्न इतना सरल नहीं है। यह एक जटिल और गम्भीर समस्या है। लगभग तीस-चालीस वर्ष से सभी जगह परन्तु ग्राम व

कस्बों में बहुधा अब भी मल-मूत्र त्यागने के लिए घर के बाहर खुले में जाते हैं। यह प्रथा न तो उचित है और न ही वर्तमान में नगरों के लिए यह सम्भव ही है। मल-मूत्र संवाहन की सुव्यवस्था के अभाव में हैजा, टाइफाइड, पेचिस जैसे अनेक रोग फैल जाते है। इन रोगों से पीड़ित व्यक्तियों के मल पर बैठकर मक्खियाँ रोगों के जीवाणुओं को भोज्य पदार्थों के द्वारा स्वस्थ मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट कर देती हैं। इन सबसे बचने के लिए प्रत्येक घर में अच्छे शौचालयों का होना अनिवार्य है।

एक अच्छे शौचालय में निम्नलिखित गुण होने चाहिये—

1. शौचालय इस प्रकार के हों जिनसे मल-मूत्र न तो दिखाई दे और न ही उसकी दुर्गंध फैले।
2. शौचालयों के निकट की भूमि अथवा जल के दूषित होने की जरा भी सम्भावना न हो।
3. मल-मूत्र पर मक्खियाँ न बैठे।
4. सस्ते शौचालय बनाने की व्यवस्था हो जिससे गरीब व ग्रामीण व्यक्ति भी सरलता से शौचालयों का निर्माण करा सकें।

मल निकास की विधियाँ—वर्तमान में मल निकास की दो विधियाँ प्रचलित हैं—

1. शुष्क विधि और 2. जल संवहन विधि।

हमारे देश में अधिकांश कस्बों व नगरों में शुष्क विधि का ही प्रचलन है क्योंकि जल संवहन विधि में जल की अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है। बड़े-बड़े नगरों में जहाँ जल की पर्याप्त अवस्था होती है वहां जल संवहन विधि को अपनाया जाता है।

अब हम दोनों विधियों का विस्तार से वर्णन करेंगे।

शुष्क विधि—इस विधि में मनुष्य का मल-मूत्र श्रम द्वारा संगृहित कर निस्तारण हेतु नगर से बाहर ले जाया जाता है। प्रारम्भ में इस विधि का प्रयोग सम्पूर्ण विश्व में होता था परन्तु अब अधिकांश देशों में जल संवहन विधि को अपना लिया गया है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार तथा स्वास्थ्य ज्ञान में वृद्धि के साथ-साथ हमारे देश में भी जल संवहन विधि को अपनाया जा रहा है परन्तु गाँवों तथा कस्बों में अभी भी शुष्क विधि से ही मल-मूत्र का संग्रह किया जाता है। शुष्क विधि से मल-मूत्र संग्रह करने हेतु देश में विभिन्न प्रकार के शौचालय बनाये जाते हैं, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं-

बाल्टी वाले शौचालय-इस विधि के शौचालय में एक खोखला मंच होता है जिसमें एक छिद्र में होकर मल नीचे फर्श पर एकत्रित होता रहता है। अधिकांश शौचालय में मल एकत्रीकरण के लिए कोई पात्र नहीं होता, कहीं-कहीं मल को सुविधापूर्वक उठाने के लिए मल-मूत्र का संग्रह किया जाता है।

कमोड वाले शौचालय–पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित लोग कमोड वाले शौचालयों का उपयोग करते हैं। यह कुर्सी की तरह का बना होता है। इसमें बैठने के लिए लकड़ी की एक सीट होती है जिसमें से मल निकलने के लिए एक छिद्र होता है। छिद्र के नीचे मल एकत्रित करने हेतु एक पात्र लगा होता है। छिद्र के ऊपर एक ढक्कन भी होता है जिसे प्रयोग करने से पहले खोला व प्रयोग के बाद बन्द किया जा सकता है।

उपर्युक्त दोनों ही प्रकार के शौचालयों में सफाई मजदूर की सेवाओं की नितान्त आवश्यकता होती है। वे ही मल को एकत्रित कर उसे गाँव या नगर से बाहर ले जाने का कार्य करते हैं।

सण्डास विधि—उपर्युक्त शौचालयों के अतिरिक्त कहीं-कहीं सण्डास विधि को भी उपयोग में लाया जाता है। इस विधि के अन्तर्गत जमीन में एक गहरा गड्ढा खोद लिया जाता है और गड्ढे से मल का निष्कासन नहीं किया जाता। वह उसी में पड़ा सड़ता रहता है। इस विधि के प्रयोग में सफाई कर्मियों की सेवाओं की अधिक आवश्यकता नहीं होती।

शुष्क विधि से एकत्रित मल-मूत्र का अन्तिम निस्तारण निम्न विधियों द्वारा किया जाता है—

(1) जलाकर—हमारे देश में अभी यह विधि अधिक प्रचलन में नहीं हैं क्योंकि यह विधि अत्यधिक व्यय साध्य है। इस विधि में मल को कूड़े के साथ मिलाकर या पृथक् से जलाया जाता है। मल को जलाने वाली भट्टी बन्द प्रकार की होनी चाहिये जिससे इसके धुएँ से वायु के दूषित होने का भय नहीं रहे।

(2) गड्ढे में दाबकर—इस विधि में खन्दक या गड्ढे खोदकर मल को दबाया जाता है। इस विधि का प्रयोग उष्ण-कटिबन्धीय प्रदेशों में अधिक किया जाता है। गड्ढे खोदने का स्थान नगर से बाहर होना चाहिये। यह विधि सरल है परन्तु इस विधि में अधिकांश लोग गड्ढे को विधिपूर्वक नहीं भरते जिसके कारण दुर्गन्ध फैलती है तथा मक्खियाँ पनपती हैं।

(3) खाद बनाकर—इस विधि में भी मल-मूत्र को खन्दक में डाला जाता है पर डालने की प्रक्रिया भिन्न होती है। इस विधि में सर्वप्रथम तले में 6 ईंच मोटी कूड़े की तह बिछा दी जाती है। उसके ऊपर मल-मूत्र की 2 ईंच मोटी तह डाली जाती है। इसी क्रम से कूड़ा व मल तब तक क्रमशः भरते जाते हैं जब तक कि खन्दक पूरी तरह से भर नहीं जाती है। सबसे ऊपरी तह में 1 ईंच मोटी कूड़े की तह बिछाते हैं और उसके ऊपर 2 ईंच मोटी मिट्टी की तह बिछाई जाती है। ऐसा करने से दुर्गन्ध व मक्खियाँ नहीं फैल पाती तथा नमी भी बनी रहती है। इस विधि से चार से छह महीने में उत्तम खाद तैयार हो जाती है।

(4) जल संवहन विधि में—मल-मूत्र के निकास की यह सर्वोत्तम विधि है। इस विधि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें मेहतरों द्वारा मल-वाहन का घृणास्पद कार्य नहीं कराया जाता। इस विधि में मल-मूत्र पोर्सलीन की बन्द नालियों से जल द्वारा बहाकर बड़े-बड़े मल बम्बों तक पहुँचाया जाता है। ये बम्बे ढलवा लोहे के बने होते हैं। इनके माध्यम से मल-मूत्र नगर के बड़े नालों में प्रवाहित कर दिया जाता है, इसमें दुर्गन्ध, गन्दगी तथा मक्खियाँ फैलने का भय नहीं रहता।

जल संवहन पद्धति प्रयुक्त शौचालयों के दो मुख्य भाग होते हैं-

1. शौच सीट तथा पात्र 2. जल संवहन विधि

शौच सीट तथा पात्र भी दो प्रकार के होते हैं। एक को भारतीय शैली का और दूसरे को पाश्चात्य शैली का कहते हैं। भारतीय शैली के शौच पात्र पर कूच मारकर बैठने की व्यवस्था होती है जबकि पाश्चात्य पद्धति के शौच पात्र की सीट ऊँची होती है और उस पर कुर्सी की तरह बैठा जाता है।

जल प्रवाह उपकरण में जल डालना होता है जिसमें वह मल को बहाकर बम्बे में ले जाता है। इस विधि में जल की विशेष आवश्यकता होती है। अत: शौचालयों की टंकी को पानी देने के लिए एक बड़ी टंकी मकान की छत पर जल संग्रह हेतु रख दी जाती है।

जिन स्थानों पर जल संवहल के लिए उचित सार्वजनिक व्यवस्था नहीं होती वहाँ सेप्टिक टैंक-एक बड़ा सा गड्ढा खोदकर पक्की ईंटों और सीमेन्ट से बनाया जाता है। यह तीन भागों में बँटा होता है। शौचग्रह से मल-मूत्र को बन्द नालियों द्वारा पहले भाग में भरने दिया जाता है। जब यह भाग भर जाता है तो इसके ऊपर का जल दूसरे भाग में आ जाता है और ठोस पदार्थ पहले ही भाग में नीचे बैठ जाता है। दूसरा भाग भर जाने पर जल तीसरे भाग में पहुँच जाता है जो अपेक्षाकृत साफ होता है। सेप्टिक टैंक के पहले व दूसरे भाग को समय-समय पर साफ कराते रहना चाहिए।

जल संवहन विधि में मल का अन्तिम निस्तारण—इस विधि में सम्पूर्ण नगर के मल-मूत्र को बम्बों द्वारा किसी नाले, नदी या समुद्र में प्रवाहित करा दिया जाता है। विदेशों में बम्बों के गन्दे जल को पुन: साफ किया जाने लगा है तथा गन्दगी व प्रकाश व जलाने के लिए गैसें बनाई जाने लगी हैं।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि मानवीय अवशिष्टों को हटानें के लिए कौन-कौन सी विधि को काम में लाया जाता है। मल-मूत्र के निस्तारण के लिए कोई भी विधि क्यों न अपनाई जावे किन्तु यह महत्त्वपूर्ण तथ्य सदैव स्मरण रखना चाहिये कि उससे गन्दगी, दुर्गन्ध मक्खी, कीटाणु आदि फैलने न पावे। ऐसी स्थिति में ही व्यक्ति स्वस्थ व सुखी जीवन व्यतीत कर सकता है।

3. वायु भूमि एवं पेयजल का रख-रखाव

वायु की उपयोगिता—वायु सभी जीवधारियों के प्राणों का मूलाधार है। जिस प्रकार जीवित रहने के लिए सभी प्राणियों को अन्न तथा जल की आवश्यकता होती है उसी प्रकार वायु भी एक आवश्यक पदार्थ है। अन्न व जल के अभाव में व्यक्ति फिर भी कुछ समय तक जीवित रह सकता है परन्तु हवा के बिना कोई भी प्राणी चार मिनट से अधिक जीवित नहीं रह सकता। वायु न केवल हमारे जीवन के लिए वरन् आग, रोशनी और वनस्पति के लिए भी परम आवश्यक पदार्थ है। यदि हमें हवा नहीं मिले तो हमारे शरीर का रक्त अशुद्ध हो जायेगा और शरीर के विभिन्न अंगों को शक्ति तथा ताप नहीं मिलेगा। परिणामस्वरूप कई रोग, जैसे–चेचक, छोटी माता, खसरा, क्षय रोग, डिफ्थेरिया आदि हो जायेंगे। अत: स्वच्छ हवा सभी जीवधारियों के लिए एक महत्त्वपूर्ण पदार्थ है।

वायु का संगठन–वायु अपने शुद्ध रूप में गंध, रंग व स्वाद रहित होती है। इसमें वजल होता है तथा फैलने व सिकुड़ने की शक्ति भी होती है। वायु कई गैसों का एक यौगिक मिश्रण है। वायु में इन विभिन्न गैसों का प्रतिशत विभिन्न स्थानों पर अलग-अलग होता है। सामान्यत: शुद्ध वायु में इनका मिश्रण निम्नानुसार होता है—

ऑक्सीजन	20.94	प्रतिशत
नाइट्रोजन	79	''
कार्बन-डाइ-ऑक्साइड	0.3 से 0.4	''
ओजोन	0.02	''
हाइड्रोजन आदि	1.01	''

इनके अतिरिक्त वायु में अमोनिया, जलवाष्प, धूल के कण, जीवाणु आदि भी रहते है, जिनका प्रतिशत स्थान-स्थान पर बदलता रहता है।

वायु की अशुद्धियाँ—सामान्यत: वायु में अशुद्धियाँ नहीं होती क्योंकि गैसों में विसरण का गुण होता है। यह वायु जिसमें ऑक्सीजन की मात्रा अधिक कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा कम होती है शुद्ध वायु तथा जिसमें ऑक्सीजन की मात्रा कार्बन-डाई-ऑक्साइड की अपेक्षा कम होती है, उसे अशुद्ध वायु कहते है। अशुद्ध वायु निर्बलता और सुस्ती पैदा करती है। सिर दर्द होना, चक्कर आना, जी मिचलाना, कै होना, भूख की कमी आदि बातें अशुद्ध हवा के कारण ही उत्पन्न होती है। बीमारी व मृत्यु दर बढ़ाने में अशुद्ध वायु का बहुत बड़ा हाथ रहता है। वायु में अशुद्धता निम्नलिखित कारणों से उत्पन्न होती है—

1. श्वसन क्रिया
2. जलने की क्रिया
3. गैसीय पदार्थों का विघटन
4. धूल के कण
5. रोगाणुओं की उपस्थिति

(1) श्वसन क्रिया—सामान्यत: एक आदमी एक मिनट में 19 बार श्वास लेता है और हर श्वास में 360 घन सेन्टीमीटर वायु निकलती है। उच्छवास द्वारा निकली वायु में शुद्ध की अपेक्षा कार्बन-डाई-ऑक्साइड अधिक होती है और लगभग उतने ही 4.37% प्रतिशत ऑक्सीजन की मात्रा कम होती है। श्वास लेते समय फेफड़े के अन्दर उपस्थित अशुद्ध रक्त ऑक्सीजन ग्रहण करता है। रक्त में हीमोग्लोबिन नामक पदार्थ रहता है। जो ऑक्सीजन को शरीर के विभिन्न अंगों में पहुँचाता रहता है। इस प्रकार श्वसन क्रिया द्वारा वायुमंडल में कार्बन-डाइ-ऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है और वह अशुद्ध हो जाती है।

(2) जलने की क्रिया—कोयला, लकड़ी, तेल, मोमबत्ती आदि पदार्थ भी जलने की क्रिया में ऑक्सीजन लेते हैं और कार्बन-डाइ-ऑक्साइड अधिक मात्रा में छोड़ते हैं, जिससे वायु अशुद्ध रहती है।

(3) जैवीय पदार्थों का विघटन—मृत शरीर, वनस्पति पदार्थ आदि सड़ने पर दुर्गन्ध देते हैं और कार्बन-डाइ-ऑक्साइड, अमोनियम, हाइड्रोजन आदि विषैली गैसें उत्पन्न करते हैं। वायु में इस प्रकार की गैसों की उपस्थिति के कारण भोज्य पदार्थ जल्दी ही सड़ जाते हैं।

(4) धूल के कण—धूल के कण तो वायु में प्राय: देखने को मिलते हैं। औद्योगिक क्षेत्रों में ये और भी अधिक होते हैं। ये बहुधा सिलिका, एलुमीनियम, कार्बन-डाइ-ऑक्साइड, क्लोराइड आदि के बने रहते हैं। सूती, लिनन, ऊनी धागों के टुकड़े, कोयले के कण भी वायु में मिलकर उसे दूषित बनाते हैं और श्वास के साथ शरीर में पहुँचकर नाक व गले में खराश व अन्य रोग उत्पन्न करते हैं।

(5) रोगाणुओं की उपस्थिति—टी.बी., इन्फ्लूऐंजा, चेचक, खसरा आदि रोगों के रोगाणु वायु द्वारा ही स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में पहुँचकर उन्हें रोगी बना देते हैं।

अशुद्ध वायु के कुप्रभावों के कारण—वायु के उपर्युक्त अशुद्धियाँ मनुष्य के लिए अत्यन्त हानिकारक होती है। वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि घुटन या बेचैनी का कारण वायु का रासायनिक मिश्रण न होकर वातावरण की निम्नलिखित भौतिक दशाएँ होती हैं—

1. तापमान ऊँचा 2. अत्यधिक आर्द्रता

3. वायु में गति का प्रभाव 4. संक्रमण करने वाले रोगाणुओं की उपस्थिति

अत: वायु की शुद्धता के लिए आस-पास के वातावरण को उपर्युक्त दोषों से मुक्त रखना आवश्यक है जिससे कि मानव शरीर का तापमान सदैव औसत बना रहे और वह सरलता से अपने चर्म के सम्पर्क में आने वाली वायु को गर्म कर सके। सामान्यत: मानव शरीर का तापमान 98.6 फारेनहाइट और कमरों का ताप 55° फा. से 59° फा. होता

है। इस प्रकार शरीर अपने आस-पास की वायु से अधिक गर्म होता है और वह सरलता से आस-पास की वायु को गर्म करके सामान्य बना रहता है। यदि कमरे का ताप अधिक होगा तो वह बेचैनी अनुभव करने लगेगा। यदि कमरे में अत्यधिक नमी होगी तो चर्म के ऊपर से पसीना सूख नहीं पायेगा और शरीर से बहुत कम गर्मी निकलेगी।

वायु में गति का अभाव होने के कारण भी पसीने का वाष्पीकरण नहीं हो पाता। परिणामत: हमें बेचैनी अनुभव होती है। इसी प्रकार रोगाणुओं की उपस्थिति के कारण भी अनेक प्रकार के चर्म रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

वायु की शुद्धता के उपाय

अशुद्ध वायु के कारण अनेक प्रकार के रोग फैलने की आशंका बनी रहती है। अत: स्वस्थ जीवन के लिए शुद्ध वायु का होना परम आवश्यक है। इस दृष्टि से प्रकृति हमारी सबसे बड़ी शुभचिन्तक है। वह वर्षा, आँधी, सूर्य के प्रकाश तथा वायुमंडल स्वत: शुद्ध होता रहता है। परन्तु वर्तमान में वनों की अनियमित कटाई के कारण पर्यावरण का सन्तुलन बिगड़ गया है। साथ ही नगरों में बड़ी-बड़ी फैक्टरियाँ, रासायनिक कारखाने तथा भारी वाहनों के आवागमन के कारण वायु दूषित हो जाती है। आज नाइट्रोजन ऑक्साइड तथा हाहड्रोजन के समयुग्म से निर्मित फोटोकेमिकल ने प्रकृति को कम्बल की तरह ढक लिया है। परिणामस्वरूप सूर्य की पराबैंगनी किरणें पृथ्वी पर नहीं पहुँच पाती हैं एवं पृथ्वी से उठने वाल जहरीली गैसें व धुआँ ऊपर नहीं जा पाता है। ये सब मिलकर वातावरण में हानिकारक पदार्थों को जन्म देते हैं, मनुष्य को शुद्ध हवा से वंचित रखते है। बढ़ता हुआ कैंसर इसी का परिणाम है।

वायु शुद्धि का साधन संवातन–

संवातन का आशय शुद्ध वायु के आने की उचित व्यवस्था है। मकानों, विद्यालयों, सिनेमाघरों आदि ऐसे भवनों में जहाँ व्यक्ति रहते हैं या एकत्र होते हैं। वायु के गमनागमन की उचित व्यवस्था होनी चाहिए जिससे निरन्तर शुद्ध, ताजी, स्वच्छ तथा शीतल वायु प्राप्त हो सके।

संवातन के दो साधन हैं— (1) प्राकृतिक संवातन, (2) कृत्रिम संवातन। प्राकृतिक संवातन के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है–

(1) मकान खुले स्थान पर हों।

(2) मकान के चारों ओर का वातावरण साफ व स्वच्छ हो।

(3) मकानों के आस-पास बड़ी-बड़ी इमारतें व कारखानें न हों।

(4) सड़के व गलियाँ चौड़ी हों।

(5) स्वास्थ्य के लिए हानिकारक उद्योग शहर व गाँव से दूर विशिष्ट गृहों में स्थित हों।

(6) सड़कों व गलियों की उचित समय पर नियमित सफाई हो।

(7) दूषित गैसों, कीटाणुओं तथा धूल कणों को यथाशीघ्र निष्कासित किया जाय।

(8) घरों के दरवाजे व खिड़कियाँ आमने-सामने हों।

(9) वायु को अन्दर प्रवेश कराने वाले संवातन भूमि के निकट तथा कमरे की वायु को निर्गम करने वाले संवातन ऊपर की ओर छत के निकट होने चाहिए, जिससे विसरण वायु क्रिया व संवहन धाराओं के माध्यम से कमरों में स्वच्छ, शुद्ध व शीतल हवा मिलती रहे।

कृत्रिम संवातन के साधन—कृत्रिम या यांत्रिक संवातन के साधन भारत जैसे गर्म देश में सरलता से अपनाये जा सकते हैं। परन्तु यूरोप जैसे ठंडे देशों में इनका उपयोग नहीं किया जा सकता। यांत्रिक साधनों में निर्वात पद्धति, प्लेटीनम पद्धति और मिली-जुली पद्धति को अपनाया जाता है। वर्तमान समय में सिनेमाघरों, औद्योगिक संस्थाओं और शोध प्रयोगशालाओं में संवातन की नवीन पद्धति वातानुकूलन का उपयोग किया जा रहा है। कृत्रिम संवातन की विधियाँ अधिक खर्चीली हैं। इसलिए इनका उपयोग सम्पन्न परिवारों तथा सार्वजनिक स्थानों पर ही अधिक किया जाता है।

भूमि का रख-रखाव

पत्थर और चेतनायुक्त पदार्थ नष्ट होकर भूमि निर्माण करते हैं। ये पदार्थ पृथ्वी की ऊपरी परत को ऊपर से ढके रहते हैं। भूमि का चेतनायुक्त पदार्थ की एक बड़ी राशि को (जिससे छूत वाली बीमारी फैल सकती है) सड़ाकर निर्दोष बनाती रहती है। भूमि की ऊपरी सतह जीवित प्राणी की तरह कार्य करती है। कूड़ा-कर्कट आदि को सड़ाने-गलाने जैसा महत्त्वपूर्ण कार्य भूमि स्थित जीवाणु करते हैं। यदि ऐसा न हो तो मनुष्य के लिए भूमि पर रह सकना असम्भव हो जाता।

भारतीय भूमि

(1) पत्थर के रूपान्तर होने से प्राप्त भूमि।

(2) एक ही प्रकार की चट्टान से निर्मित होने वाली मिट्टी।

(3) अवसाद शैल से प्राप्त होने वाली मिट्टी।

(4) कछारी मिट्टी।

कूड़ा-करकट से भरी गई जमीन सामान्यतः बेकार पोखरों, खड्डों, खन्दक या अन्य प्रकार के गड्ढों को कूड़ा करकट से भरकर तैयार की भूमि को प्रस्तुत जमीन या मेड स्वायल (Made Soil) कहते हैं।

प्रस्तुत जमीन सम्बन्धी सावधानियाँ—

(1) प्रस्तुत जमीन को अच्छी तरह सूखने के लिए छोड़कर जलविहीन हो जाने देना

(2) भराई का कार्य शीत ऋतु में करना चाहिए जिससे ग्रीष्म ऋतु में उसे अन्दर का जल स्वत: सूख जाय।

(3) यदि गड्ढा काफी बड़ा हो तो भरावट एक बार न करके सतह दर सतह करनी चाहिए।

(4) भरावट धरती की सतह से लगभग दो फीट ऊपर होनी चाहिए, जिससे वह बाद में बैठकर सतह के बराबर आ जाये।

(5) भरावट की हर सतह पर कूड़ा-करकट को अच्छी तरह बैठ जाने का अवसर देना लाभदायक होगा।

(6) भरावट के बाद लगभग दस वर्ष तक ऐसी जमीन को परती छोड़ देने के बाद ही गृह-निर्माण का कार्य उत्तम होता है।

(7) धरती की भीतरी नमी को सोखने के लिए परती जमीन पर तरकारी व अन्य पौधों को काफी अन्तर देकर लगाना चाहिए।

भूमिगत रोग

ये चार प्रकार के होते हैं-(1) कृमि रोग (2)हैजा, पेचिश व मियादी बुखार (3) घनुषटंकार (4)और वात व्याधि।

भूमि की सुरक्षा के लिए भूमि प्रदूषण को रोकना अत्यन्त आवश्यक है। भूमि पर बढ़ता जा रहा जनसंख्या दबाव, वृक्षों की कटाई के कारण भूमि का कटाव, बाढ़ आदि भूमि प्रदूषण के मुख्य कारण हैं। जनसंख्या नियन्त्रण व वृक्षारोपण के द्वारा इस प्रदूषण से काफी हद तक मुक्ति मिल सकती है।

जल का रख-रखाव

''रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।'' सचमुच जीवन के लिए जल अत्यन्त आवश्यक पदार्थ है। भोजन के बिना मनुष्य 40 दिन तक जीवित रह सकता है, परन्तु जल के अभाव में वह अधिक से अधिक 6 दिन ही जीवित रह सकता है। मानव शरीर भी मुख्यत: जल से ही बना है। शरीर के सम्पूर्ण भार का लगभग 70-71 प्रतिशत भाग जल ही होता है। जल का उपयोग केवल भोजन और पीने तक ही सीमित नहीं है अपितु हमारे नहाने, वस्त्र धोने, घर की सफाई करने, गली, नाली व सड़क को स्वच्छ रखने के लिए भी जल की आवश्यकता होती है। हमारे पालतू जानवरों के जीवन तथा उनके शरीर की सफाई भी जल पर ही निर्भर करती है। अत: जल हमारे लिए बहुत ही उपयोगी है।

मानव शरीर में जल के कार्य

(1) जल रक्त को समुचित तरल अवस्था में बनाये रखता है। जल की कमी से रक्त गाढ़ा हो जाता है जिससे शरीर में अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

(2) जल, शरीर में उत्पन्न होने वाले रसों को तरलता प्रदान करता है।

(3) जल पाचन क्रिया में सहायता देता है।

(4) जल में शरीर का तापमान समान रहता है।

(5) शरीर में कोशिकाओं के टूटने-फूटने तथा अपच विषैले पदार्थ हर समय बना करते हैं। जल इन विषैले पदार्थों को मल मूत्र व पसीने के द्वारा बाहर निकालता है। यदि जल की मात्रा कम हुई तो यह विष रक्त में मिल जाता है और अनेक रोग उत्पन्न करता है।

दूषित जल और बीमारियाँ–जिस प्रकार से जल जीवित रहने के लिए अत्यन्त उपयोगी है, वैसे ही हैजा, टाइफाईड, पेचिश और कई अन्य संक्रामक रोगों के फैलने का एक सशक्त माध्यम भी है। कच्चा जल विभिन्न वस्तुओं के संसर्ग में आने के कारण दूषित हो जाता है। चूँकि सब लोग प्राय: कच्चे जल को ही उपयोग में लाते है। अत: उचित सावधानी बरतने की अत्यन्त आवश्यकता है। हमारे देश में दूषित जल के व्यवहार के कारण प्रतिवर्ष अनेक व्यक्ति हैजा, टाइफाईड जैसे रोगों से असमय ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए शुद्ध जल का रख रखाव और उसकी जानकारी बहुत ही आवश्यक है।

जल प्राप्ति के स्त्रोत—वास्तव में जल प्राप्ति का मुख्य स्त्रोत समुद्र है। समुद्र का यह जल वाष्प बनकर उड़ता रहता है और वर्षा के रूप में पुन: पृथ्वी पर आ जाता है। वर्षा का यह जल ही हमें तालाब, नदी, झीलों, झरनों, कुओं आदि के रूप में मिलता है जिसे हम अपने दैनिक कार्यों में प्रयोग करते हैं। वर्षा का जल बादलों से निकलते समय पूरी तरह शुद्ध होता है, परन्तु भूमि पर आने से पूर्व वायु में उपस्थित अशुद्धियाँ गैसें, कोयले, धूल के कण आदि उसमें मिलकर उसे दूषित बना देते हैं। अत: स्त्रोतों से प्राप्त जल को उपयोग में लेने से पहले सावधानी बरतना और उसे शुद्ध करके काम लेना आवश्यक है।

जल के दूषित होने के कारण–स्वास्थ्य की दृष्टि से तालाब व पोखरों का जल पीने के लिए अच्छा नहीं होता, क्योंकि इसके कारण जल में अशुद्धियाँ अधिक होती है। तालाब व पोखरों के जल में अशुद्धियाँ अधिक होती है। तालाब व पोखरों के जल में अशुद्धियाँ निम्न कारण से होती हैं–

(1) मनुष्यों द्वारा इनके किनारे और आस-पास मल-मूत्र त्याग करना। वर्षा होते ही ये सारे दूषित पदार्थ घुलकर पोखरों में चले जाते हैं और जल को दूषित कर देते हैं।

(2) पालतू जानवरों को इन पोखरों में धोना तथा नहलाना। बहुधा ये पशु उस समय ही पोखरों में मल-मूत्र त्याग कर जल को दूषित कर देते हैं।

(3) धोबियों का पोखरों या तालाबों के घाटों पर कपड़े धोना।

(4) मनुष्यों का उसमें स्नान करना व बर्तन धोना।

(5) शौचादि क्रिया के बाद पोखरों में ही 'पन छुआ' करना।

(6) गाँव की नालियों का विकास तालाब या पोखरों में होना।

(7) आस-पास की झाड़ियों का इनमें सड़ना।

(8) मरे हुए जानवरों की लाशों का जलाशयों के किनारे फेंका जाना।

जल को दूषित होने से बचाने के उपाय

(1) तालाब का निर्माण ऐसे स्थान पर होना चाहिये जहाँ आस-पास गन्दे पानी की नालियाँ, गड्ढे, शौचालय, श्मशान आदि अशुद्धियाँ उत्पन्न करने वाले स्थान न हों।

(2) तालाब के बाहरी किनारे ऊँचे होने चाहिए ताकि बाहर का गन्दा पानी अन्दर न आ सके।

(3) तालाब में जानवरों के प्रवेश को रोकने के लिए चारों और काँटेदार तार लगाना आवश्यक है।

(4) तालाब में यदि कोई वनस्पति उग रही हो तो इसे तुरन्त उखड़वा देना चाहिए।

(5) तालाब के अन्दर नहाने धोने का निषेध होना चाहिये। स्नान-गृह आदि की पृथक् से व्यवस्था होनी चाहिये।

(6) तालाब से जल साफ बाल्टी या पम्प द्वारा ग्रहण करना चाहिए

(7) जहाँ तालाब सार्वजनिक जल पूर्ति के साधन हों वहा पक्के बनाये जाने चाहिए।

(8) तालाब के जल को शुद्ध रखने के लिए उसमें छोटी-छोटी मछलियाँ लानी चाहिए।

(9) तालाब काफी गहरे होने चाहिए। गहरे तालाबों का जल उथले तालाब की अपेक्षा उत्तम होता है।

(10) ऐन्द्रिक अशुद्धियों से बचाने हेतु यदि सम्भव हो तो तालाब को ढकने की व्यवस्था होनी चाहिए। परन्तु वायु के आवागमन हेतु उचित व्यवस्था आवश्यक है। शुद्ध वायु जल की शुद्धि के लिए आवश्यक होती है।

नदी के जल में अशुद्धियाँ होने के कारण–

(1) नदी के किनारे बसे हुए नगरों की गन्दगी और मल गन्दे नालों के रूप में बहकर नदी के जल को अशुद्ध कर देते हैं।

(2) नदी के किनारे के खेतों में जो खाद दी जाती है, इससे भी नदी का जल गन्दा हो जाता है।

(3) किनारों के शहरों के कारखानों से निकला निकृष्ट पदार्थ बहकर नदी के जल को गन्दा करता है।

(4) नदी के मार्ग में पड़ने वाली मिट्टी में जो प्राकृतिक लवण होते हैं उसके जल में घुलकर उसे गन्दा कर देते हैं।

(5) मनुष्यों के नहाने, कपड़ा, बर्तन आदि धोने, जानवरों के नहाने तथा मोटर आदि की सफाई करने से नदी का जल अशुद्ध हो जाता है। रोगी व्यक्ति तथा जानवरों के जल पीने, नहाने से जल में रोग के कीटाणु प्रवेश कर महामारी का रूप धारण कर लेते हैं।

(6) नदी में शव बहा देने की प्रथा भी उसके जल को अशुद्ध कर देती है। तट पर जलाये गये शव और नदी में प्रवाहित उनकी अस्थियाँ व राख नदी के शुद्ध जल को पीने के लिए अनुपयुक्त बनाती हैं।

नदी के जल को अशुद्धियों से बचाने के उपाय—यह एक पुरानी कहावत है कि 'बहता जल गन्दा नहीं होता।' जिस नदी में जल की अधिकता हो तथा जिसमें तीव्र प्रवाह हो, उसका जल सूर्य का प्रकाश, ताप तथा शुद्ध हवा के सम्पर्क में आकर स्वत: ही शुद्ध हो जाता है। सूर्य की किरणों में कीटाणुनाशक गुण होते हैं। नदी में रहने वाले जीव भी जल शुद्धि में सहायक होते हैं। मछली, कछुए तथा मगर आदि बहुत-से जीव ऐन्द्रिक अशुद्धियों को नष्ट करने में भाग लेते है। फिर भी नदियों के जल को पीने आदि में लाने के लिए निम्नलिखित सावधानी रखनी चाहिए।

(1) नदी के किनारे से कम से कम 7 या 10 मीटर दूर पर सार्वजनिक जल पूर्ति हेतु जल संग्रह की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(2) जल-संग्रहालय नदी से लगभग 3 किलोमीटर दूर स्थित होने चाहिए।

(3) जल-ग्रहण करने के स्थान के आस-पास नहाने, धोने, जानवर नहलाने, नगर का मल फेंकने तथा मछली आदि पकड़ने की मनाही होनी चाहिये।

(4) जहाँ पर सरकार या नगरपालिका द्वारा सार्वजनिक जल-संग्रह और जल वितरण की व्यवस्था न हो, वहाँ पर नदी का जल किसी साफ तट पर से

लेकर छानकर या उबालकर ही प्रयोग में लाना चाहिए।

कुओं के जल में अशुद्धियों के कारण

(1) कभी-कभी कुआँ ऐसे स्थान पर होता है जहाँ भूमि के प्रवेश स्तर में दरारें होती हैं जिनसे धरातल का गन्दा और मलयुक्त जल बिना पूर्ण रूप से छने ही अप्रवेश्य स्तर तक पहुँच जाता है। इस अपूर्ण छने जल में घुलनशील ऐन्द्रिक द्रव रह जाते हैं। इससे वहाँ का जल दूषित हो जाता है।

(2) खुले कुओं में पेड़ों की पत्तियाँ, कूड़ा-करकट आदि अशुद्धियाँ गिरने की सम्भावना रहती है। इससे वहाँ का जल दूषित हो जाता है।

(3) यदि कुएँ पर नहाने-धोने के जल के निकास की उचित व्यवस्था न हो और कुएँ की दीवार पक्की न हो तो अशुद्ध जल कुएँ में जाकर उसके जल को दूषित कर देता है।

आदर्श कुआँ—कुएँ के जल को अशुद्धियों से बचाने के लिए उसका निर्माण ही इस तरह से किया जाये, जिससे कि जल में अशुद्धियाँ होने की सम्भावना कम से कम रहे। एक आदर्श कुएँ में निम्नलिखित विशेषताएँ होती है—

(1) कुएँ का निर्माण ऐसे स्थल पर किया जावे जहाँ शौचालय, गन्दे जल के गड्ढे, अस्तबल, गन्दे जल के नाले कम से कम 30 मीटर दूर हों।

(2) कुएँ की भीतरी दीवार पक्की ईंटों या पत्थरों की होनी चाहिए और उसके ऊपर सीमेन्ट का पलस्तर करा देना चाहिए, जिससे इधर-उधर का पानी कुएँ में न आ सके।

(3) कुएँ की दीवार भूमि की सतह से काफी ऊपर तक होनी चाहिए।

(4) कुएँ के चारों ओर ढलावदार पक्का चबूतरा होना चाहिए। चबूतरों का ढलाव बाहर की ओर हो, जिससे बाहर का पानी किसी दशा में भी कुएँ के अन्दर न जा सके।

(5) कुआँ काफी गहरा होना चाहिये। कुआँ जितना गहरा होगा उसका जल उतना ही शुद्ध होगा।

(6) कुएँ के आस-पास वृक्ष नहीं होने चाहिये और न ही आस-पास के पेड़ों की जड़े कुएँ की दीवार में से निकलने देना चाहिए। ये जल को गन्दा करती है।

(7) कुआँ ऊपर से ढका होना चाहिए तथा ढक्कन इस प्रकार का होना चाहिए जिससे पेड़-पौधों की पत्तियाँ आदि कुएँ में न जा सके परन्तु हवा का प्रवेश हो सके।

(8) कुएँ के चारों ओर नहाने, बर्तन और वस्त्र धोने पर रोक होनी चाहिए।

(9) कुएँ में पानी खींचने के लिए गन्दी रस्सी व गन्दे बर्तन का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

जल के प्रकार—जल दो प्रकार का होता है— (1) कठोर जल, और (2) मृदु जल। कठोर जल भी दो प्रकार का होता है। एक वह जिसमें अस्थायी कठोरता होती है, दूसरा वह जिसमें स्थायी कठोरता होती है। अस्थायी कठोरता जल को उबालकर अथवा चूने के प्रयोग से दूर की जा सकती है। स्थायी कठोरता को दूर करने के लिए जल में सोडियम कार्बोनेट या कपड़े धोने का साबुन मिलाना चाहिए। कठोर जल पीने के लिए उपयुक्त नहीं रहता। इसके प्रयोग से मन्दाग्नि, पेचिश आदि रोग हो जाते हैं। नहाने, कपड़े धोने तथा खाना पकाने के लिए भी इस जल का उपयोग उचित नहीं होता, क्योंकि इसमें कैल्शियम तथा मैग्नीशियम के लवणं घुले होते हैं। इससे वस्त्र धोने में साबुन भी अधिक खर्च होता है।

मृदु या कोमल जल पीने, खाना पकाने व नहाने-धोने के लिए अति उत्तम होता है। इसमें कैल्शियम कार्बोनेट या सल्फेट बहुत कम मात्रा में होते है या बिल्कुल भी नहीं होत। यह जल पीने में मधुर व स्वादिष्ट होता है।

जल को शुद्ध करने की विधियाँ

सामान्यतः जल को तीन विधियों से शुद्ध किया जा सकता हैं-

(1) भौतिक (2) रासायनिक और (3) यान्त्रिक।

भौतिक विधियाँ

(1) जल को उबालकर—जिस जल के दूषित होन का सन्देह हो, उसे उबालकर पीना चाहिए। इससे जल की कठोरता, जल में उपस्थित रोगों के जीवाणु तथा सभी प्रकार के ऐन्द्रिक पदार्थ नष्ट हो जाते है तथा विषैली गैसें जल से निकल जाती हैं। नदी तालाब, उथले कुएँ आदि का जल उबालकर पीना स्वास्थ्य के लिए उत्तम होता है।

(2) जल का आसवन—इस विधि से पहले जल को उबालकर उसकी भाप बनाते हैं। इसके बाद उस जल को यन्त्रों द्वारा ठण्ड पहुँचाकर उसे जल के रूप में बदल लेते हैं।

(3) अल्ट्रा-वायलेट किरणें—ये किरणें रोग के जीवाणुओं का नाश करती हैं। जल की बड़ी राशि को शुद्ध करने के लिए बड़े-बड़े यन्त्र बनाये गये हैं। इन यन्त्रों से अल्ट्रा-वायलेट किरणें उत्पन्न होती है। ये किरणें जल को शुद्ध करती हैं।

(4) छानना-सामान्य रूप से अवलम्बित अशुद्धियाँ इस विधि द्वारा दूर की जा सकती है।

रासायनिक विधियाँ—रासायनिक पदार्थ दो प्रकार के होते हैं–

(1) अवक्षेपक–जिससे जल में निहित दोष नीचे बैठ जाते हैं, जैसे—फिटकरी, निर्जली आदि।

(2) जीवाणु नाशक— इनके द्वारा जीवाणु तथा अन्य ऐन्द्रिक दोष नष्ट हो जाते हैं, जैसे–पोटैशियम परमैंगनेट, आयोडीन, तूतिया, ओजोन, ब्लीचिंग पाउडर, चूना, क्लोरिन आदि।

यान्त्रिक साधनों द्वारा जल की शुद्धि

घड़ों द्वारा जल का छानना—इस विधि में चार घड़ों को किसी लकड़ी के स्टैण्ड पर एक-दूसरे के ऊपर रख दिया जाता है। ऊपर के घड़ों में एक-एक छोटा छिद्र होता है। पहले घड़े में शुद्ध किया जाने वाला जल भर दिया जाता है, दूसरे के तले में कुछ कोयला पीस कर रख दिया जाता है तथा तीसरे में ऊपर बाल और कंकड़ डाल दिये जाते है। तीनों घड़ों के छिद्रों में थोड़ी रूई या कपड़ा लगा दिया जाता है। सबसे ऊपर के घड़े का पानी धीरे-धीरे तीनों घड़ों में छनता हुआ चौथे घड़े में एकत्र होता है।

जल शुद्ध करने की उपर्युक्त विधि का प्रयोग सन्तोषजनक नहीं है। इस विधि से जल शुद्ध होने के बजाय और अशुद्ध हो जाता है, क्योंकि घड़ों को स्वच्छ रखना प्रायः असम्भव होता है।

फिल्टर विधि—आजकल घरों में जल को शुद्ध करने के लिए फिल्टर विधि का प्रयोग किया जाने लगा है। इस विधि में चेम्बरलेन फिल्टर तथा बर्कफील्ड फिल्टर मुख्य हैं। इनका निर्माण क्ले और पोर्सलेन मिट्टी से किया जाता हैं। इनमें बाहर की ओर ऐवोर्सलेन का बना बर्तन होता है और नीचे की ओर एक नल लगा हुआ होता है। इसमें अन्दर की और एक दूसरा बर्तन ऊपर लटका हुआ होता है। इस बर्तन की तली में क्ले (मिट्टी) के बने हुए सिलिण्डर होते हैं। सिलिन्डर ही जल को शुद्ध करने का कार्य करते हैं। इस विधि द्वारा जल की अशुद्धियाँ सिलिण्डरों के बाहर ही रुक जाती है। रोग के जीवाणु भी इसकी दीवारों से होकर प्रवेश नहीं कर पाते।

इनके सिलिण्डरों को समय-समय पर साफ करते रहना चाहिये। बर्फफील्ड फिल्टर से छनने की क्रिया तीव्र गति से होती है। घरेलू उपयोग के लिए ये फिल्टर पर्याप्त उपयोगी होते हैं।

विद्यालय में उत्तम पर्यावरणीय परिस्थितियाँ बनाये रखने में सहभागिता

विद्यालय की पर्यावरणीय परिस्थितियों से अभिप्राय विद्यालय का आस-पड़ोस, भवन की स्थिति, भवन में गन्दगी, कूड़ा-करकट, मल-मूत्र आदि के निकट की व्यवस्था, स्वच्छ जल की व्यवस्था, हवा एवं प्रकाश की व्यवस्था, बैठने का प्रबन्ध,

खेल-कूद की व्यवस्था तथा कार्य करने की अनुकूल परिस्थितियों से है। यह आवश्यक है कि विद्यालय में उत्तम पर्यावरणीय परिस्थितियाँ बनाये रखने में सभी की सहभागिता हो। किसी भी विद्यालय का नाम मात्र उसके उत्तम भवन से ही नहीं होता वरन् स्वस्थ, अध्ययनशील और पाठ्येत्तर प्रवृत्तियों में उत्साह रखने वाले छात्रों से होता है। इसलिए विद्यालय का पर्यावरण ऐसा हो जो छात्रों का सर्वांगीण विकास करने में सहायक सिद्ध हो सके।

विद्यालय भवन का आस-पड़ोस—विद्यालय भवन ऐसे खुले स्थान पर बनाया जाना चाहिये जहाँ प्रकाश जल व वायु की समुचित व्यवस्था हो तथा उसके आस-पास गन्दी बस्तियाँ, कारखानें, रेलवे स्टेशन, शोरगुल या अधिक आवागमन न हो। विद्यालय भवन के पास कूड़े के ढेर, चमड़े की सफाई, अस्तबल, रबड़ के कार्य आदि की दुर्गन्ध नहीं होनी चाहिये। विद्यालय के आस-पास की भूमि सूखी होनी चाहिए जिससे विद्यालय भवन में सीलन उत्पन्न न हो और बच्चे गले के रोग, ग्रठिया, फुस्फुस के रोग, जुकाम, खाँसी आदि से सुरक्षित रहें।

विद्यालय भवन—विद्यालय भवन में प्राकृतिक संवातन की समुचित व्यवस्था हों तथा वहाँ सूर्य का प्रकाश सहजता से पहुँच सके। भवन में कक्षा-कक्ष, अध्यापक कक्ष, भोजन कक्ष, चिकित्सक के निरीक्षण का कक्ष शौचालय व्यायाम शाला, जलाशय तथा खेल के मैदान की अपेक्षित व्यवस्था हो। विद्यार्थियों के बैठने के लिए आवश्यक फर्नीचर, उपयुक्त श्यामपट्ट व गन्दे जल के निकास की समुचित व्यवस्था हो। खेल के मैदान, पुस्तकालय, वाचनालय, अल्पाहार गृह और पाठ्येत्तर प्रवृत्तियों के पृथक्-पृथक् कक्ष हों। वातावरण शान्त व स्वास्थ्यवर्द्धक हो।

गन्दगी के निकास की व्यवस्था—विद्यालय भवन से गंदगी अर्थात् गन्दे पानी, कूड़ा-करकट तथा मल-मूत्र के निकास की उचित व्यवस्था हो। बच्चों के पीने का पानी शुद्ध तथा जीवाणु रहित हो। नलों के नीचे पानी के निकास के लिए नालियाँ हों। छात्र-छात्राओं के लिए पृथक्-पृथक् शौचालय हों और रद्दी कागज, मिट्टी तथा कूड़ा करकट एकत्र करने के लिए कूड़ापात्र यथेष्ट संस्था में रखे होने चाहिएँ। शौचालयों तथा नालियों की नियमित सफाई होनी चाहिये।

स्वच्छ जल की व्यवस्था—बच्चों के पीने का पानी शुद्ध और मृदु हो तथा उसमें किसी प्रकार के रोगाणु न हों। पानी जिन टंकियों में भरा जावे उनकी नियमित सफाई हो। रसायन डाले जावें और यथासम्भव नलों पर कपड़ा बाँध दिया जावे, जिससे बच्चे छना हुआ, साफ जल पी सके। पीने के पानी की व्यवस्था खुले स्थान पर होनी चाहिए।

शुद्ध हवा एवं प्रकाश की व्यवस्था—विद्यालय के कक्षों में शुद्ध हवा एवं सूर्य के प्रकाश की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। कक्षा-कक्षों में पर्याप्त खिड़कियाँ हों, जिनसे

वायु सरलता से प्रवेश कर सके। रोशनदान एक-दूसरे के आमने-सामने हों तथा कक्षा में छात्रों के बैठने के लिए पर्याप्त स्थान हो। दरवाजे व खिड़कियाँ इस प्रकार से बनाई जावें जिससे कक्षा कक्षों में पर्याप्त प्रकाश प्रवेश कर सके। प्रकाश के अभाव में नेत्र रोग, क्षय रोग तथा सीलन बनी रहने की सम्भावना बनी रहती है।

विद्यालय फर्नीचर—विद्यालय के फर्नीचर का भी बालकों के स्वास्थ्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है। फर्नीचर का आकार-प्रकार व लिखते तथा पढ़ते समय बालकों के बैठने के आसन आदि का भी उनके शरीर के विभिन्न अंगों पर भिन्न प्रकार का प्रभाव डालता है। यदि बैठने के आसन दोष पूर्ण हैं तो बालक के पाचन तंत्र, दृष्टि आदि में भी दोष उत्पन्न होने की संभावना रहती है। यदि अच्छे श्यामपट्ट का प्रयोग नहीं किया जावे तो बालक नेत्र दोष का शिकार होने के साथ-साथ शैक्षिक दृष्टि से भी प्रगति नहीं कर सकता।

खेलकूद की व्यवस्था—खेल-कूद बालक के स्वस्थ शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक विकास के लिए अत्यधिक उपयोगी है। यह विद्यालय पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग है। खेल के मैदान को 'खुला विद्यालय' भी कहा जाता है। यहीं पर उसमें सामाजिक सामंजस्य की भावना विकसित होती है और वह अनुशासनात्मक आज्ञापालन, सहयोग आदि गुणों को सीखता है। अत: खेल का मैदान काफी खुला और बड़ा होना चाहिये।

विद्यालय अल्पाहारगृह—विद्यालय अल्पाहार गृह का भी बालकों के स्वास्थ्य से सीधा सम्बन्ध है। प्राय: देखने में यह आता है कि विद्यालय अल्पाहर गृहों में कचोरी-समोसा, चाट-पकौड़ी आदि की बिक्री ही अधिक होती है। ये खाद्य पदार्थ छात्रों के लिए हानिकारक होते हैं। अत: इन पर रोक लगाना आवश्यक है। विद्यालय अल्पाहार गृहों में यथासम्भव ताजा व स्वास्थ्यवर्द्धक फलों की बिक्री की व्यवस्था होनी चाहिये, जिससे बालकों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

स्वास्थ्य परीक्षण–बालकों के स्वास्थ्य की परीक्षा उनके स्वास्थ्य स्तर को निश्चित करने और उनकी स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकताओं को जानने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। स्वास्थ्य परीक्षण द्वारा बालकों में बीमारी के प्रारम्भिक संकेतों और दोषों का ज्ञान हो जाता है। विद्यालय के चारों ओर का वातावरण अस्वास्थ्यप्रद, अस्वच्छतापूर्ण और दोष मुक्त तो नहीं है। जिसके कारण बालक फैलने वाली बीमारियों से आक्रान्त हो जाने का ज्ञान भी स्वास्थ्य निरीक्षण द्वारा सम्भव हो जाता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विद्यालय में उत्तम पर्यावरणीय परिस्थिति बनाये रखने के लिए उपयुक्त बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है। वातावरण की स्वच्छता में विद्यालय के कर्मचारियों, शिक्षकों, बालकों और अभिभावकों सभी की सहभागिता आवश्यक है। उचित हो यह होगा कि बालकों को पर्यावरण की स्वच्छता का महत्त्व

भली प्रकार समझाया जावे और समय-समय पर इससे सम्बन्धित वार्ताएँ तथा व्याख्यानों का आयोजन किया जावे। गलत कार्य करने वाले छात्र को ताड़ना दी जावे तथा पर्यावरणिक स्वच्छता बनाये रखने के लिए छात्र दैनन्दिनी अथवा प्रवेश नियमावली में स्पष्ट उल्लेख किया जाना चाहिए। विद्यालय की उत्तम पर्यावरण परिस्थितियों में ही शैक्षिक तथा सहयोगी क्रियाएँ सम्भव है।

स्वास्थ्य का अर्थ एवं परिभाषा—केवल रोग मुक्त होना या बीमारी का न होना ही स्वास्थ्य नहीं है बल्कि शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से स्वस्थ होना स्वास्थ्य कहलाता है।

उपर्युक्त परिभाषा से तात्पर्य व्यक्ति के रोगमुक्त होने के साथ—साथ उसके नियंत्रित संवेग, संतुष्टि, सही मनोदशा, मानसिक कार्य करने की सक्षमता तथा सामाजिक क्रियाकलापों में सहभागिता, समाज के अनुरूप व्यवहार करना, दूसरे व्यक्तियों से मधुर संबंध आदि अच्छे स्वास्थ्य को परिलक्षित करते हैं।

अच्छे स्वास्थ्य के लक्षण—स्वास्थ्य की परिभाषा के आधार पर अच्छे स्वास्थ्य के लक्षणों को तीन भागों में बाँट सकते हैं—

(1) शारीरिक स्वास्थ्य से संबंधित लक्षण,

(2) मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित लक्षण,

(3) सामाजिक स्वास्थ्य से संबंधित लक्षण।

(1) शारीरिक स्वास्थ्य से सम्बन्धित लक्षण—(i) ऊर्जा होना, (ii) आयु के अनुसार लम्बाई एवं वजन ठीक होना, (iii) सभी अंगों का भली—भाँति काम करना, (iv) त्वचा का निरोग व कांतिमय होना, (v) आँखों में चमक होना, (vi) बाल स्वस्थ व चमकदार होना, (vii) साँस में दुर्गंध का न होना, (viii) भूख का ठीक लगना (न ज्यादा न कम), (ix) नींद का अच्छी आना, (x) शरीर का फुर्तीला व क्रियाशील होना।

(2) सामाजिक स्वास्थ्य से सम्बन्धित लक्षण—(i) व्यक्ति के अन्य व्यक्तियों से अच्छे संबंध होना, (ii) मधुर व्यवहार का होना, (iii) दूसरों की सहायता करना, (iv) पारिवारिक व सामाजिक जिम्मेदारियों को पूरा करना, (v) समाज के मूल्यों का पालन करना एवं सभ्यता, संस्कृति का हस्तांतरण करना।

(3) मानसिक स्वास्थ्य के लक्षण—(i) संवेगों पर नियंत्रण होना, (ii) संवेदनशील होना, (iii) आत्मविश्वास होना, (iv) तनाव व चिंता रहित होना, (v) मानसिक कार्य करने में सक्षम होना, (vi) आयु के अनुसार मानसिक विकास होना।

शारीरिक सामाजिक एवं मानसिक स्वास्थ्य में संबंध–जो व्यक्ति रोगी होता है उसका स्वभाव भी चिड़चिड़ा होता है तथा उसे शीघ्र ही गुस्सा, रोना आता है तथा ऐसे व्यक्ति अपने विश्वास को भी खो देते हैं एवं शीघ्र हतोत्साहित हो जाते हैं। फलस्वरूप वह न तो दूसरों से मधुर संबंध रख पाता है और न ही अपनी जिम्मेदारियों को सक्षमता से पूर्ण कर पाता है। इससे स्पष्ट होता है कि शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य अन्त संबंधित हैं।

स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक—स्वास्थ्य को विभिन्न कारक प्रभावित करते हैं, जैसे–(i) व्यक्तिगत स्वास्थ्य तथा स्वच्छता, (ii) व्यायाम, (iii) आराम तथा नींद, (iv) शारीरिक मुद्रा, (v) स्वच्छ वातावरण, (vi) भोजन संबंधी आदतें, (vii) मौसम तथा वस्त्र, (viii) खेल तथा कार्य स्थल पर सुरक्षात्मक प्रबन्ध, (ix) नशीली दवाइयाँ तथा शराब का प्रभाव।

(i) व्यक्तिगत स्वास्थ्य व स्वच्छता–(1) शौच में नियमितता व स्वच्छता, (2) खाने से पहले हाथ धोना, (3) स्नान में नियमित्ता, (4) दाँत साफ करना, (5) बाल धोना तथा आँख, कान व नाखून साफ करना।

(ii) व्यायाम–व्यायाम से तात्पर्य है ''शरीर की सभी मांसपेशियों को प्रयोग में लाना जिससे वे स्वस्थ एव क्रियाशील रहें।'' व्यायाम करने से (1) शरीर का मोटापा कम होता है। (2) पाचन व श्वसन, रक्त संचार क्रियायें सुचारु रूप से होती हैं। (3) शरीर अधिक क्रियाशील बनता है तथा ऊर्जावान रहता है।

व्यायाम के अन्तर्गत खेलना, तैरना, टहलना, दौड़ना, योगाभ्यास व कसरत करना आते हैं।

(iii) आराम तथा नींद–मांसपेशियों की थकान दूर करने के लिये आराम व नींद जरूरी है। थकान होने पर व्यक्ति की क्रियाशीलता में कमी आती है तथा व्यक्ति रुचि से कार्य नहीं कर पाता अतः सुचारु रूप से कार्य करने हेतु आराम एवं नींद लेना आवश्यक है।

(iv) शारीरिक मुद्रा–मनुष्य के बैठने व चलने के ढंग को मुद्रा कहते हैं। सही मुद्रा में बैठना, चलना एवं कार्य करना चाहिये ताकि कम से कम ऊर्जा व्यय हो, शरीर थकान महसूस न करे तथा शरीर ठीक प्रकार से कार्य कर सके।

(v) स्वच्छ वातावरण–अपने घर का तथा घर के आस–पास का वातावरण स्वच्छ होना चाहिए ताकि जीवाणुओं की वृद्धि को रोका जा सके। इसके लिये गन्दे पानी, मल–मूत्र के निस्तारण की उचित व्यवस्था होनी चाहिये। कचरे को उचित स्थान पर फेंकना चाहिये एवं घर को साफ सुथरा रखना चाहिये। घर के खाद्यों को ढककर रखना चाहिये।

(vi) भोजन संबंधी आदतें–हमें संतुलित भोजन ग्रहण करना चाहिए ताकि शरीर के कार्य सुचारु रूप रे सम्पन्न हो सकें। भोजन सही समय पर सही मात्रा में, पौष्टिक तत्त्वों से युक्त ग्रहण करना चाहिये। भोजन को चबा–चबा कर खाना चाहिये। सलाद व फल भी ग्रहण करने चाहिये।

(vii) गौराम तथा वस्त्र–मौसम के अनुसार वस्त्र धारण करने चाहिये ताकि स्वास्थ्य ठीक रहे। फैशन के अनुसार भी वस्त्र धारण करने चाहिये ताकि व्यक्ति हीनभावना से ग्रस्त न हो।

(viii) सुरक्षात्मक प्रबन्ध–घर का फर्श, सीढ़ियाँ, छत की मुंडेर सुरक्षित होनी चाहिये ताकि किसी दुर्घटना की संभावना न हो।

(ix) नशीली दवाओं, मदिरा तथा धूम्रपान का प्रभाव–नशीली दवाओं मदिरा एवं धूम्रपान से फेफड़ों, हृदय, नाड़ी संस्थान आदि पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। अतः इनके सेवन से बचकर रहना चाहिये।

स्वास्थ्य संबंधी आपात स्थितियाँ

आपात स्थिति का अर्थ–स्वास्थ्य संबंधी आपात स्थिति, वह स्थिति है जिसमें आकस्मिक दुर्घटना या रोग के कारण किसी व्यक्ति का स्वास्थ्य खतरे में हो और उसका जीवन बचाने के लिये उसे तत्काल सहायता की आवश्यकता हो।

प्राथमिक चिकित्सा का अर्थ–किसी दुर्घटना या रोग पीड़ित व्यक्ति को चिकित्सा सहायता उपलब्ध कराने से पूर्व, जो मौके पर ही तत्काल सहायता दी जाती है, उसे प्राथमिक चिकित्सा कहते हैं।

आपात स्थिति के लक्षण–सदमा, दर्द, सांस लेने में कठिनाई, चोट, रक्त स्राव, जलना, अंग विकृत होना।

प्राथमिक चिकित्सा देने के कारण/उद्देश्य/महत्त्व–यदि समय पर पीड़ित व्यक्ति को प्राथमिक चिकित्सा नहीं दी जाती, तो पीड़ित व्यक्ति की हालत और अधिक बिगड़ सकती है तथा कभी–कभी मृत्यु भी हो सकती है।

प्राथमिक चिकित्सा के निम्न लाभ/महत्त्व है–

(i) जीवन को बचाना, (ii) दर्द को कम करना, (iii) जल्दी ठीक होने में सहायता देना, (iv) रोगी की दशा खराब होने से रोकना, (v) पीड़ित व्यक्ति को आरामदायक स्थिति में रखना।

प्राथमिक चिकित्सक के कर्त्तव्य/प्राथमिक चिकित्सा के नियम– (i) शांत रहे, (ii) भीड़ को हटाये, (iii) आग को बुझाये, (iv) पीड़ित व्यक्ति को सुरक्षित स्थान पर ले जाये, (v) कृत्रिम श्वांस दे, (vi) तत्काल किसी योग्य

चिकित्सक को बुलायें, (vii) प्राथमिक उपचार करें, (viii) पीड़ित व्यक्ति को सांत्वना दें।

विभिन्न स्वास्थ्य संबंधी आपात स्थित एवं उनमें दी जाने वाली प्राथमिक चिकित्सा

(1) अत्यधिक रक्त स्राव–हमारे शरीर में रक्त नलिकाओं में लगातार दौड़ता रहता है। यदि किसी चोट के कारण धमनी या शिरा कट जाती है, तो रक्त बहना शुरू हो जाता है, जिसे प्राथमिक चिकित्सा द्वारा रोकना आवश्यक है अन्यथा अधिक रक्त के बहने से पीड़ित व्यक्ति की हालत गंभीर हो सकती है।

प्राथमिक चिकित्सा–(i) घाव को अपनी उंगलियों या हाथ से जोर से तब तक दबायें जब तक रक्त बहना बंद नहीं हो जाये।

(ii) रोगी को इस प्रकार लेटने को कहें कि घाव वाला भाग थोड़ा ऊपर उठा रहे ताकि रक्त के बहने की गति कम हो जाये।

(iii) यदि रक्त धमनी कटने के कारण बह रहा है तो रक्त सूर्ख लाल रंग का होता है तथा झटके के साथ बहता है ऐसी स्थिति में हृदय के निकट घाव के पास कसकर पट्टी बाँधनी चाहिये और यदि रक्त गहरे लाल रंग का लगातार बहता है जो रक्त शिरा के कटने के कारण बहता है। ऐसी स्थिति में हृदय से दूर पट्टी बाँधनी चाहिये।

(iv) यदि रक्त स्राव निरंतर हो रहा हो तो घाव पर साफ कपड़े की गद्दी बनाकर रखना चाहिये और आवश्यकता हो तो अन्य गद्दियाँ इसके ऊपर रखते जाना चाहिये।

(v) घायल व्यक्ति को ओढ़ाकर गर्म रखना चाहिये।

(iv) यदि घायल होश में है तो उसे गर्म पेय पदार्थ पिलायें।

(vii) शीघ्र ही योग्य चिकित्सक को बुलायें।

(2) हड्डी टूटना (फ्रेक्चर)–हड्डियों का टूटना ही फ्रेक्चर कहलाता है।

हड्डी टूटने के लक्षण–**(1)** तीव्र दर्द होता है, **(2)** सूजन आ जाती है, **(3)** पीड़ित अंग को हिला–डुला नहीं पाता।

प्राथमिक चिकित्सा–(i) घायल व्यक्ति को गर्म रखें, (ii) पीड़ित व्यक्ति को हिलने–डुलने न दें। (iii) अनावश्यक रूप से हड्डी टूटे भाग को छेड़े नहीं, (iv) अस्थिभंग अंग को उपयुक्त वस्तु के माध्यम से सहारा दें, जैसे–खपच्ची द्वारा, टूटी बाँह को सीने के साथ बाँधकर, घायल पैर को स्वस्थ पैर के साथ बाँधकर, (v) खपच्ची बनाते समय लकड़ी, स्केल या अखबर को लपेटकर, उसके

चारों तरफ कपड़े या रुई की गद्दी बनाकर लगा देनी चाहिये ताकि घायल अंग को और अधिक पीड़ा न हो। (vi) गर्म पेय पदार्थ पीने के लिये देना चाहिये। (viii) चिकित्सक को तुरन्त बुलावें।

(3) मोच–मांसपेशियों के खिंचने, आंशिक रूप से फटने या टूटने या खींचने को मोच कहते हैं।

प्राथमिक चिकित्सा– (i) रोगी को आरामदायक स्थिति में लाना चाहिये, ताकि प्रभावित अंग हिल न सके। (ii) घायल अंग को ऊँचा उठायें, (iii) ठण्डे पानी में भीगा मोटा कपड़ा मोच वाले स्थान पर रखना चाहिये इससे सूजन व दर्द कम होगा, (iv) शीघ्र ही चिकित्सक को बुलाना चाहिये।

(4) जलना व झुलसना–गर्म वस्तु को छूने पर जलन होती है, वह अंग लाल हो जाता है, उसे **जलना** कहते हैं। जब ज्यादा जल जाये जिससे त्वचा सिकुड़ कर अपना स्थान छोड़ देती है तथा मांस दिखने लगता है या फफोला पड़ जाता है, उसे **झुलसना** कहते हैं।

प्राथमिक चिकित्सा–(i) पीड़ित अंग को पानी में डुबोकर रखना चाहिये ताकि जले हुये स्थान को ठण्डक मिले। (ii) पीड़ित व्यक्ति की अंगूठी, चूड़ी, बेल्ट, मोजे आदि उतार देना चाहिये। (iii) जले हुये स्थान को पट्टी, चादर या किसी साफ कपड़े से ढक देना चाहिये। (iv) पीड़ित व्यक्ति को सांत्वना देनी चाहिये, (v) तत्काल चिकित्सक को बुलाना चाहिये।

(5) सदमा–किसी दुर्घटना के कारण व्यक्ति को सदमा पहुँच जाता है। सदमे में व्यक्ति का शरीर पीला पड़ जाता है तथा उसे बहुत अधिक पसीना आता है, कमजोरी व बेहोशी महसूस होती है तथा नाड़ी तेज व कमजोर हो जाती है।

प्राथमिक चिकित्सा– (i) रोगी को सीधे लिटाना एवं उसके पांव सिर से ऊँचाई पर रखें। (ii) रोगी के कपड़े ढीले करके मोटे कपड़े से ढक देना चाहिये। (iii) रोगी से बातचीत करते रहना चाहिये तथा उसे सान्त्वना देनी चाहिये। (iv) रोगी को प्यास लगे तो गीला रूमाल चूसने के लिये देना चाहिये। (v) रोगी को खाने हेतु कुछ नहीं देना चाहिये वरना उल्टी हो सकती है या गले में खाना फंस सकता है। (vi) चिकित्सक को तुरन्त बुलाना चाहिये।

(6) बिजली का झटका लगना–बिजली का झटका दो प्रकार का होता है– (i) हल्का, तथा (ii) तीव्र।

(i) हल्के झटके में व्यक्ति को बिजली से धक्का लगता है और वह थोड़ी दूर जाकर गिरता है।

(iii) तीव्र झटके में व्यक्ति बिजली से चिपक जाता है और उसे अलग न करने तक करंट आता रहता है।

प्राथमिक चिकित्सा–(i) यदि हल्का झटका लगता है तो पीड़ित को आराम से लिटा देना चाहिये तथा गर्म पेय पदार्थ पीने को देना चाहिये।

(ii) तीव्र झटका लगने पर सबसे पहले मुख्य बटन बंद करें या तार अलग कर पीड़ित व्यक्ति को वहाँ से हटा देना चाहिए।

(iii) बिजली का कनेक्शन हटाये बिना पीड़ित व्यक्ति को छुड़ाने का प्रयास नहीं करना चाहिये, क्योंकि इससे स्वयं को भी झटका आ जायेगा। छुड़ाने के लिये लकड़ी की छड़ी, कुर्सी या रबड़ के जूते का उपयोग करना चाहिये।

(iv) अन्य चोटें देखकर जैसे– जलना, हड्डी टूटना, सदमा लगना, आदि को देखकर उसकी प्राथमिक चिकित्सा करनी चाहिये।

(v) रोगी को तत्काल चिकित्सक के पास ले जाना चाहिये।

(7) जानवरों द्वारा काटना और डंसना

(a) सांप का डंसना–सांप के दो विष दंत होते हैं। जब सांप काटता है तो ये विष दंत द्वारा विष शरीर में प्रवेश कर जाता है। काटे गये स्थान पर इन दो विषदंतों के निशान हो जाते हैं।

प्राथमिक चिकित्सा– (i) डसे गये स्थान से थोड़ा ऊपर रूमाल/पट्टी या रस्सी कसकर बांध देनी चाहिये। (ii) काटे हुये स्थान को हिलाना नहीं चाहिये। बल्कि नमक के पानी से घाव को धीरे-धीरे धोना चाहिये। (iii) घाव पर बर्फ के टुकड़े लगाने चाहिये। (iv) पीड़ित व्यक्ति को विष के प्रभाव से नींद आती है किन्तु उसे सोने नहीं देना चाहिये।

(b) कुत्ते का काटना–कुत्ते का काटना बहुत खतरनाक होता है, मुख्यतः पागल कुत्ते का काटना। पागल कुत्ते के काटने से उसके शरीर के रोगाणु व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं, जिससे वह पागल भी हो सकता है और उसकी मृत्यु भी हो सकती है।

पागल कुत्ते की पहचान–पागल कुत्ता बहुत भौंकता है तथा उसकी पूँछ उसके पैरों के बीच घुसी होती है, साथ ही मुँह से झाग निकलते रहते हैं।

प्राथमिक चिकित्सा–(i) काटे हुये स्थान को साबुन से धोना चाहिये, (ii) पीड़ित व्यक्ति को तुरन्त चिकित्सक के पास ले जाना चाहिये ताकि उसे समय पर एन्टीरेबीज का टीका लग जाये।

(c) कीटों द्वारा काटना–जब मधुमक्खी, बर्र, बिच्छु आदि काट लेते हैं, तो ये पीड़ित व्यक्ति के शरीर में विष छोड़ देते हैं, जिससे काटा गया स्थान लाल एवं सूजा हुआ हो जाता है एवं जलन होती है।

प्राथमिक चिकित्सा– (i) निःसंक्रमित सूई की नोक से डंक निकाल देना चाहिये। सूई को नोक को गर्म करके इसे निःसंक्रमित बनाया जा सकता है। (ii) प्रभावित स्थान पर सोडा लगाना चाहिये। (iii) बर्र के काटने पर सिरका लगाना चाहिये। (iv) पीड़ित व्यक्ति को चिकित्सक के पास ले जाना चाहिये।

(8) डूबना–पानी में डूबने से व्यक्ति के मुँह तथा नाक द्वारा फेफड़ों में पानी भर जाता है तथा सांस नहीं ली जा सकती है।

प्राथमिक चिकित्सा–(i) पीड़ित व्यक्ति को पेट के बल उल्टा लिटाकर उसकी बाहें सिर के ऊपर सीधी कर देनी चाहिये जिससे फेफड़ों में से पानी निकलने लगेगा, (ii) जब पीड़ित श्वांस लेने लगे तो उसके गीले वस्त्र उतार कर कम्बल ओढ़ा देना चाहिये। (iii) पीने के लिये गर्म पेय पदार्थ देना चाहिये।

(9) तापघात और लू लगना–अत्यधिक गर्मी के समय जब शरीर का तापमान बढ़ जाता है तो उसके दो कारण होते हैं– (i) तापघात, (ii) लू लगना।

(a) तापघात–जब अत्यधिक गर्मी के मौसम में काम अधिक करने से पसीना आता है और शरीर का बहुत सा पानी शरीर से बाहर निकल जाता है तो इसके परिणामस्वरूप तापघात हो जाता है।

लक्षण–(i) थकान महसूस होती है, (ii) बेहोशी महसूस होती है, (iii) तेज सिरदर्द होता है, (iv) नाड़ी की गति तेज हो जाती है।

प्राथमिक चिकित्सा– (i) पीड़ित को ठण्डे व छायादार स्थान पर लिटायें, (ii) नमक, शक्कर मिलाकर ठण्डा पेय पिलायें।

(b) लू लगना–गर्म वातावरण में जहाँ हवा नहीं हो वहाँ लगातार काम करने से पसीने के रूप में अतिरिक्त जल शरीर से वाष्पित नहीं होता है जिससे शरीर में अतिरिक्त गर्मी संचित होती रहती है और लू लग जाती हैं।

लक्षण– (i) थकान, (ii) तेज सिर दर्द, (iii) लाल और गर्म चेहरा तथा (iv) गिरना व बेहोश होना।

प्राथमिक चिकित्सा–पीड़ित व्यक्ति को छायादार स्थान पर लिटायें व उसके वस्त्र ढीले कर दें। (ii) कागज या पंखे से उसकी हवा करें। (iii) उसके शरीर के तापमान को गीले कपड़े से पोंछकर सामान्य करें। (iv) तत्काल चिकित्सक को दिखायें।

(10) विषाक्ता–व्यक्ति के शरीर में हानिकारक विषाक्त पदार्थों के प्रवेश से शरीर में विषाक्तता हो जाती है। विषाक्तता के निम्न कारण हो सकते हैं–

(i) रोगाणुनाशक पदार्थों के खाने या निगलने से, जैसे–फिनायल, चूहे मारने वाली दवा, मिट्टी का तेल, नींद की गोलियाँ, कीड़े मारने की दवा आदि।

(ii) एल.पी.जी. (खाना बनाने वाली गैस), वाहनों से निकलने वाला धुआँ, अंगीठी का धुंआँ आदि विषैली गैसों में सांस लेने से।

(iii) जहरीले सांप, बिच्छू आदि जहरीले कीटों द्वारा काटने से।

प्राथमिक चिकत्सा–(i) पीड़ित को तुरन्त अस्पताल पहुँचाना चाहिये तथा साथ में खाये जाने वाले विषाक्त पदार्थ का पैकेट या शीशी ले जानी चाहिये। और यदि रोगी ने उल्टी की हो तो उसका नमूना भी ले जाना चाहिये ताकि चिकित्सक को उपचार में आसानी हो।

(ii) व्यक्ति को उल्टी कराने का प्रयास करना चाहिये। यदि उसके मुँह, होंठ और नाक पर सफेद या पीले धब्बे दिखाई दे तो उसे उल्टी नहीं कराना चाहिये क्योंकि इससे हानि हो सकती है (इस प्रकार के धब्बे मिट्टी का तेल, पेट्रोल, विरंजक, अम्ल या क्षार के खाने से होता है।)

(iii) पीड़ित को प्रचुर मात्रा में ठण्डा पानी, दूध या पानी में फेंटा अण्डा पिलायें, क्योंकि इससे विष का प्रभाव कम हो जायेगा तथा शरीर द्वारा इसके अवशोषित होने में कम समय लगेगा।

(iv) व्यक्ति के बेहोश होने पर उल्टी कराने का प्रयास नहीं करना चाहिये।

(v) समतल बिस्तर पर लिटाना चाहिये।

(vi) श्वांस नहीं चलने पर कृत्रिम श्वांस देनी चाहिये।

दुर्घटनावश होने वाली विषाक्ता से बचाव– (i) विषाक्त रसायनों को बच्चों की पहुँच से दूर रखना चाहिये। (ii) पुरानी दवाइयों को फेंक देना चाहिये। (iii) विषाक्त पदार्थों को नामांकित कर देना चाहिये।

प्राथमिक चिकित्सा बॉक्स–प्राथमिक चिकित्सा बॉक्स में निम्नलिखित सामग्री होनी चाहिये ताकि आवश्यकता पड़ने पर तुरन्त प्राथमिक उपचार किया जा सके।

(i) पट्टियाँ, गोल, तिकोनी, (iii) रुई, (iii) डिटॉल, (iv) छोटी कैंची, (v) एस्पिरिन या दर्द निवारक गोली, (vi) टॉर्च या मोमबत्ती, (vii) गर्म पानी की बोतल, (viii) एक छोटा गिलास, (ix) खपच्ची/स्केल।

प्राथमिक चिकित्सा करते समय आस–पास उपलब्ध सामग्री का प्रयोग करना–

(i) पट्टी के स्थान पर साड़ी, दुपट्टा, रूमाल, पुरानी चादर का प्रयोग किया जा सकता है।

(ii) खपच्ची के स्थान पर स्केल, पेड़ की सीधी टहनी, छाता, छड़ी, समाचार पत्र या पत्रिका को मोड़कर इनके ऊपर कपड़ा लपेट कर प्रयोग किया जा सकता है।

(iii) पीड़ित व्यक्ति को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिये– छोटी चारपाई, समतल तख्ता, कुर्सी का प्रयोग किया जा सकता है।

गुणकारी आहार

स्वास्थ्य का मूल रूप पौष्टिक आहार है। बिना आहार के जीव की सत्ता हो ही नहीं सकती। भोजन स्वास्थ्य का महत्त्वपूर्ण अंग है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम जो भी भोजन ग्रहण कर रहे हैं, वह हमारे स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है या नहीं इसी को ध्यान में रखकर हमें भोजन करना चाहिए जिसके गुण निम्नलिखित हैं—

भोज्य पदार्थों में से कुछ तो ऐसे होते है जिन्हें हम स्वभाविक स्थिति में थोड़ी सफाई के बाद काम में ले लेते हैं। जैसे–फल, मेवे आदि। परन्तु अधिकांश भोज्य पदार्थों को खाने योग्य बनाने हेतु पकाना आवश्यक होता है। भोजन पकाने के सामान्यतः तीन प्रमुख उद्देश्य हैं—

(1) भोजन को सुपाच्य बनाना——भोजन गरम, चबाने व पचने योग्य हो जाता है, जिससे पाचक रस भली प्रकार से प्रभाव डाल सकते हैं।

(2) रूप सुधारना–भोज्य पदार्थों को पकाने में इनका स्वाद व सुगन्ध की दृष्टि से इन्हें आकर्षक बना दिया जाता है। इस प्रकार का आकर्षक भोजन सुपाच्च व भूख को बढ़ाने वाला होता है।

(2) रोग के कीटाणुओं का नाश करना—पकाने में विभिन्न प्रकार के ताप का प्रयोग किया जाता है। ताप से वस्तुओं को सड़ाने वाली तथा विषाक्त करने वाले कीटाणु (अण्डों सहित) नष्ट हो जाते हैं। मछली, दूध, सब्जी आदि में पाये जाने वाली कृमियों का भी नाश हो जाता है।

इस प्रकार भोजन पकाना आवश्यक है। परन्तु यदि पकाते समय असावधानी रखी गई है तो उससे कुछ हानियाँ होने का भय रहता है। इसलिए भोजन पकाते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये।

(1) भोजन सदैव स्वच्छ बर्तनों में पकाना चाहिए। गन्दे बर्तन में पकाया गया भोजन विषयुक्त होकर स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

(2) कलई किए गये बर्तनों में ही भोजन पकाया जाना चाहिए अन्यथा भोजन विषैला हो सकता है।

(3) भोजन पकाते समय हाथ, नाखून आदि भी स्वच्छ होने चाहिए। नाखूनों में जमा मैल, बिखरे बाल भोजन में गिर सकते हैं।

(4) रसोईघर में काम में लाया जाने वाल वस्त्र भी स्वच्छ होना चाहिए।

(5) पकाते समय बर्तन को खुला नहीं छोड़ना चाहिए। अन्यथा वायु के सम्पर्क में आने पर विटामिन तथा भोजन की सुगन्ध नष्ट हो जाती है।

(6) निश्चित अवधि से अधिक भोजन पकाने पर उसमें पौष्टिक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं।

(7) खाने का सोडा भोज्य पदार्थों में डालने से विटामिन 'बी' नष्ट हो जाता है।

(8) जिस पानी में चावल, हरी सब्जी उबाली गई हो उस पानी को फेंकना नहीं चाहिए, क्योंकि उस पानी में पोषक तत्त्व विद्यमान रहते हैं। चावल, सब्जी आदि में उतना ही पानी डालना चाहिए जितना पकाते वक्त सोख लें।

(9) अधिक मसालों का प्रयोग करने से स्वाभाविक स्वाद नष्ट हो जाता है तथा पोषक तत्त्व भी नष्ट हो जाते हैं। भोजन को बार-बार गर्म करने से भी उसके पोषक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं।

संसार के विभिन्न भागों में भोजन पकाने की अनकों विधियाँ प्रचलित हैं। प्रत्येक विधि में ताप किसी न किसी प्रकार प्रयोग में लाया जाता है। भोजन-विधियों को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है-जल द्वारा, चिकनाई द्वारा, भाप द्वारा, वायु द्वारा।

1. जल द्वारा—भोजन जल माध्यम से निम्न विधियों द्वारा पकाया जाता है।

(अ) उबालना—भोजन पकाने की यह सरलतम विधि है। किसी बर्तन में पानी लेकर तत्पश्चात् चूल्हे या अंगीठी पर 212° फा. पर उबालने की क्रिया की जाती है। वस्तुओं को जब तक उबाला जाता है तब तक वह मुलायम न हो जावे।

चावल, दाल तथा कुछ सब्जियाँ इस विधि से पकायी जाती हैं। कुछ लोग, दाल चावल आदि उबालकर पानी फेंक देते हैं जिससे पोषक तत्त्व विद्यमान होते हैं। आलू, अरबी आदि को छिलके सहित उबालकर उसका पानी फेंकने में कोई नुकसान नहीं; क्योंकि इनके पोषक तत्त्व उबले पानी में मिश्रित नहीं हो पाते।

(ब) धीमी आग पर पकाना—भोजन पकाने की यह अत्यधिक सरल व अल्पव्ययी विधि है। इसमें ईंधन की कम आवश्यकता होती है; क्योंकि 180° ताप पर्याप्त होता है। फल, सब्जियाँ, मांस आदि पकाने की यह उत्तम विधि है। इस विधि से पका भोजन सुपाच्य, स्वास्थ्यवर्द्धक एवं स्वादिष्ट भी होता है। धीमी आँच पर पोषक तत्त्व भी नष्ट नहीं होते हैं। पाश्चात्य पाक विधियों में इसका प्रयोग विशिष्ट रूप से किया जाता है।

(2) भाप द्वारा–कुछ भोजन भाप से पकाये जाते हैं, इसलिये उनके पौष्टिक तत्त्व नष्ट नहीं हो पाते हैं। सब्जी, मांस आदि इस विधि से सरलता से पकाये जाते हैं। पुराने समय में भाप से पकाने के लिए एक विशेष पात्र काम में लाया जाता था। जिसमें एक ढक्कनदार बर्तन होता है और अन्दर एक जालीदार थाली सी लगी रहती है जिस पर रखकर सब्जी, गोश्त, इडली आदि पकाई जाती है।

आजकल भाप से भोजन पकाने के लिए कई प्रकार के कुकर प्रयोग में लाए जाते हैं। कुकर में आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न वजन का दबाव निर्मित किया जाता है, परिणामतः बर्तन में उष्णता का घनत्व बढ़ जाता है। समस्त पाक विधियों में भाप द्वारा पकाने की विधि सर्वोत्त्म है, क्योंकि इस विधि से पके भोजन के पोषक तत्त्व नष्ट नहीं होते हैं। भोजन हल्का शीघ्रता से पचने वाला होता है। इस विधि से पका भोजन पेट के रोगियों तथा वृद्धों के लिए उत्तम होता है; क्योंकि यह वसा एवं मसाले रहित होता है।

(3) चिकनाई द्वारा तलना—इस विधि में भोजन को गरम घी या तेल में पकाया जाता है। गरम घी या तेल में ज्योंही पदार्थ डाला जाता है उसकी ऊपरी परत कठोर हो जाती है जिससे भीतर के पोषक तत्त्व बाहर नहीं निकल पाते। इस विधि से भोजन तो स्वादिष्ट होता है, परन्तु गरिष्ठ होने से पचता नहीं है। तलने की दो विधियाँ हैं– (1) उबली विधि, और (1)गहरी विधि। तलने की गहरी विधि में वस्तु को घी या तेल में उबाला जाता है। उबालने के लिए घी या तेल का तापमान 350° फा. के लगभग होता है।

(4) वायु द्वारा—पदार्थों को भूंजने, सेंकने आदि में वायु पकाने का कार्य करती है। राख या बालू के माध्यम से भोज्य पदार्थ को ताप के सम्पर्क में लाने की विधि भूनना कहलाती है। वैसे बनाने के लिए आलू, बैंगन,अरबी, टमाटर आदि गर्म राख में भी रखे जाते हैं। बैकिंग या सैंकने की विधि में पकाने की क्रिया भट्टी या चूल्हे में विद्यमान रहने वाली शुष्क, उष्ण वायु में सम्पन्न की जाती है। पकाये जाने वाले पदार्थों के अनुकूल ताप भिन्न-भिन्न होते हैं। सेंकने से वस्तु पूर्ण रूप से पक जाती है और सरलता से पच जाती है। रोटी, डबल रोटी, बिस्कुट आदि इसी विधि से पकाये जाते हैं। भट्टी का तापमान साधारणतः 250° से फा. 500° तक रहता है।

भोजन पकाने का कार्य चाहे किसी भी विधि से किया जावे उसमें खाद्य पदार्थों पर अनुकूल व प्रतिकूल प्रभाव पड़ता ही है।

साधारणतया सामान्य पाक विधि में पोषक तत्त्वों का अधिक ह्रास नहीं होता। यदि खाद्य पानी को न फेंका जाय। अधिक समय तक अधिक ताप विटामिनों का नाश अवश्य करता है। सामान्य पाक-विधि में विटामिन 'सी' व कुछ अंश तक विटामिन 'बी' वर्ग अवश्य नष्ट हो जाते हैं, जिनकी पूर्ति कच्ची सब्जियाँ, फलों, सलाद आदि से प्राप्त कर सकते हैं। सब्जियों में केरोटीन व दूध, अण्डों आदि का विटामिन 'ए' सामान्य पाक-विधि से नष्ट नहीं होते हैं।

परन्तु, अनाज व दालों के परिस्तर में विटामिन-थायमिन, नियासीन, पेन्टाथानिक एसिड एवं कुछ खनिज पदार्थ मिलते हैं, उनके संसाधन का प्रक्रियाओं के कारण व्यर्थ में अपव्यय हो जाता है। तेज आँच पर सब्जियों व चावल आदि को खुले में पकाने से विटामिन 'बी' वर्ग, 'सी' वर्ग व कुछ अंश में प्रोटीन का नाश करते हैं।

अधिक समय तक तेज आँच पर खुले उबालने या पकाने पर कुछ एमीनो एसिड्स, कार्बोहाइड्रेट्स, विशेषकर शर्करा की उपस्थिति में जटिल यौगिक पदार्थ बन जाते हैं जिन पर पाचक एन्जाइम्स पूरा कार्य नहीं कर पाते और पदार्थों का पूरा उपयोग नहीं हो पाता । तलने पर हरी सब्जियों में पाया जाने वाला विटामिन 'ए' का कैरोटीन वसा विलय होने के कारण तेल घी में घुलकर नष्ट हो जाता है। शाक-सब्जियों को अधिक छीलने, धोने, काटने या देर तक पानी में पड़े रखने पर खनिज पदार्थ व विटामिन 'बी' व 'सी' ग्रुप का ह्रास होता है।

पाक-विधि से पोषक तत्त्वों के अधिकाधिक अपव्यय को कुछ सीमा तक निम्न उपायों से रोका जा सकता है-

(1) हाथ की चक्की का पिसा आटा चोकरसहित काम में लिया जावे। इस प्रकार हाथ का कुटा चावल ही काम में लावें।

(2) छिलकों सहित दाल काम में लेवें। चावल व दालों के अतिरिक्त उबले पानी में फेंकने के बजाय उसे रसा या सूप के काम में लाया जावे।

(3) चावल, दाल सब्जियों आदि को अधिक न धोयें न अधिक छींले और न ही देर तक पानी में उबालें। उबालते समय सोड़ा या बैकिंग पाउडर काम में नहीं लाना चाहिए, अन्यथा थायमीन विटामिन का नाश हो जाता है।

(4) सब्जियों के बड़े-बड़े टुकड़े काटें और अधिक देर तक खुला न रखें अन्यथा पोषक तत्त्वों का ऑक्सीकरण होकर ह्रास हो जाता है।

(5) सब्जियों को खोलते पानी में डालकर उबालना चाहिये। उबालते समय ढक्कनदार पात्र का प्रयोग करना चाहिए। प्रेशर कुकर पकाने के लिए आर्थिक दृष्टि से उत्तम है। ये पोषक तत्त्वों की दृष्टि, से समय और ईंधन बचाने में भी सहायक हैं।

खाद्य शृंखला के प्रत्येक उस चरण को जिस पर ऊर्जा का स्थानांतरण होता है पोषण स्तर कहते हैं।

व्यक्तिगत एवं सामुदायिक स्वास्थ्य का महत्त्व—

जो व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ हैं, वही अच्छा नागरिक बन सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को समुदाय के सक्रिय सदस्य के रूप में सार्वजनिक कार्यों में

योगदान देना होता है। जिस देश में स्वस्थ नागरिक होंगे उसकी उत्पादन क्षमता भी उसी अनुपात में बढ़ जाएगी।

व्यक्तिगत एवं समुदाय का स्वास्थ्य एक-दूसरे पर आधारित है। यदि व्यक्तियों का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता है तो समुदाय में रोग एवं मृत्यु की दर बढ़ जाती है। फलस्वरूप सामाजिक उत्पादकता प्रभावित होती है। यदि समुदाय में कोई बुरे एवं अस्वास्थ्यकर आचारों में लिप्त है तो उस समुदाय के सदस्य कभी सुखी नहीं रहे सकते। अत: किसी भी समुदाय के लिए यह आवश्यक है कि उसका प्रत्येक सदस्य उत्तम स्वास्थ्य के नियमों को समझे, तभी उस समुदाय में सुख एवं समृद्धि बढ़ेगी।

1. लिपाई-पुताई करने का ज्ञान एवं लिपाई-पुताई करना।
2. श्रमदान का आयोजन करना।
3. विद्यालय की खिड़कियाँ, दरवाजों एवं फर्नीचर पर रंग करना।

आवास (मकान) पर लिपाई-पुताई करना

कच्चा हो या पक्का। वह उसे समय-समय पर मरम्मत करता है और लिपाई-पुताई भी करता है। अपने आवास (घर) स्थल को साफ रखना चाहिए चाहे वो कच्चा हो या पक्का। इससे उसका मन प्रसन्न रहेगा और मकान की उम्र बढ़ेगी। मकान स्वच्छ रखने से स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा।

लाभ–इस प्रकार के कार्य करने से बालंक संबंधित कार्य करने की कुशलता से परिचित होता है। वह स्वावलम्बी बनता है। इस प्रकार बालक कार्य सीखकर अपने विद्यालय को भी सजाने, साफ करने में अपना सहयोग दे सकता है। ऐसे कार्य सीखने में आर्थिक हानि से बचेगा। माता-पिता को सुविधा मिलेगी। बालकों में श्रम के प्रति निष्ठा की भावना का विकास होगा।

भवन की लिपाई का कार्य

लिपाई का कार्य कच्चे मकानों में किया जाता है, इसमें मिट्टी-गोबर काम आता है। यदि दीवार मिट्टी की है तो लिपाई के लिए पीली या पहाड़ों की लाल मिट्टी एवं गोबर काम में लाया जाता है। पहले गोबर को इकट्ठा करके उसके बीच में मिट्टी में देखें कि कोई कंकड़ या पत्थर तो नहीं हैं, जो कि लिपाई करते समय हाथों को काट सकता है।

इसके बाद पहले पानी से छिड़काव कर लें, जिससे लिपाई सफाई से होगी और यदि कहीं टूटा-फूटा है तो उसे भी मिट्टी से ठीक कर लें। थोड़ा सूखने दें। गोबर-मिट्टी के घोल को गुबरोटी भी कहते हैं। जब दीवाल सूख जावे तो हाथ से लिपाई करें। कहीं ज्यादा या कम न लगे। हाथ से सुन्दर दीवाल को लीपकर सूखने

दें। जब दीवाल सूख जावे तो खड़िया मिट्टी से उसे पोत सकते हैं। गेरु या रंग से चित्रकारी भी कर सकते हैं। उन्हें रंगोली कहते हैं।

भवन की पुताई का कार्य

पुताई का काम पक्के मकानों में किया जाता है, इसमें चूना काम आता है। भवन की पुताई–पक्के मकान जो ईंट, पत्थर, चूने सीमेन्ट के बने होते हैं उनकी दीवार साफ समतल होती है, उसकी पुताई चूना (सफेदी) से की जाती है। इससे मकान की मजबूती के साथ-साथ चमक व सुन्दरता भी आती है। भवन की पुताई करने से अनेक प्रकार के जीवाणु नष्ट हो जाते हैं तथा भवन की दीवारों व छतों में मजबूती आती है। एक कमरा की साइज 20'×25' हो तो निम्न सामान की आवश्यकता होगी–

आवश्यक सामग्री

1. चूना (सफेदी)	8 किलोग्राम
2. नील	400 ग्राम
3. सरेस	200 ग्राम
4. गोंद	200 ग्राम
5. डी.डी.टी. पाउडर	200 ग्राम
6. नीला थोथा	50 ग्राम
7. कूँची/ ड्रम/नसेनी	आवश्यकतानुसार
8. छलनी व कपड़ा	एक मीटर
9. बर्तन, बाल्टी	एक–दो
10. झाड़ू व लकड़ी का डंडा	

पुताई की क्रिया पूर्व व बाद में–पहले कली को भिगाने के लिए ड्रम में करीब 40 लीटर पानी भर लो। अब उसमें धीरे-धीरे चूने के डलों को डाले, ध्यान रखें कोई पानी के छीटें आँख में न गिर जावें। कुछ समय में सारी कली (चूना) पानी में डाल दें और उसे गलने दें उसमें हाथ न डालें। देखेंगे कि पानी उबलने लगेगा। इस प्रकार इसे करीब 24 घण्टे तक पड़ा रहने दें यदि पानी कम है तो और डाल दें। जब कली पूरी गल जावे तो उसमें सरेस को महीन करके डालें। पानी में गर्म करके इसी प्रकार गोंद को भी महीन करके पानी में गलाकर ड्रम में डाल दें और नील व नीला थोथा एवं डी.डी.टी. पाउडर भी डाल दें। अब लकड़ी की सहायता से चूने को अच्छी तरह मिला दें। चूने के पानी को ऐसा रखें जैसे गाढ़ी छाछ होती

है। इसके बाद छलनी या कपड़े में से मिश्रण को छान लें। एक बात ध्यान रखें कि उसमें कंकड़ या मिट्टी न जावे!

इसके बाद कूँची से दीवार पर ऊपर से नीचे की तरफ हाथ चलाते हुए पुताई करें। इधर-उधर हाथ न चलाएँ अन्यथा बुरा लगेगा। जब दीवार ऊपर से करनी हो तो नसेनी काम में लें। इस प्रकार एक बार पुताई करके छोड़ दें। जब सूख जावे तो फिर पुताई करें। इस प्रकार कम से कम दो-तीन बार पुताई करे। इसके बाद सूखने दें और अब सफाई कर मकान की फर्श भी धो डालें।

सावधानियाँ–पुताई करने में निम्नलिखित सावधानियाँ बरतनी चाहिए–

(1) चूने के गलते समय या बाद में हाथ न डालें अन्यथा हाथ कट जावेंगे।

(2) सरेस व गोंद को अधिक न डालें अन्यथा सफेदी की पुताई पपड़ी बनकर उतर जावेगी। मेन स्विच बन्द कर दें अन्यथा दीवार पर करण्ट आ सकता है।

(3) इसी प्रकार गाढ़ी पुताई से भी सफेदी की पुताई पपड़ी बनकर उतर जावेगी।

(4) अधिक पतली या बिना गोंद व सरेस के भी पुताई छूट जावेगी।

(5) चूने को 24 घण्टे काम में लेने से पहले अवश्य भिगो दें जिससे चूने की गर्मी शांत हो जावे।

(6) नीला थोथा जहर है सावधानी से काम लें। इससे मक्खी, मच्छर खत्म हो जाते हैं।

(7) पुताई का काम करते समय हाथ-मुँह-पैरों में तेल अवश्य लगा लें।

(8) सिर पर कपड़ा व आँखों पर चश्मा अवश्य लगाएँ।

(9) नीचे की फर्श को धोने से पूर्व फर्श को मोटे टाट या कपड़े से रगड़ लें जिससे सफाई अच्छी व जल्दी होगी।

(10) पुताई करने के बाद तेल-साबुन से स्नान करें।

भवन की रंगाई का कार्य

भवन की रंगाई दो प्रकार से की जाती है। ये दोनों तरीके महँगे होते हैं। इससे मकान मजबूत व सुन्दर होते हैं। ये निम्नलिखित हैं——

1. डिस्टेम्पर 2. वार्निश

1. डिस्टेम्पर की रंगाई——डिस्टेम्पर बाजार में रंग-रोगन की दुकान पर बन्द डिब्बों में मिलता है। एक कमरा जिसकी साइज 20'×25' हो, उसे 5 लीटर पर्याप्त होगा। इसे बालों वाली ब्रुश से करना चाहिए। साधारण कूंची से नहीं करें। इस कार्य के लिए निम्नलिखित सामान की आवश्यकता होती है——

डिस्टेम्पर का सामान—1. डिस्टेम्पर रंग इच्छानुसार, 2. रंग घोलने का बर्तन, 3. चौड़ा ब्रुश, 4. पानी।

कार्य प्रक्रिया–सबसे पहले दीवार को रेगमाल 0 नम्बर से हल्का-फुल्का घिस लें। इसके बाद झाड़ू से दीवार साफ कर दें। इसके बाद डिस्टेम्पर से दुगुना पानी लेकर डिस्टेम्पर को पानी में अच्छी तरह घोल लें। पानी को गर्म करके ही मिलाएँ। इससें वह आसानी से घुलकर मिल जावेगा।

अब ब्रुश की सहायता से थोड़ा-थोड़ा लेकर रंगाई करें। ध्यान रखें कि रंग फर्श पर न गिरे अन्यथा फर्श खराब हो जावेगी। ब्रुश में उतना ही ले जितना रंग दीवार सोख सके। दीवार पर दो बार रंग करना चाहिए जिससे धब्बे न रहें।

2. भवन व वार्निश रंगाई–वार्निश का रंग की कई श्रेणियों के डिब्बों में बन्द मिलता है। जितनी खर्च की सामर्थ्य हो उतना ही खर्च कर अपनी मन पसन्द का रंग खरीद लें। यदि यह रंग गाढ़ा है तो थोड़ी मात्रा में इसमें तारपीन का तेल डाल सकते हैं। मिट्टी का तेल कभी भूलकर भी न डालें अन्यथा रंग की चमक खत्म हो जावेगी। पुताई करने की क्रिया वैसी ही है जैसे डिस्टेम्पर की है। इसमें चमक अधिक रहती है।

सावधानियाँ-

(1) जब जिस दीवार पर रंग करे उसको पहले साफ कर लें। फिर रंग करें।

(2) यह रंग ब्रुश से अधिक टपकता है इसलिए फर्श पर पहले कोई गन्दा कपड़े या अखबार बिछाएँ जिससे फर्श खराब न हो।

(3) कार्य पूरा करने के बाद पात्र व ब्रुश एवं हाथों को मिट्टी के तेल से पहले साफ कर किसी फटे-पुराने कपड़े से पौंछ लें। इसके बाद फिर एक बार मिट्टी के तेल से साफ कर फिर कपड़े से पौछें इसके बाद साबुन से धो लें।

(4) यह कार्य रात में करें तो अच्छा रहता है जिससे मक्खी नहीं रहती है अन्यथा दिन में इस रंग पर मक्खी चिपक जावेगी।

श्रमदान का आयोजन करना

श्रमदान के शब्द से स्पष्ट अर्थ है कि छात्रों द्वारा अपने श्रम से ही किया हुआ कार्य ही 'श्रमदान' है। विद्यालयों में यह कार्य छात्रों को टोली में बाँटकर कराया जाना चाहिए। पहले प्रत्येक कक्षा में छात्रों को टोलियों में बाँट दें। इसके बाद प्रत्येक टोली को एक निश्चित स्थान बताकर कार्य सौंप दें और उस कार्य को कितना करना है? क्या करना है ? यह बात बालकों को पूरी तरह समझा कर कार्य में लगा दें।

विद्यालय या उसके आस-पास का कोई अन्य स्थान भी हो सकता है, वहाँ श्रमदान का कार्य कराया जा सकता है।

श्रमदान हेतु सामग्री—1. गेंती, 2. फावड़ा, 3. तगारी, 4. बाल्टी, 5. रस्सा, 6, झाड़ू, 7. कपड़ा, 8. बाँस।

उपकरण-सामग्री का उपयोग निम्न प्रकार से किया जाए।

(1) **गेंती**—यह कठोर जगह को फोड़ने के काम आती है। इससे छोटे बालक से कार्य न लें क्योंकि यह वजन में भारी भी होती है।

(2) **फावड़ा**—फावड़ा से मिट्टी की खुदाई करना व उसे उठाकर फेंकना आदि कार्य करने में सहायक है।

(3) **तगारी**—यह मिट्टी व कूड़े को एक स्थान से उठाकर निश्चित स्थान पर डालने में सहायक है।

(4) **बाल्टी**—यह पानी भरना, वृक्षों में डालना या मैदान में छिड़काव करना आदि कार्य में सहायक है।

(5) **रस्सा**—यह श्रमदान का स्थान नापना या कोई मैदान में खेल का स्थान बनाने के या सीध में कार्य करने के काम आता है।

(6) **झाड़ू**—इसे हल्के व मोटे कूड़े की सफाई में काम में लिया जाता है। यह खजूर की अच्छी व मजबूत रहती है।

(7) **कपड़ा**—किंवाड़, खिड़की, फर्नीचर व अन्य छोटे स्थानों को साफ करने के काम आता है और कार्य करते समय प्रत्येक छात्र को अपने सिर पर भी बाँधना चाहिए, जिससे धूल-मिट्टी बालों में न जाएँ।

(8) **बाँस**—यह विद्यालय भवन या अन्य सार्वजनिक स्थान पर लगे जाले आदि को साफ करने के काम आता है इसके सिर पर झाड़ू या कपड़ा बाँधकर काम लेना चाहिए।

विद्यालय एवं अन्य सार्वजनिक स्थानों पर श्रमदान करना

विद्यालय में श्रमदान के उपयोग—विद्यालय में श्रमदान के उपयोग निम्नलिखित हैं—

(i) विद्यालय भवन की पुताई—विद्यालय भवन की पुताई करने में छात्रों का श्रमदान बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। छात्रों को विभिन्न ग्रुपों में विभाजित कर उनको भवन के विभिन्न कक्षों एवं चार-दिवारी की पुताई का काम सौंपा जाता है और श्रेष्ठ छात्रों को पुरस्कृत कर उनका उत्साह-वर्धन किया जाता है।

(ii) विद्यालय का सौन्दर्यीकरण—विद्यालय में समय-समय पर निरीक्षण/उत्सव आदि होते रहते हैं। उन दिनों विद्यालय को अक्सर साफ़ व सुन्दर ढंग से सजाया जाता है। विद्यालय के मुख्य द्वार एवं रास्ते आदि को फूलों के गमलों से सजाया जाता है। रंगीन कागज से बनी झण्डियों को लगाया जाता है। गुब्बारों के द्वार बनाए जाते हैं। पतंगी कागज की मालाएँ और प्राकृतिक फूलों से बनी मालाएँ यथा-स्थान लगाई जाती हैं। अल्पना और रंगोली यथा स्थान पर बनाई जाती हैं। ये कार्य श्रमदान के माध्यम से छात्रों द्वारा ही किए जाते हैं।

(iii) विद्यालय-भवन व खेल के मैदान की सफाई—विद्यालय में प्रत्येक कक्षा-कक्ष, कार्यालय आदि की सफाई प्रतिदिन होनी चाहिए और पूरे कूड़े-करकट को विद्यालय भवन से दूर फेंकना चाहिए। इसी प्रकार खेल का मैदान भी साफ-सुथरा होना जरूरी है। मैदान उबड़-खाबड़ हो, तो उसे समतल करना खिलाड़ियों के लिए जरूरी है। ये श्रमदान से होने वाले कार्य हैं जो छात्रों से कराए जाने चाहिए।

(iv) वृक्षारोपण व फुलवाड़ी—छात्रों द्वारा श्रमदान के माध्यम से विद्यालय प्रांगण और खेल के मैदान में यथास्थान वृक्ष लगाने चाहिए। उनकी सिंचाई और देखभाल का दायित्व वहन करना चाहिए। इसी प्रकार विद्यालय परिसर में फुलवाड़ी भी लगाई जानी चाहिए जिससे श्रमदान द्वारा शाला का सौन्दर्य बढ़े।

(v) विद्यालय भवन के निर्माण में सहयोग—यदि कोई विद्यालय में नया कक्ष बन रहा है या अन्य कोई मरम्मत आदि का कार्य हो रहा है तो उसमें छात्र अपना सहयोग दे सकते हैं, जैसे—पानी की व्यवस्था करना, ईंट-पत्थर व बजरी डालना, मिट्टी हटाना, मसाला तैयार करना आदि कार्यों में सहयोग दिलाना चाहिए। इस अर्थ में छात्रों को उत्साहित करते रहना चाहिए।

सार्वजनिक स्थलों पर श्रमदान के कार्यक्षेत्र—सार्वजनिक स्थलों पर छात्रों के द्वारा निम्नांकित श्रमदान कार्य कराए जा सकते हैं—

(1) सड़क पर पड़ी मिट्टी को हटाना व गड्ढे भरना—एक दूसरी टोली को सड़क पर जैसे फालतू मिट्टी पड़ी हो उसे हटाकर साफ करना। यदि कहीं गड्ढे बने हुए हों उन्हें भरना आदि कार्य कराएँ । इन सभी कार्यों के निरीक्षण हेतु प्रत्येक टोली में एक-एक टोली नायक की भी नियुक्ति रखें जो हमेशा बदलते हुए भी रहे।

(2) सार्वजनिक स्थानों पर श्रमदान—सार्वजनिक स्थान जैसे कोई धर्मशाला की सफाई करना या उसके पौधों को पानी देना, अस्पताल की सफाई, बस-स्टैण्ड, रेलवे स्टेशन आदि स्थानों की भी समय-समय पर सफाई करानी चाहिए।

(3) वृक्षारोपण—बरसात के मौसम के उद्‌भव स्थान देखकर प्रत्येक छात्र से एक-एक पौधा लगवाए और उसकी देखभाल की जिम्मेदारी उन्हें सौंप दें। पुराने लगे पेड़ों की गुड़ाई निराई, पानी देना आदि कार्य भी कराए और छात्रों को ऐसे नए कार्यों की उपयोगिता को भी समझना चाहिए।

(4) अन्य कार्य—जैसे रास्ते साफ करना, या कहीं कोई गन्दगी पड़ी है, तो उसे साफ करना आदि कार्य भी करा सकते हैं।

श्रमदान के लाभ

1. बालकों में श्रम के प्रति निष्ठा उत्पन्न होगी।
2. स्वच्छ रहने की आदत प्रबल होगी।
3. अपने किए हुए श्रम के प्रति खुशी होगी।
4. श्रम के प्रति आदर की भावना जागृत होगी।
5. मिलजुल कर कार्य करने की भावना उत्पन्न होगी।
6. समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को पूरा करने की भावना जागृत होगी।
7. कठिन कार्य करने की आदत होगी।
8. बालकों को पुरस्कार व श्रमदान प्रमाण-पत्र मिलेंगे।

श्रमदान आयोजन में निम्नलिखित सावधानियों को बरतना अति आवश्यक है—

1. छोटे बालकों को हल्का कार्य करना चाहिए।
2. बड़े बालकों को कुछ भारी कार्य सौंपना चाहिए।
3. कार्यास्थल पर जाने से पूर्व वहाँ के कार्य की जानकारी देना।
4. तेज औजार से कार्य करना समझना।
5. कोई खतरनाक स्थान हो तो सावधान करना।
6. कार्य करते समय विश्राम अवश्य करें।
7. औजारों को ठीक प्रकार से संभाल कर यथास्थान रखना।
8. हो सके तो श्रमदान का कार्य किसी धुन या गीत के साथ-साथ करना।
9. टोली नायक को कार्य समझाना।
10. कार्य के समय बात न करना।
11. औजार को देखकर चलाना, किसी को चोट न पहुँचे।
12. दूसरों के कार्य को हानि न पहुँचाना।

13. कार्य के बाद स्वयं की सफाई करना।

14. श्रमदान के बाद थोड़ा विश्राम व अल्पाहार आदि।

रंगों का मेल (प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक आदि)

प्राथमिक रंग—प्राथमिक रंग के नाम याद रखने के लिए हम 'पीलानी' शब्द को प्रतीक के रूप में आधार बना सकते हैं। जिससे अभिप्राय होता है–

'पी'–पीला; 'ला'–लाल; 'नी'–नीला

अर्थात् प्राथमिक रंग—पीला, लाल, नीला होते हैं। प्राथमिक रंगों का अपना अस्तित्त्व होता है।

द्वितीयक रंग—द्वितीयक रंगों का स्वयं कोई अस्तित्त्व नहीं होता है। ये रंग प्राथमिक रंगों के मेल से बनते हैं। सूत्र 'बैंनीहपीनाला' के आधार पर द्वितीयक रंग निम्न प्रकार बनाए जा सकते हैं——

1. नीला+पीला =हरा, 2. पीला+लाल =नारंगी, 3. लाल +नीला =बैंगनी

तृतीयक रंग—किन्हीं दो रंगों के मिलाने से तृतीयक रंग बनाए जा सकते हैं।

विरोधी रंग—पीला–बैंगनी, लाल–हरा, नीला–नारंगी

उष्ण रंग—लाल, नारंगी, बैंगनी

शीतल रंग—पीला, हरा, नीला

शून्य–वर्ण—काला व सफेद होते हैं। इनमें काला किसी भी रंग को गाढ़ा/गहरा कर देता है जबकि सफेद रंग उसे हल्का/पतला कर देता है।

भवन या फर्नीचर पर रंग या पॉलिश करना

भवन या विद्यालय के फर्नीचर पर पॉलिश या रंग करना अत्यावश्यक है। रंग या पॉलिश करने से फर्नीचर को दीमक या कीड़े (घुन) लगने से बचाता है तथा फर्नीचर में सुन्दरता आती है। फर्नीचर की उम्र बढ़ती है। इसके कार्य को करने के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नही होती है। इसे छात्र आसानी से कर सकते हैं, जिससे आर्थिक बचत भी होगी। इस कार्य को समाज–सेवा या श्रमदान के समय भी रखा जा सकता है।

आवश्यक सामग्री— इस कार्य को निम्नलिखित सामान की आवश्यकता होती है–

1. वार्निश	2 लीटर
2. मनचाहा रंग पेन्ट का	100 ग्राम
3. सफेदा	1 किलोग्राम
4. रेगमाल	1 किलोग्राम
5. प्राइमर	1 लीटर

1. नए फर्नीचर पर पॉलिश या रंग करने की विधि—नए फर्नीचर पर पॉलिश या रंग करने से पहले रेगमाल से फर्नीचर को घिसकर साफ कर लें। इसके बाद यदि कोई दाग है, तो उसे भी पानी में थोड़ा-सा सोडा डालकर किसी कपड़े की सहायता से फर्नीचर को साफ कर लें। अब फर्नीचर को सूखने दें।

इसके बाद रंग तैयार करने के लिए वार्निश में सफेदा को डालकर हाथ से अच्छी तरह घोल लें कि कितना गहरा या हल्का रंग बनाना है उतना ही रंग धीरे-धीरे डालें और पूरे मिश्रण को अच्छी तरह घोट लें। जब रंग तैयार हो जावे तो एक अलग बर्तन में रख दें। अब प्राइमर जो बन्द डिब्बे में बाजार में मिलता है उसे खोलकर देख लें, कहीं गाढ़ा तो अधिक नहीं है, यदि गाढ़ा है तो उसमें थोड़ा-सा तारपीन का तेल मिलाकर हल्का सा पतला कर लें, जिससे ब्रुश से आसानी से लग सके। इससे रंग ठीक होता है जिससे फर्नीचर पर अच्छा चढ़े एवं ब्रुश भी आसानी से चले।

अब पहले प्राइमर को फर्नीचर पर चढ़ाकर सूखने दें। इस प्रकार पहले प्राइमर से फर्नीचर को रंग दें। इसके बाद तैयार वार्निश वाले रंग को काम में लें। इस कार्य में ब्रुश में थोड़ा-थोड़ा रंग लें और ब्रुश को ऊपर-नीचे चलाएँ। इस प्रकार एक बार करके छोड़ दें। जब फर्नीचर सूख जावे तो दूसरा कोट फिर कर दें। इस प्रकार दो बार रंग करना आवश्यक होता है, क्योंकि कहीं दाग रह जाता है तो वह भी दो बार करने से मिट जाता है। अब फर्नीचर सूख जावे तो फर्नीचर को कोई मुलायम कपड़े से उसे हल्का-रगड़ दे। देखोगे कि फर्नीचर खूब अच्छी तरह से चमकने लग जावेगा। इस प्रकार नए फर्नीचर पर रंग का कार्य पूरा हो जाता है।

2. पुराने फर्नीचर पर रंग करने की विधि—पुराने फर्नीचर पर और नए फर्नीचर पर रंग करने में केवल अन्तर इतना है कि पुराने फर्नीचर को रेगमाल से नहीं घिसे और न ही प्राइमर करने की आवश्यकता है। इस पर पहले सोडे व साबुन से पानी से सफाई करें, उस पर लगी धूल व गन्दगी को जरूर पहले साफ कर दें जिससे रंग करने में फर्नीचर जैसी चमक आएगी। रंग बनाने का तरीका वहीं है।

स्प्रिट पॉलिश बनाने व करने की विधि

स्प्रिट पॉलिश बनाना आसान है। इसे घर पर आसानी से तैयार किया जा सकता है। स्प्रिट पॉलिश को तैयार करने की विधि निम्न प्रकार से है—

आवश्यक सामग्री

1. स्प्रिट	आधा लीटर
2. लाख की चपड़ी	80 ग्राम
3. रूभी मस्तंगी	20 ग्राम
4. रूई की पोटली कपड़े में	आवश्यकतानुसार बड़ी

उक्त सभी सामान को लेकर एक बोतल में भरकर ढक्कन से बन्द करके धूप में रख दें। कुछ समय रखा रहने दें। ये सभी सामान अपने आप गलकर स्प्रिट में मिल जावेगा। इस प्रकार स्प्रिट पॉलिश तैयार है।

कार्य करने की विधि—स्प्रिट पॉलिश को नए फर्नीचर पर ही कार्य में लिया जाता है। रंग किए हुए फर्नीचर पर इसे काम में ले लिया जावे। यदि पहले स्प्रिट पॉलिश ही हो रही है तो काम में ले सकते है। पहले कपड़े की एक पोटली बनाएँ। कपड़े में रुई भरकर गेंद की तरह गोल पोटली बना लें। उसके एक सिरे को हाथ में पकड़ने लायक रख लें। सिरों को किसी धागे से कसकर बाँध लें। अब स्प्रिट पॉलिश को थोड़ा-सा एक कटोरी में निकाल लें। उस पोटली को पॉलिश में भिगो लें और निचोड़कर धीरे-धीरे फर्नीचर पर रेशों को देखकर घुमाएँ। इस प्रकार तीन-चार बार पॉलिश करने से फर्नीचर शीशे के माफिक चमक जावेगा। इससे फर्नीचर से स्प्रिट तो उड़ जाती है और चपड़ी फर्नीचर पर जम जाती है इसलिए फर्नीचर चमकता है।

लोहे के फर्नीचर पर रंग करना—लोहे की आलमारी, मेज, कुर्सी, डिब्बे, बॉक्स आदि पर यदि रंग नही किया जाए तो ये लोहे की चीजें पानी से या बरसात में स्वत: ही जंग लगकर खराब हो जाती हैं। जंग लगने के बाद फर्नीचर हो या अन्य सामान कमजोर होने लगता है और धीरे-धीरे गलकर नष्ट हो जाता है। इसलिए लोहे के बने हुए सामान पर प्राइमर व रंग करना अनिवार्य है। लोहे के सामान पर प्राइमर करने से पूर्व उस पर पहले रेगमाल से जंग या गंदगी है तो उसे साफ करें अन्यथा प्राइमर ठीक नहीं जमेगा। रेगमाल करने के बाद उस पर कपड़ा और लगावे जिससे धूल आदि साफ हो जावे। इसके बाद प्राइमर को अच्छी तरह घोलकर ब्रुश की सहायता से करें। अब प्राइमर अच्छा व आसानी से चढ़ेगा। जब प्राइमर सूख जावे तो उसे कोई भी इनामेल पेन्ट या वार्निश पेन्ट (रंग) कर सकते हैं। लोहे का सामान एकदम नया दीखने लगेगा और उसकी आयु में भी वृद्धि होगी।

सावधानियाँ

1. नए फर्नीचर पर रंग करने से पूर्व प्राइमर करना अच्छा रहता है।
2. प्राइमर करने से पहले फर्नीचर को रेगमाल से अवश्य रगड़ना चाहिए।
3. यदि फर्नीचर गीली लकड़ी का है तो उसे छाया में सुखावें।
4. रंग का कार्य करते समय अपने पास तारपीन का तेल अवश्य रखें।
5. मिट्टी का तेल रंग में नहीं मिलाएँ।
6. हाथ या शरीर में अन्य स्थान व कपड़ों में लगे रंग को तारपीन का तेल व

मिट्टी के तेल से साफ करें।

7. पुराना फर्नीचर पर यदि रंग हो रहा है तो उस पर रेगमाल न करें। यदि बहुत पुराना है, रंग की पपड़ी चढ़ रही है तो अवश्य पहले मोटे रेगमाल से साफ करें। फिर महीन रेगमाल से साफ करें।
8. ब्रुश को काम में लेने से पूर्व व बाद में तारपीन के तेल से अवश्य साफ करें।

घर और बर्तनों की स्वच्छता

स्वच्छता और स्वास्थ्य का गहरा सम्बन्ध है। अच्छे स्वास्थ्य के लिए केवल शारीरिक स्वच्छता का गहरा सम्बन्ध है। अच्छे स्वास्थ्य के लिए केवल शारीरिक स्वच्छता का ध्यान रखा जाना ही पर्याप्त नहीं है वरन् हमारे घर, वस्त्र, बर्तन आदि की पर्याप्त स्वच्छता भी आवश्यक है। इस हेतु बाजार में कई प्रकार की सामग्री उपलब्ध है, जैसे—बर्तन साफ करने का पाउडर, कपड़े धोने का पाउडर, टाइल्स व फर्श साफ करने का पाउडर व लिक्विड आदि। उक्त सभी सामग्री आसानी से और कम लागत में घर पर ही तैयार की जा सकती है। इसे बनाने के लिए कच्चा माल भी बाजार में आसानी से उपलब्ध है। बर्तन साफ करने, कपड़े धोने, टाइल्स व फर्श साफ करने का पाउडर हम घर पर बना सकते हैं।

डिटरजेंट पाउडर बनाना

डिटरजेंट पाउडर वास रहित साबुन का ऐसा विकल्प है जो खारे पानी में भी कपड़े धोने के काम में लिया जा सकता है।

आवश्यक सामग्री

सोडा एश (कपड़े धोने का सोडा)	800 ग्राम
अमोनिया ट्राई फॉस्फेट	400 ग्राम
एसिड स्लरी (फोम)	100 ग्राम
टिनापॉल	5 ग्राम
नीला रंग दो चुटकी या अंदाज से	

विधि

1. हाथों पर रबड़ या प्लास्टिक के दस्ताने पहन लें।
2. किसी तगारी या टब में सोडा एश व अमोनिया ट्राई फॉस्फेट छलनी से छान लें।
3. इस मिश्रण में एसिड स्लरी डाल दें व लकड़ी के चम्मच की सहायता से अच्छी तरह मिला लें।

4. अब इसमें टिनापॉल व रंग मिला लें।
5. पाउडर को हवा में अच्छी तरह सुखाकर प्लास्टिक की थैली या जार में भर कर रख लें।

सावधानियाँ

1. सोडे में एसिड स्लरी मिलाते समय कार्बन-डाइ-ऑक्साइड गैस व बदबू उत्पन्न होती है अतः मुँह को उससे दूर रखें।
2. मिश्रण को हिलाने के लिए लकड़ी का डण्डा ही काम में लेना चाहिए।
3. डिटरजेंट तैयार करने से पूर्व दस्ताने पहनना उचित रहता है क्योंकि डिटरजेंट निर्माण प्रक्रिया में ऊष्मा उत्पन्न होती है।
4. पाउडर तैयार होने के पश्चात् अर्थात् अंतिम चरण में ही रंग एवं टिनापॉल मिलाया जाना चाहिए।

उपयोग विधि

1. कपडों की संख्या के अनुसार बाल्टी में पानी लेकर डिटरजेंट पाउडर उसमें घोल लें। तत्पश्चात् उस घोल में आधे घण्टे के लिए वस्त्रों को भिगो दें।
2. रंगीन वस्त्रों को अलग व सफेद वस्त्रों को अलग भिगोना चाहिए अन्यथा उनका रंग एक-दूसरे पर लग सकता है।
3. कपड़ों को मुलायम ब्रश की सहायता से अच्छी तरह रगड़ कर साफ कर लें। अंत में साफ पानी में वस्त्रों को खंगाल कर निचोड़ लें व सूखने के लिए फैला दें।

बर्तन साफ करने का पाउडर बनाना

भोजन पकाने, परोसने व खाने के दौरान बर्तन गन्दे हो जाते हैं, जिन्हें साफ करना आवश्यक है। गन्दे बर्तनों को साफ करने के लिए व चिकनाई हटाने के लिए विशेष पाउडर की आवश्यकता होती है।

आवश्यक सामग्री

मार्बल स्लरी (डोलामाइट पाउडर)	1 किलोग्राम
सोड़ा एश (कपड़े धोने का सोड़ा)	125 ग्राम
एसिड स्लरी (फोम)	50 ग्राम
पानी	100 मिली.
सोपस्टोन पाउडर	250 ग्राम

विधि

1. हाथों पर रबड़ या प्लास्टिक के दस्ताने पहन लें।
2. मार्बल पाउडर, कपड़े धोने का सोडा तथा सोपस्टोन पाउडर को भली प्रकार मिलाकर छान लें।
3. एक अलग बर्तन में पानी लेकर उसमें एसिड स्लरी को अच्छी तरह घोल लें।
4. इस घोल को पाउडर के मिश्रण में डालकर लकड़ी के चम्मच से अच्छी तरह मिला लें।
5. इसे अच्छी तरह सूखने दें। तत्पश्चात् प्लास्टिक की थैली या डिब्बे में भर लें।

सावधानियाँ

1. मार्बल पाउडर मोटा नहीं होना चाहिए अन्यथा बर्तन पर निशान पड़ जायेंगे।
2. एसिड स्लरी को पाउडर में मिलाने के दौरान बदबू से बचने के लिए मुँह एक तरफ रखना चाहिए।
3. पाउडर मिश्रण में एसिड स्लरी मिलाते समय लकड़ी के डण्डे या चम्मच का इस्तेमाल करना चाहिए।

फर्श व टाइल्स साफ करने का पाउडर बनाना

आवश्यक सामग्री

सोपस्टोन पाउडर आधा किलों, ब्लीचिंग पाउडर आधा किलो।

विधि

1. किसी तसला या तगारी में सोपस्टोन पाउडर व ब्लीचिंग पाउडर लें।
2. लकड़ी के चम्मच से पाउडर के मिश्रण को अच्छी तरह मिला लें।
3. फर्श व टाइल्स साफ करने का पाउडर तैयार है। इसे प्लास्टिक की थैली या डिब्बे में भर कर रख लें।

उपयोग विधि

1. फर्श व टाइल्स साफ करने के लिए पाउडर की आवश्यक मात्रा लें।
2. स्पंज या ब्रश की सहायता से इसे गीले फर्श व टाइल्स पर अच्छी तरह मल लें करीब आधा घण्टा इसे छोड़ दें।
3. तत्पश्चात् मुलायम ब्रश या स्पंज की सहायता से अच्छी तरह रगड़ कर गीले कपड़े से साफ कर लें।

सावधानियाँ

1. सफाई करने के लिए सख्त ब्रश या लोहे के तार वाला ब्रश काम में नहीं लेना चाहिए अन्यथा टाइल्स पर निशान पड़ जायेंगे।

सार्वजनिक स्वास्थ्य में प्रमुख आवश्यकता यह है कि समुदाय में स्वास्थ्यप्रद वातावरण बना रहे। इसके लिए समुदाय में वायु, जल, भूमि एवं सार्वजनिक स्थानों की स्वच्छता व शुद्धता का ध्यान रखा जाना चाहिए।

सामुदायिक स्वास्थ्य व शुद्ध पर्यावरण के लिए स्थानीय परिवेश में स्वास्थ्य-शिक्षा की प्रभावी योजना एवं उसकी क्रियान्विति के साथ समाज के युवाओं की सक्रिय भागीदारी भी आवश्यक है। युवा वर्ग में श्रम के प्रति निष्ठा व सकारात्मक सोच हो। वृक्षों का आत्मीयता के साथ रोपण तथा संरक्षण किया जाए।

पर्यावरण की चर्चा में प्रकृति एवं विज्ञान की प्रगति सम्बन्धी जानकारी विशेष महत्त्व रखती है। विज्ञान की प्रगति के कारण मानव प्रकृति से दूर होता जा रहा है मानव प्रकृति से जितना दूर होगा, उतना ही अनुशासनहीन होता जाएगा। आज पर्यावरण में आए हुए प्रदूषण को समझने के लिए हमें स्वयं को समझना आवश्यक है।

हमें उन परिस्थितियों को समझना होगा, जिनमें हम रह रहे हैं। मानव में सभी चेतन-अचेतन प्राणियों के प्रति संवेदनशीलता होनी चाहिए। इसलिए स्वस्थ पर्यावरण के लिए स्थानीय परिवेश में स्वास्थ्य-शिक्षा की प्रभावी योजना एवं उसकी क्रियान्विति होना आवश्यक है। इसकी मुख्य बातें इस प्रकार हैं-

(1) स्वास्थ्यप्रद एवं नियमित दिनचर्या,

(2) श्रम के प्रति निष्ठा,

(3) स्वास्थ्य क्लब एवं

(4) स्वस्थ पर्यावरण।

1. स्वास्थ्यप्रद एवं नियमित दिनचर्या

बालकों, उनके अध्यापकों व अभिभावकों सहित समुदाय के सभी लोगों द्वारा स्वास्थ्यप्रद एवं नियमित दिनचर्या से जीवन जीना पूरे समुदाय को स्वस्थ बनाने के लिए आवश्यक है। यह स्वास्थ्य-शिक्षा का मूल आधार है। इसके बारे में ध्यान रखने योग्य आवश्यक बातें इस प्रकार हैं-

- रात्रि में जल्दी सोना एवं प्रातःकाल जल्दी उठना।
- नित्य नियमित रूप से मुँह, नाक व दाँतों की सफाई करना।
- नित्य शौच क्रिया के पश्चात् स्नान करना।

- प्रात:काल एवं सायंकाल खेलना, व्यायाम करना तथा सैर करना।
- प्रतिदिन निर्धारित समय पर अध्ययन करना व घर के काम करना।
- नियत समय पर सुपाच्य एवं संतुलित भोजन करना।
- सदैव प्रसन्न एवं तनावमुक्त रहना।
- छोटों से स्नेह एवं बड़ों का सम्मान करना।

2. श्रम के प्रति निष्ठा

समुदाय के सभी व्यक्तियों को श्रम के प्रति निष्ठा व सकारात्मक सोच रखनी चाहिए। ऐसा नियमित आदत डालने व अच्छे संस्कारों से प्राप्त हो सकता है। बालकों में प्रारम्भ से ही स्वयं के कार्य स्वयं के द्वारा करने की आदत डालनी चाहिए। यही आदत कालान्तर में उनमें श्रम के प्रति निष्ठा पैदा करती है। किशोरावस्था में प्रवेश करने के साथ-साथ ही बालक-बालिकाओं को अपने कपड़े धोना, जूतों की पॉलिश करना, घर के कामकाज में हाथ बँटाने के प्रति जागरूक करना चाहिए। बालकों को अपने कार्य के लिए अपने बड़ों पर आश्रित नहीं रहना चाहिए।

प्राय: परिवार में लड़कियाँ तो घर के कामकाज में अपनी माँ, बहिन आदि की मदद करती हैं, किन्तु लड़के अपने पिता व भाई के पैतृक कार्यों में मदद नहीं करते, परिणामस्वरूप वे श्रम के प्रति उदासीन हो जाते हैं। इसके लिए बालकों को इन बातों को करने के प्रति प्रेरित करना चाहिए-

- रोजाना स्नान करने के बाद अपने कपड़े स्वयं धोना।
- अपने अध्ययन कक्ष की सफाई स्वयं करना।
- घर-परिवार के आवश्यक कार्यों को करने में बड़ों का हाथ बँटाना।
- अपने बड़ों व गुरुजनों के द्वारा बताए गए कार्य को उत्साहपूर्वक करना।
- अपने सहपाठियों की उनके कार्य में सहायता करना।
- अपनी गली-मोहल्ले को स्वच्छ रखने हेतु सार्वजनिक स्वच्छता में सहयोग करना।
- विद्यालय भवन व परिसर की सफाई में उत्साहपूर्वक भाग लेकर सहयोग करना।
- एन.सी.सी., स्काउटिंग, एन.एस.एस. आदि की गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी लेना।

3. स्वास्थ्य क्लब

बालक-बालिकाओं को स्वास्थ्य के प्रति जागरूक बनाए रखने, युवा वर्ग को

स्वास्थ्यरक्षक कार्यक्रमों में सक्रिय बनाने तथा समुदाय के प्रौढ़ व्यक्तियों का इन कार्यों में संरक्षण प्राप्त करने के लिए एक सक्रिय मंच की आवश्यकता होती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए गाँव, शहर की गली व मोहल्ले के स्तर पर 'स्वास्थ्य क्लब' की संकल्पना सहायक हो सकती है। विद्यालय के स्वास्थ्य से सम्बन्धित मामलों में शिक्षकों के निर्देशन में विद्यालय के बालक-बालिकाएँ, गाँव व शहर की गली-मोहल्ले के उत्साही युवक-युवतियाँ संगठित होकर स्वास्थ्य-संवर्धन के लिए 'स्वास्थ्य क्लब' का संचालन कर सकते हैं। इस क्रम में ध्यान रखने योग्य बातें इस प्रकार हैं–

- स्वास्थ्य क्लब समुदाय के संरक्षण में संचालित हो, जिससे अनावश्यक विवादों से बचाव होगा।
- विद्यालय के स्वास्थ्य-शिक्षा से सम्बन्धित शिक्षक एवं अन्य रुचिशील शिक्षकों का सक्रिय निर्देशन हो, जिससे निरन्तर गतिविधियाँ जारी रह सकेंगी।
- आयु-लिंग के अनुसार क्लब की गतिविधियाँ भिन्न-भिन्न स्थानों एवं समय पर आयोजित हों।
- गतिविधियों में खेलकूद, व्यायाम, योगासन, मनोरंजनात्मक कार्यक्रम, साहित्यिक-सांस्कृतिक कार्यक्रम रखे जा सकते हैं।
- क्लब की सदस्यता हेतु स्थानीय स्तर पर नियम-उपनियम बनाये जाकर अनुशासित ढंग से संचालन हो।
- किशोरी बालिकाओं एवं युवतियों के लिये समुदाय की महिलाओं का संरक्षण एवं स्थानीय स्तर पर नियम-उपनियम बनाये जाकर अनुशासित ढंग से संचालन हो।
- सक्रियता के आधार पर नेहरू युवा केन्द्र, सहकारी संस्थाएँ, विभिन्न सामाजिक संगठन, स्वयंसेवी संस्थाओं से भी सम्बद्धता प्राप्त की जा सकती है।
- यह क्लब अपने आप में सक्रिय स्वयंसेवी संस्था का रूप ले सकता है।

4. स्वस्थ पर्यावरण

समुदाय में पर्यावरण के प्रति चेतना विकसित करना आवश्यक है। इसके अन्तर्गत वन्य जीवों का संरक्षण, वृक्षों का संरक्षण एवं वृक्षारोपण के साथ-साथ, गाँव के गोचर, जंगल आदि सभी के प्रति संवेदनशील होने की आवश्यकता है। इसे पर्यावरण संरक्षण भी कहते हैं। प्रारम्भ में इस दिशा में चेतना शेर, चीते, गैंडे, मगरमच्छ, विशिष्ट प्रकार की चिड़िया आदि को बचाने के प्रयासों की ओर ही रही, यह सोच सीमित

थी। पाँचवें दशक के बाद 1962 में रेशेल कारसन की पुस्तक 'साइलेन्ट स्प्रिंग' के प्रकाशन के बाद स्वस्थ पर्यावरण के रूप में 'प्रदूषण निवारण' प्रमुख मुद्दा बना। इसके अन्तर्गत जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण एवं ध्वनि प्रदूषण से बचाव के प्रति जागरूकता बढ़ी तथा रासायनिक पदार्थों के कम से कम प्रयोग पर जोर दिया जाने लगा। औद्योगिक विकास के कारण हुई पर्यावरणीय क्षति के कारण विकास की आँधी को रोकने की मुहिम 1972 में प्रारम्भ हुई। इसी वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्टॉकहोम (स्वीडन) में पहला पर्यावरण सम्मेलन आयोजित हुआ।

वायु, जल और ध्वनि प्रदूषण से बचाव

वायु

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 1968 में 'पर्यावरण प्रदूषण में शोध' नामक दस्तावेज जारी किया, तदनुसार वायु प्रदूषण रोकने के निम्न उपाय बताये गये :-

निरोधक :– वायु प्रदूषित करने वाले जहरीले तत्त्वों को वायु में छोड़ने से रोकना आवश्यक है। इस हेतु अभियान्त्रिकी तरीकों से 'विशिष्ट संयंत्र' लगाकर नियन्त्रित किया जा सकता है।

प्रतिस्थापना :– प्रदूषण फैलाने वाले उत्पाद एवं प्रयुक्त प्रक्रिया को बदल देना चाहिए, जैसे– कोयले के स्थान पर प्राकृतिक गैस या बिजली का प्रयोग किया जा सकता है।

हल्का करना :– सघन वृक्षारोपण को द्वारा वायु के प्रदूषण युक्त तत्त्वों से हल्का किया जा सकता है। औद्योगिक एवं आवासीय क्षेत्रों के बीच 'हरित पट्टी' बनाना लाभकारी होगा।

दण्ड विधान :– प्रदूषण फैलाने पर दण्ड का प्रावधान सख्ती से लागू किया जाना चाहिए। सार्वजनिक स्थानों पर धूम्रपान निषेध हो। वाहनों के रख-रखाव की जाँच लगातार की जाती रहनी चाहिए।

ओजोन परत का प्रभाव :– वायु में मुख्यतः नाइट्रोजन एवं ऑक्सीजन होती है। कुछ अन्य गैसें कार्बनडाईऑक्साइड, हाइड्रोजन व ओजोन शामिल होती हैं। निचले स्तर पर वायु में थोड़ी मात्रा में ओजोन होती है, परन्तु पृथ्वी से 24 कि.मी. ऊपर ओजोन की एक पतली परत होती है जो सूर्य से आने वाली पराबैंगनी किरणों को रोकती है। यदि ये किरणें धरती पर पहुँच जायें तो समस्त प्राणी एवं पौधे समाप्त हो जायेंगे। ओजोन परत बहुत तेजी से नष्ट हो रही हैं, इसके प्रमुख कारण निम्न हैं–

- रेफ्रिजरेटर, एयर कंडीशनर, एयरोसोल स्प्रे आदि में क्लोरोफ्लोरोकार्बन गैसों का अत्यधिक उपयोग, ओजोन परत को नष्ट करने का प्रमुख कारण है।

- क्लोरीन और अन्य गैसें पर्यावरण में मिलकर ओजोन परत में छेद करने में सक्रिय हो रही हैं।
- उपग्रहों ने पहले ही उत्तरी ध्रुव पर ओजोन परत में बड़े छेद कर दिये हैं।

यदि ओजोन परत पूर्ण रूप से नष्ट हो जाती है तो पृथ्वी के प्राणियों की आँखों का आकार छोटा, नाक का आकार बड़ा और लम्बाई कम हो जायेगी। सृष्टि नष्ट हो सकती है।

बचाव :–

- क्लोरोफ्लोरोकार्बन गैसों का उत्पादन पूर्णतया बन्द करना होगा।
- पर्यावरण संतुलन बनाये रखना होगा।
- प्रकृति के साथ छेड़-छाड़ बन्द करनी होगी।

जल

जल प्रदूषण को व्यक्तिगत, सामाजिक और सरकारी स्तर पर निम्न उपायों द्वारा रोका जा सकता है–

अपशिष्ट जल का शोधन :–

- आबादी के पास बने तालाबों में पशुओं को नहलाना, कूड़ा डालना, नहाना, धोना, आदि पर रोक लगाई जावे ताकि आवश्यकता पड़ने पर इस पानी को पीने योग्य बनाकर उपयोग किया जा सके।

  पानी की सार्वजनिक टंकी, हैंड पम्प आदि के पास कीचड़ नहीं हो।

  कुओं को ढक कर रखें तथा समीप में वृक्ष नहीं हो।

  कुओं, तालाबों से पानी निकासी हेतु गन्दी बाल्टी, रस्सी का प्रयोग नहीं हो।

  जल वितरण एवं सीवरेज प्रणाली पास-पास नहीं हों।

  सीवरेज के पानी को जल-स्रोत में छोड़ने से पूर्व उचित प्रणाली से जल शोधन किया जाए।

  औद्योगिक संस्थानों के अपशिष्ट जल में तेल, ग्रीस, वसा, अम्ल एवं विभिन्न धातुएँ मिली होती हैं। इसका रासायनिक शोधन करके कृषि कार्यों, सब्जी उत्पादन में उपयोग किया जाए।

जनसंख्या नियंत्रण (शिक्षित करना) :–

- जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने के उपाय काम में लिए जाएँ।
- सामाजिक संगठनों, समाचार-पत्रों व मीडिया के विभिन्न साधनों का

सकारात्मक उपयोग कर आम जन को इस ओर शिक्षित किया जाए।

- विद्यालय स्तर पर एन.सी.सी., एन.एस.एस., स्काउटिंग, गाइडिंग प्रवृत्तियों के माध्यम से आम नागरिक को जनसंख्या नियंत्रण के प्रति जागरूक किया जाए।
- जनसंख्या नियंत्रण की दिशा में लोगों को शिक्षित करने से जल प्रदूषण में बचाव होगा।

दण्ड विधान :– जल प्रदूषण करने वालों को सख्ती से रोकना आवश्यक है। महासागर, नदियों एवं नहरों का जल प्रदूषण एक वैश्विक समस्या बन गई है। भारत सरकार ने जल प्रदूषण को एक गम्भीर समस्या के रूप में स्वीकारते हुए संसद में 'जल अधिनियम-1974' पारित किया। इस अधिनियम के अन्तर्गत किसी भी उद्योग को लगाने की अनुमति तब तक नहीं दी जाती है, जब तक उसका मालिक अपशिष्ट जल के पुनः शोधन के सम्बन्ध में 'केन्द्र और राज्य सरकार अपशिष्ट नियंत्रण बोर्ड' को सन्तुष्ट कर प्रमाण पत्र न प्राप्त कर ले।

ध्वनि

'गलत समय, गलत स्थान पर गलत शोर' ही ध्वनि प्रदूषण है। इसे रोकने के हरसम्भव उपाय किये जाने चाहिए। प्रमुख सुझाव निम्नानुसार हैं :–

ध्वनि स्रोत पर नियंत्रण :–

- शोर करने वाली मशीनों पर शोर नियंत्रक उपकरणों का प्रयोग करें।
- आबादी क्षेत्र में शोर करने वाली मशीनों को चलाने की अनुमति नहीं दी जाए।
- लाउड स्पीकर, वाहनों के असमय हॉर्न बजाने, असमय धमाके, पटाखों पर रोक लगाई जाए।
- आवारा कुत्तों का भौंकना, स्कूटर के साइलेन्सर का टूटना, वाहनों का अनावश्यक शोर करना भी रोका जाना चाहिए।
- रेल्वे लाइन, हाईवे, मोटर वर्कशॉप, औद्योगिक फैक्ट्रियाँ आदि बस्ती से दूर होनी चाहिए।
- कानों में डाट, मफ एवं हेलमेट पहनने से प्रदूषण से बचा जा सकता है।

जन जागृति :– जनसाधारण में सामान्य जागृति सभी तरह के प्रदूषण के न्यून होने एवं बचाव का शक्तिशाली माध्यम है।

दण्ड विधान :– भारतीय दण्ड संहिता की धारा 268 के अन्तर्गत ध्वनि प्रदूषण करना आपराधिक मामला है एवं दण्डनीय है।

स्वस्थ पर्यावरण बनाये रखने हेतु स्थानीय स्तर पर निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये :-

- स्थानीय परिवेश को गंदगी से बचायें।
- स्थानीय जल स्रोत स्वच्छ रहें।
- हरे वृक्षों की कटाई निषेध हो।
- नये वृक्ष लगायें एवं संरक्षण करें।
- गाँव के परिवेश में गोचर भूमि, पशुओं के चारे-पानी के लिये सुरक्षित रखें।
- जानवरों का शिकार निषेध हो।
- डीजल-पेट्रोल वाहनों का न्यूनतम प्रयोग हो।

समुदाय की जागरूकता का श्रीगणेश विद्यालय के बालक-बालिकाओं के माध्यम से किया जा सकता है। 'आज के बच्चे-कल का राष्ट्र' की भावना के अनुरूप, यदि आज बच्चे जागरूक होते हैं तो पर्यावरण को संरक्षित रखने में कल सहायक हो सकते हैं। यह सत्य है कि समृद्धि की दौड़ में इन्सान अपने सुख व शान्ति के अतिरिक्त भी बहुत कुछ खोता जा रहा है। विकास के लिये औद्योगिक क्रान्तियों ने प्रकृति का जमकर शोषण किया है। खानाबदोश जिन्दगी के बाद इन्सान ने सबसे पहले कृषि करना शुरू किया। एक जगह व्यवस्थित रहना सीखा। गाँव-ढाणियाँ बसीं। कृषि से औद्योगिक अवस्था में प्रवेश किया। बड़े शहर बसे। तीव्रगामी यातायात के साधन तैयार किये। इस क्रान्ति ने प्रकृति को बुरी तरह झकझोर दिया। वन कटने लगे, जैविक विविधता नष्ट होने लगी। कृषि भूमि, वन भूमि पर आवासीय बस्तियाँ बसने लगीं। बढ़ती जनसंख्या ने स्थिति को और भी खराब कर दिया है। इस स्थिति को जागरूकता, चेतना एवं सही मायने में स्वास्थ्य पर्यावरण की शिक्षा को अपनाकर नियन्त्रित किया जा सकता है।

सामुदायिक स्वास्थ्य–

''जब सम्पूर्ण समुदाय के लोगों का स्वास्थ्य सुरक्षित तथा उन्नत बनाने के लिए संगठित सामुदायिक प्रयासों द्वारा कार्य किया जाता है, तब उसे समुदाय का स्वास्थ्य कहते हैं।''

'समुदाय का स्वास्थ्य' यह दो शब्दों के मेल से बना है–समुदाय और स्वास्थ्य। अतः इस दिशा में कार्य करने के लिए समुदाय और स्वास्थ्य दोनों के सम्बन्ध में अलग-अलग विशद ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। इसमें समुदाय को स्वास्थ्य सम्बन्धी सभी बातों की जानकारी देना आवश्यक है। जैसे–जीवशास्त्र, रसायन शास्त्र, भौतिक और

औषधि शास्त्र। उन्हें यह भी सिखाया जाता है कि कब, क्या, कैसे और कितना खाना, पीना, सोना, जागना चाहिए अथवा किस प्रतिरोधक दवा से कौनसी बीमारी रोकी जा सकती है। अथवा मच्छरों को क्यों, कैसे, किस प्रकार से मारा जा सकता है। केवल इन बातों का ज्ञान ही समुदाय सम्बन्धी ज्ञान नहीं है, उन्हें समाज का ज्ञान भी होना चाहिये तभी समुदाय स्वास्थ्य सेवा का कार्यक्रम पूर्ण रूप से सफल हो सकता है।

स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यों में पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिए जनता को केवल स्वास्थ्य सम्बन्धी बातों का बतला देना भर ही पर्याप्त नहीं होता, वरन् उसके विचार परिवर्तन द्वारा उनका पूर्ण सहयोग प्राप्त करना आवश्यक होता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य संघ के स्वास्थ्य सम्बन्धी आन्दोलन का सूत्र इस प्रकार है–"व्यक्ति रूप से जनता को, जनता के लिए, जनता के साथ कार्य करना चाहिए।" इसका अभिप्राय है कि स्वास्थ्य सम्बन्धी जो कार्य किये जायें, जनता जाने, समझे और ऐसे कार्यक्रमों के प्रति केवल अपनी सहानुभूति या अनुमोदन ही नहीं व्यक्त करे बल्कि ऐसे वातावरण का निर्माण हो जिसमें जनता स्वयं उन कार्यों के सफल सम्पादन के लिए प्रयत्नशील हो।"

डॉ. लक्ष्मीकांत के अनुसार समुदाय के स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यों के लिए निम्नलिखित तीन बातों का होना अति आवश्यक है–

(i) कार्यक्रम की योजना। (ii) निश्चित योजना के अनुसार व्यवस्थित रूप से कार्य सम्पादन। (iii) कार्यों का मूल्यांकन।

यह आवश्यक नहीं है कि एक ही योजना एवं कार्यक्रम सभी जगह समान रूप से काम में लाया जाये। विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न वर्गों के लिए विभिन्न रूप से व्यवस्था करना बहुत अधिक उपयोगी होता है क्योंकि समुदाय का कोई निश्चित स्तर नहीं होता और न ही उनकी विचारधाराएँ एक सी होती हैं। अतः समुदाय की प्रवृत्तियों एवं आवश्यकता के अनुकूल कार्यक्रम की योजना बनाने से ही उसका पूर्ण सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। ध्यान रखना चाहिए कि समुदाय के स्वास्थ्य सम्बन्धी कोई योजना बनानी चाहिए। इसलिए विन्सले साहब ने सामुदायिक स्वास्थ्य को विज्ञान और कला दोनों कहा है। (Public Health is Science and Art.)

स्वास्थ्य के लिए वांछित आदतें–

(1) प्रातः ब्रह्ममुहूर्त (सूर्योदय से ढाई घण्टे पूर्व या चार बजे) उठ जाना चाहिए।

(2) प्रातः उठकर लघुशंका (पेशाब) करके, हाथ-पैर धोकर ताजा जल पीना चाहिए।

(3) कुछ काल बैठकर ईश्वर का ध्यान, महापुरुषों का स्मरण और भू माता की वन्दना करनी चाहिये।

(4) प्रात: शौच से निवृत्त होकर दन्तमंजन करना चाहिए और ताजा जल से आँखों पर छपाके देना चाहिये।

(5) प्रात:काल ओस की बूँदों से भीगी हरी घास पर नंगे पाँव टहलना चाहिये।

(6) शरीर की शक्ति के अनुसार व्यायाम करना चाहिये।

(7) प्रतिदिन नियमित रूप से ताजा या ठण्डे जल से स्नान करना चाहिये।

(8) स्नान के बाद शरीर को तौलिये से पूरी तरह सुखाकर खूब रगड़ना चाहिये।

(9) श्वास सदा नाक से ही लेना और छोड़ना चाहिये।

(10) भोजन सदा नियत समय पर, स्वच्छ स्थान में, स्वच्छ पात्र में स्वच्छता के साथ तैयार करके खाना चाहिये।

(11) भोजन ऋतु, प्रकृति तथा समय के अनुकूल होना चाहिये और भूख लगने पर ही भोजन करना चाहिये।

(12) दिन में मुख्य भोजन केवल दो बार करना चाहिये। रात्रि का भोजन दिन की अपेक्षा हल्का, सोने से कम से कम दो घण्टे पूर्व लेना चाहिए।

(13) भोजन के तुरन्त बाद में अधिक जल न पीयें। कुछ देर बाद खूब जल पीयें।

(14) पीने का जल स्वच्छ और शीतल होना चाहिए। लेटकर या खड़े होकर पानी नहीं पीना चाहिये।

(15) प्रतिदिन छ: से आठ घण्टे तक रात्रि विश्राम करना चाहिए।

(16) रात को हल्के कपड़े पहनकर सोना चाहिये। सोने से पूर्व पेशाब अवश्य कर लेना चाहिये। हाथ, पैर, मुँह धोकर सोने से नींद अच्छी आती है।

(17) सोते समय मुँह नही ढकना चाहिये तथा कमरे में शुद्ध और ताजा हवा आने-जाने का प्रबन्ध होना चाहिये।

(18) सोते समय सात्विक विचार मन में लाने चाहिये। किसी प्रकार की अश्लील या भद्दी बात की कल्पना भी नहीं करनी चाहिये।

(19) नशीले व उत्तेजक पदार्थों का सेवन नहीं करनी चाहिये।

(20) किसी भी समय खाली नहीं बैठना चाहिये क्योंकि निठल्लेपन में शैतान का वास होता है।

(21) यात्रा में किसी भी अनजान व्यक्ति से लेकर कुछ भी खाना-पीना नहीं चाहिये।

(22) चिन्ता, शोक और मानसिक तनाव से मन को मुक्त रखना चाहिये।

(23) दूसरे व्यक्ति के वस्त्रों का प्रयोग न करें और न किसी के साथ बिस्तर पर सोयें।

(24) बहुत तंग जूते और बहुत तंग कपड़े नहीं पहनने चाहिए। इससे संचार में बाधा उत्पन्न होती है।

(25) स्वच्छ और ऋतु के अनुकूल वस्त्र पहनने चाहिये।

(25) झुककर या सहारा लेकर नहीं बैठना चाहिए।

(27) सप्ताह में कम से कम एक बार तेल की मालिश अवश्य करनी चाहिये।

(28) कम या धुंधली रोशनी में पढ़ने या बारीक सिलाई-कढ़ाई का काम करने से आँखों की ज्योति कमजोर हो जाती है। अधिक तेज रोशनी या धूप में पढ़ने से भी आँखों को हानि पहुँचती है।

(29) पढ़ते या लिखते समय पुस्तक पर प्रकाश बायीं ओर से पड़ना चाहिए।

(30) आँख से पुस्तक की दूरी 32 सेन्टीमीटर के लगभग होनी चाहिये।

स्वास्थ्य के लिए अवांछित आदतें—जो आदतें वांछित आदतों से विपरीत हैं, वे ही अवांछित आदतें हैं। कुछ अवांछित आदतें निम्नलिखित हैं :-

(1) देर से सोना और देर से उठना।

(2) शारीरिक स्वच्छता के अभाव में खाना-पीना।

(3) यहाँ-वहाँ थूकना।

(4) जब दो व्यक्ति परस्पर बातचीत कर रहे हों तो बीच में बोलना।

(5) बाजार की खुली चीजें लेकर खाना।

(6) पुस्तकालय की पुस्तकों या मैगजीन के पृष्ठ फाड़ना।

(7) राष्ट्रीय सम्पत्ति को हानि पहुँचाना या उसमें सहयोग करना।

(8) मादक या नशीले पदार्थों का सेवन।

(9) नियत समय पर नियत कार्य न करना, विलम्ब से विद्यालय जाना।

(10) शरीर व वस्त्रों की सफाई न करना।

ये सभी अवांछित आदतें हैं। इनसे बचना चाहिये।

सिगरेट पीने से हानियाँ—बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू इत्यादि आग के संयोग से पी जाने वाली चीजें फेफड़ों को खराब करती हैं। इनके व्यवहार से कण्ठ और आँखों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। तम्बाकू में निकोटिन (Nicotine) नामक एक जहरीला रसायन होता है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। इससे सिरदर्द, सिर में चक्कर अथवा अनिद्रा रोग उत्पन्न होता है तथा हाथ काँपना, दम फूलना, हृदय की गति तीव्र होना जैसे विकार

उत्पन्न हो जाते हैं। बहुत अधिक सिगरेट पीने से मुँह व फेफड़ों के कैंसर भी हो सकते हैं।

शराब पीने से हानियाँ– शराब इंसान को इंसान नहीं रहने देती वरन् हैवान बना देती है। यह व्यक्तित्व और बुद्धि को तो नष्ट करती ही है, साथ-साथ लीवर, स्नायु और पाचन संस्थानों पर कुप्रभाव डालकर शरीर को भी अशक्त करती है। शराब का अधिक पान करने से श्वास यन्त्र दूषित हो जाता है। यह उम्र को कम करती है।

सामान्यत: वे व्यक्ति जो अपने को कठिन समस्याओं का सामना करने में असमर्थ समझते हैं अथवा उपेक्षित या परित्यक्त होते हैं या जो शराबियों की कुसंगति में पड़ जाते हैं, शराब पीने लगते हैं। शराब-पान व्यक्ति को अचेतन और क्रियाहीन बनाता है। पाचन-संस्थान में यह अन्य रसों के साथ हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (Hydrochloric Acid) की मात्रा बढ़ाकर तथा पेप्सिन (Pepsin)की मात्रा कम कर पेट में विकार उत्पन्न करता है।

आवृत्ति स्वास्थ्य परीक्षा—आवृत्ति स्वास्थ्य परीक्षा से अभिप्राय किसी स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का कुशल चिकित्सक द्वारा मासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक परीक्षण से है जिससे कि वह यह ज्ञात कर सके कि व्यक्ति विशेष में किसी रोग अथवा शरीर के कार्य संचालन में बाधा उपस्थित होने का प्रमाण तो नहीं है। परीक्षण के समय तथा उसकी पूर्णता का निर्धारण व्यक्ति के सामान्य स्वस्थ्य की दशा से किया जाता है।

स्वास्थ्य परीक्षा का उद्देश्य तात्कालिक ही नहीं होता, वरन् वह व्यक्ति के आगामी जीवन में किसी न किसी रूप में सहायक सिद्ध होता है। इसलिये आवश्यक है कि जन्म से लेकर समय-समय पर होने वाले स्वास्थ्य परीक्षणों का नियमित आलेख किया जाये, ताकि यह ज्ञात किया जा सके कि व्यक्ति बचपन में किन-किन रोगों का कब-कब शिकार रहा, किन-किन चीजों का परीक्षण किया गया तथा कौन-कौन से रोगों के निरोधक टीके कब-कब लगाए गये। स्वास्थ्य का व्यक्तिगत आलेख रखने के लिए फार्म का उपयोग करना चाहिए अथवा परिवार की फाइल में समय-समय पर प्राप्त निरीक्षणों की सूचना संकलित करके रखनी चाहिये।

प्रत्येक बालक के सम्बन्ध में उसके जन्म से सम्बन्धी जानकारी, उसकी ऊँचाई एवं भार की प्रगति, रोग-निरोधक टीके लगाने की तिथियाँ तथा संक्रामक रोगों के सम्बन्ध में सूचना आलेख में होनी चाहिये। चिकित्सक को दिखाने की तिथियाँ, रोग, ऑपरेशन, औषधियों की प्रतिकूल प्रतिक्रियाओं तथा चिकित्सीय महत्त्व की अन्य समस्त जानकारी आलेख में अंकित करनी चाहिये। यह जानकारी परिवार के चिकित्सक तथा बच्चों को उनके आगामी जीवन में बड़ी सहायक सिद्ध होती है।

स्वास्थ्य परीक्षा की आवृत्ति—स्वास्थ्य परीक्षा कितनी बार हो, यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। स्वास्थ्य विशेषज्ञों का कहना है कि सामान्यत: स्वस्थ्य शिशु के स्वास्थ्य का परीक्षण एक वर्ष की आयु का होने तक प्रति छठे सप्ताह किया जाना चाहिए। दूसरे वर्ष में प्रति तीन माह, तीसरे से छठे वर्ष तक कम से कम दो बार तथा छ: वर्ष की आयु के बाद वर्ष में कम से कम एक बार स्वास्थ्य की परीक्षा की जानी चाहिये। यदि स्वास्थ्य परीक्षण की यह सुविधा उपलब्ध न हो सके तो व्यक्ति के जीवन में निम्नलिखित अवस्था में स्वास्थ्य परीक्षा अनिवार्य रूप से की जानी चाहिये–

1. जन्म के समय
2. विद्यालय में प्रवेश के समय (लगभग 6 वर्ष की आयु में)
3. किशोरावस्था के प्रारम्भ के समय (लगभग 14 वर्ष की आयु में)
4. विवाह के समय (लगभग 24-25 वर्ष की आयु में)
5. मध्यावस्था में (लगभग 45 वर्ष की आयु में)
6. लगभग 64 वर्ष की अवस्था में।

यहाँ एक विद्यार्थी के स्वास्थ्य परीक्षा का आलेख प्रस्तुत किया जा रहा है–

विद्यार्थी स्वास्थ्य परीक्षण आलेख

नामांक..... कक्षा..... अनुभाग..... माह.....

वर्ष..... विद्यालय का नाम.....

ग्राम..... पं. समिति..... जिला.....

विद्यार्थी का नाम..... पिता/संरक्षक का नाम.....

स्थानीय पता.....

आयु..... जन्मतिथि..... लिंग.....

1. *विगत रुग्णता विवरण*

(1) चेचक.....

(2) मोतीझरा (Typhiod).....

(3) बोदरी माता (Measle).....

(4) कनफेड़ (Mumps).....

(5) बार-बार गले में खराश (Sore throat).....

(6) पेट में कीड़े (Worms).....

(7) अन्य.....

पारिवारिक रोगों का विवरण

(1) तपेदिक.....

(2) मधुमेह.....

2. निजी स्वास्थ्य ..... स्वच्छता ..... नाखून ..... बुद्धि एवं चातुर्य ..... मुँह की सफाई ..... दाँत, मसूढ़े .....

3. शारीरिक विकास ..... वजन ..... ऊँचाई .....

3. छाती/सीना (क) फूलने केपहले ..... (ख) फूलने के बाद .....

4. बालों की स्वच्छता (खोपड़ी जूँ) .....

5. कान ..... 6. नाक .....

7. नेत्र ..... दृष्टि दूर की ..... दृष्टि पास की ..... भेंडापन .....

8. बोलने के दोष (Speech) .....

9. चर्मरोग ..... फोड़े-फुन्सी ..... खुजली ..... दाद-छीलन ..... खारवे(Sores) .....

10. अवयवों की जाँच

खून की कमी ..... लिम्फ ग्रन्थि .....

हृदय ..... तिल्ली .....

जिगर ..... फेफड़े .....

11. चाल ढाल- सामान्य/असामान्य .....

12. पोषाहार की कमी के कारण दोष .....

13. चिकित्सा अधिकारी की राय .....

हस्ताक्षर चिकित्सा अधिकारी

दिनांक

14. माता-पिता/अभिभावकों को दी गई सलाह .....

15. अनुवर्ती कार्यवाही (Follow-up Action) .....

18. विद्यार्थी के सम्बन्ध में अध्यापक की राय-

(1) शैक्षिक उपलब्धि के सम्बन्ध में : अच्छा/सामान्य/कमजोर

(2) उपस्थिति नियमित /अनियमित

(3) अन्य

हस्ताक्षर अध्यापक

दिनांक

2

पर्यावरण स्वास्थ्य

विज्ञान ने जहाँ एक ओर विकास का मार्ग प्रशस्त किया है, वहीं दूसरी ओर विनाश का भी। विज्ञान के ही परिणामस्वरूप आज मानव इस लोक और परलोक की सुविधाएँ भोगने में समर्थ हुआ है परन्तु दूसरी ओर यही विज्ञान मानव को प्रकृतिदत्त वरदानों से वंचित कर उसे विनाश के कगार पर पहुँचा रहा है। प्रकृति ने हमें वायु, जल, भूमि निःशुल्क प्रदान किये हैं। इन सभी को मिलाकर पर्यावरण कहते हैं, पर मानव इन सबको दूषित कर स्वयं के पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहा है।

पर्यावरण स्वास्थ्य की व्याख्या में जाने से पूर्व पहले इसकी सर्वमान्य परिभाषा जान लेना उचित होगा। विश्व स्वास्थ्य संघ (W.H.O.) द्वारा आयोजित विशेषज्ञों की एक समिति ने 1950 ई. में एक विषय पर जो विवरण प्रकाशित किया था, उसमें इसकी परिभाषा निम्न प्रकार से दी गई है–

"Environmental sanitation means the control of all those things in man's surrounding which cause or may cause, a bad effect on his development, his health and his length of life."

अर्थात् "सम्पूर्ण परिवेश की सफाई का अर्थ है–मनुष्य के आस-पास की उन समस्त चीजों का नियंत्रण जो उसके विकास, स्वास्थ्य और वायु पर बुरा प्रभाव डालती हों या डाल सकती हों।"

उपर्युक्त समिति ने इसके अन्तर्गत अग्रलिखित आठ चीजों के नियंत्रण की योजना उपस्थित की–

(1) मल-मूत्र, नालियाँ और कूड़ा-करकट की सफाई का समुचित प्रबन्ध।

(2) जल प्राप्ति के विभिन्न साधनों का समुचित प्रबन्ध जिससे शुद्ध व स्वच्छ जल प्राप्त हो सके।

(3) गृह निर्माण सम्बन्धी नियन्त्रण जिससे भविष्य में केवल ऐसे ही घर बनाये जायें जो स्वास्थ्यप्रद हों तथा जिनमें छूत की बीमारियों के फैलने की सम्भावनायें कम हों।

(4) दूध व अन्य खाद्य सामग्रियों की देखभाल।

(5) व्यक्तिगत सफाई के लिए जनता की अभिरुचि और ज्ञान की अभिवृद्धि जिससे रोगों के शुरुआत की सम्भावनाएँ कम हों।

(6) ऐसे कीड़े-मकोड़े, चूहे तथा अन्य छोटे-मोटे जानवर और अन्य जीव-जन्तु जो मनुष्यों में बीमारी फैलाते हैं, उन पर नियंत्रण।

(7) मनुष्यों के निवास स्थान और कारखानों का ऐसा प्रबन्ध कि उनके आस-पास वातावरण शुद्ध रहे।

(8) इस बात की देखरेख करना कि बड़े-बड़े कल-कारखाने, लघु निर्माण शालाएँ, उनमें काम करने वालों का निवास स्थान, सड़क, शौचालय, नालियाँ तथा उनके आस-पास का वातावरण स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से निर्दोष हो।

अब हम ग्राम और कस्बों की स्वास्थ्य सम्बन्धी परिस्थितियों में सुधार की आवश्यकता पर विचार करेंगे।

ग्राम एवं कस्बों की स्वास्थ्य सम्बन्धी परिस्थितियों में सुधार की आवश्यकता

भारत की अधिकांश जनसंख्या गाँवों में निवास करती है, जहाँ न तो शिक्षा के उचित साधन हैं और न ही आधुनिकतम सुविधाएँ। वे लोग आज भी काफी पिछड़े हैं और परम्परानुसार अपना जीवनयापन करते हैं। ग्राम एवं कस्बों की स्वास्थ्य सम्बन्धी परिस्थितियों में सुधार हेतु सर्वप्रथम उनका सर्वे करना आवश्यक है। हम जिस ग्राम या कस्बे में सुधार करना चाहते हैं वह ग्राम शहर से कितनी दूर है? वहाँ पक्की सड़कें, विद्युत, चिकित्सालय, विद्यालय आदि हैं या नहीं तथा उस ग्राम या कस्बे के लोगों की आदतों, परम्पराओं और स्वास्थ्य सम्बन्धी वर्तमान व्यवस्था क्या है, का पता करके ही भावी योजना का निर्माण करना चाहिए। साथ ही यह स्मरण रखना चाहिए कि एक ही ग्राम या कस्बे की योजना सभी गाँवों या कस्बों के लिए एक समान नहीं हो सकती क्योंकि हर ग्राम का सामाजिक स्तर और उसकी मान्यताएँ अलग-अलग हुआ करती हैं। यदि कोई गाँव शहर से काफी दूर और पिछड़ा हुआ है तो वहाँ के निवासियों को शिक्षित करना हमारी प्राथमिक आवश्यकता होगी। ग्रामं व कस्बों की स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें आती हैं-

(1) मल-मूत्रादि और कूड़े-करकट का निराकरण।

(2) पीने के पानी का सुप्रबन्ध।

(3) भोजन सम्बन्धी सफाई।

(4) गृह-प्रबन्ध।

(5) कीड़े-मकोड़ों पर नियन्त्रण।

(6) मृत-पशुओं का निराकरण।

(7) ग्राम समिति।

(8) स्वास्थ्य शिक्षा।

(1) मल-मूत्रादि और कूड़े-करकट का निराकरण–देहात के 98% परिवारों में निजी पाखाने का प्रबन्ध नहीं होता और लोग खुली जगह में मल त्याग करते हैं। इसके लिए आमतौर से तालाब या नदी का किनारा या आम के बगीचे को चुना जाता है। इन स्थानों का तापमान व नमी हुकवर्म के लार्वों को जीवित रखने व बढ़ाने के लिए उपयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त गोबर का ढेर मकान के पास ही कर दिया जाता है जिससे मक्खियों को अपना वंश विस्तार करने में सुविधा होती है। घर का कूड़ा-करकट भी आम रास्तों में फेंक दिया जाता है जिससे धूल के कण और कीटाणु पानी, भोजन और हवा को दूषित करते हैं। अत: मल-मूत्र तथा गन्दगी का निराकरण ग्रामीण स्वास्थ्य के लिए सर्वप्रमुख आवश्यकता है। वर्तमान परिस्थितियों में गाँवों के लिए बोर होल (Bore-hole) उषा ग्राम (Usha Gram) और सैफ्टी टैंक (Safty Tank) पाखाने उपयुक्त हैं। घर का कूड़ा-करकट और गाय-बैल-घोड़े का मूत्र वगैरह के निराकरण के लिए कम्पोस्टिंग (Composting) सबसे अच्छा आधुनिक तरीका है।

(2) पीने के पानी का सुप्रबंध–अधिकांश गाँवों में पीने के पानी की पूर्ति छिछले तालाब, खुले कुएँ और नदियों के जल से की जाती है। इनका पानी आसानी से गन्दा व दूषित हो जाता है जिससे हैजा, पेचिश, मियादी बुखार आदि फैलने का भय रहता है। देहातों में जल आपूर्ति का उपयुक्त तरीका सुरक्षित कुएँ और नलकूप हैं।

(3) भोजन सम्बन्धी सफाई–समुचित स्वास्थ्य शिक्षा के अभाव में ग्रामवासी खाने-पीने की चीजों को खुला छोड़ देते हैं जिससे उन पर धूल के कण और मक्खियाँ बैठकर उन्हें दूषित कर देते हैं। कभी-कभी कुत्ता-बिल्ली भी उन्हें झूठा कर दूषित कर देते हैं। खाने-पीने की चीजों को ढककर रखना चाहिये और उन्हें आवश्यकता के समय ही हाथ लगाना चाहिये।

(4) गृह प्रबन्ध–गाँवों में गृह-निर्माण की कोई समुचित व्यवस्था नहीं होती। अधिकांश घरों में खिड़कियों, रोशनदान तथा नालियों का अभाव होता है, रसोईघर से धुआँ निकलने का भी कोई प्रबन्ध नहीं होता, जिससे घर व आस-पास का वातावरण दूषित रहता है। देहातों में स्वास्थ्यकर घरों के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है–

1. घर को गोबर के घोल से नहीं लीपना चाहिये।

2. रसोईघर को सोने या पशु बाँधने के रूप में काम में नहीं लेना चाहिये।

3. हर कमरे में कम से कम दो खिड़कियाँ होनी चाहिए।

4. कूड़ा-करकट व गोबर ठीक प्रकार से इकट्ठे किये जाने चाहिये।

5. नालियों का समुचित प्रबन्ध होना चाहिये।

(5) कीड़े-मकोड़ों पर नियन्त्रण– मक्खी, मच्छर, चूहों आदि से अनेक रोगों के फैलने की सम्भावना रहती है। मच्छर मलेरिया और चूहे प्लेग रोग के कीटाणुओं के वाहक हैं। अत: आवश्यक है कि इन कीटों पर नियन्त्रण रखने के लिए प्रभावशाली रसायनों का उपयोग किया जाये।

(6) मृत पशुओं का निराकरण–देखा गया है कि गाँवों में मृत पशुओं को किसी स्थान विशेष पर फेंकने के बजाय यों ही छोड़ दिया जाता है जिससे वातावरण दूषित व दुर्गन्धयुक्त हो जाता है। अत: मृत पशुओं को फेंकने का स्थान गाँव से बाहर होना चाहिये।

(7) ग्राम समिति–गाँवों में पर्यावरण स्वास्थ्य की देख-भाल के लिए एक ग्राम समिति का गठन किया जाना चाहिये। इसमें उत्साही व कर्मठ युवकों को आगे आकर स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यवस्था को बनाने में सहयोग करना चाहिये। इसमें ग्राम के मुखिया, डिस्पेन्सरी व प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र के चिकित्सक का पूरा सहयोग मिलना चाहिये।

(8) स्वास्थ्य शिक्षा–ग्रामीण बालकों, युवकों व स्त्रियों की शिक्षा के लिए विद्यालय और प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र होने चाहिये। इनको स्लाइड्स, लघु फिल्मों व पोस्टरों आदि के सहयोग के विषय में शिक्षा दी जानी चाहिये क्योंकि जब तक ग्रामीणों का इस कार्य में सहयोग नहीं मिलेगा तब तक स्वास्थ्य सम्बन्धी कोई भी योजना न तो आरम्भ ही हो सकती है और न ही वह सफल हो पायेगी।

ग्राम व कस्बों के लिए सफाई सम्बन्धी कार्यक्रम बनाते समय कुछ विचारणीय बातें निम्नलिखित हैं–

1. गाँवों में कार्य करने वाले कार्यकर्ता योग्य तथा अनुभवी हों और उन्हें समुचित वेतन दिया जाये।

2. कार्य आरम्भ करने से पूर्व ग्राम या कस्बे की स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकताओं का सर्वेक्षण करा लेना चाहिये।

3. किसी भी तरह के कार्यक्रम की योजना बनाते समय यदि अन्य विभाग या व्यक्तियों से भी परामर्श लेना अपेक्षित हो तो उसे लेने में संकोच नहीं करना चाहिये। कार्यक्रम उपयोगी व ठोस होना चाहिये। दिखावटी व छिछले आयोजन से कोई लाभ होने वाला नहीं है।

4. सभी विभागों को परस्पर मिलकर सहयोग की भावना से कार्य करना चाहिये।

5. जनता को स्वास्थ्य सम्बन्धी शिक्षा देने की उचित व्यवस्था की जानी चाहिये।

6. आवश्यकता पड़ने पर सरकार का भी सहयोग लिया जा सकता है कार्यकर्ताओं को सदा ख्याल रखना चाहिए कि उनका कार्य जनता का पथ-प्रदर्शन करना है, उन्हें हाँकना नहीं है।

मानवीय अवशिष्टों को हटाने के लिए अद्यतन विधियाँ

त्वचा, मुख, आँत और गुदा से निकलने वाले अवशिष्टों पसीना, कफ, थूक और मल-मूत्र को ही मानवीय अवशिष्ट कहा जाता है। पसीना, कफ व थूक आदि के निस्तारण का समुचित स्थान स्नानागार है। नहाने-धोने से पसीना पानी के साथ बह जाता है। नाक व गला घर के किसी अन्य स्थान पर साफ न करके स्नानागार में ही साफ किया जाना चाहिये। परन्तु मल-मूत्र के निष्कासन के प्रश्न का समाधान इतना सरल नहीं है। यह एक जटिल और गम्भीर समस्या है। लगभग तीस-चालीस वर्ष पहले सभी जगह परन्तु ग्राम व कस्बों में बहुधा अब भी लोग मल-मूत्र त्यागने के लिए घर के बाहर खुले में जाते हैं। यह प्रथा न तो उचित है और न वर्तमान में नगरों के लिए यह सम्भव ही है। मल-मूत्र संवाहन की सुव्यवस्था के अभाव में हैजा, टाइफाइड, पेचिश जैसे अनेक रोग फैल जाते हैं। इन रोगों से पीड़ित व्यक्तियों के मल पर बैठकर मक्खियाँ रोगों के जीवाणुओं को भोज्य पदार्थों के द्वारा स्वस्थ मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट कर देती हैं। इन सबसे बचने के लिए प्रत्येक घर में अच्छे शौचालय का होना अनिवार्य है।

एक अच्छे शौचालय में निम्नलिखित गुण होने चाहिये-

1. शौचालय इस प्रकार का हो जिसमें मल-मूत्र न तो दिखाई दे और न ही उसकी दुर्गंध फैले।

2. शौचालय के निकट की भूमि अथवा जल के दूषित होने की जरा भी सम्भावना न हो।

3. मल-मूत्र पर मक्खियाँ न बैठें।

4. सस्ता शौचालय बनाने की व्यवस्था हो जिससे गरीब व ग्रामीण व्यक्ति भी सरलता से शौचालय का निर्माण करा सके।

मल-निकास की विधियाँ-वर्तमान में मल-निकास की दो विधियाँ प्रचलित हैं-

1. शुष्क विधि और 2. जल संवहन विधि।

हमारे देश में अधिकांश कस्बों व नगरों में शुष्क विधि का ही प्रचलन है क्योंकि जल संवहन विधि में जल की अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है। बड़े-बड़े नगरों में जहाँ जल की पर्याप्त व्यवस्था होती है वहाँ जल संवहन विधि को अपनाया जाता है।

1. शुष्क विधि–इस विधि में मनुष्य का मल-मूत्र श्रम द्वारा संगृहीत कर निस्तारण हेतु नगर से बाहर ले जाया जाता है। प्रारम्भ में इस विधि का प्रयोग सम्पूर्ण विश्व में होता था परन्तु अब अधिकांश देशों में जल संवहन विधि को अपना लिया गया है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार तथा स्वास्थ्य ज्ञान में वृद्धि के साथ-साथ हमारे देश में भी जल संवहन विधि को अपनाया जा रहा है परन्तु गाँवों तथा कस्बों में अभी भी शुष्क विधि से ही मल-मूत्र का संग्रह किया जाता है। शुष्क विधि से मल-मूत्र संग्रह करने हेतु हमारे देश में विभिन्न प्रकार के शौचालय बनाये जाते हैं, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं–

बाल्टी वाले शौचालय– इस विधि के शौचालय में एक खोखला मंच होता है जिसमें एक छिद्र से होकर मल नीचे फर्श पर एकत्रित होता रहता है। अधिकांश शौचालयों में मल एकत्रीकरण के लिए कोई पात्र नहीं होता, कहीं-कहीं मल को सुविधापूर्वक उठाने के लिए बाल्टी लगा दी जाती है।

कमोड वाले शौचालय–पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित लोग कमोड वाले शौचालयों का उपयोग करते हैं। यह कुर्सी की तरह का बना होता है। इसमें बैठने के लिए लकड़ी की एक सीट होती है जिसमें से मल निकलने के लिए एक छिद्र होता है। छिद्र के नीचे मल एकत्रित करने हेतु एक पात्र लगा होता है। छिद्र के ऊपर एक ढक्कन भी होता है जिसे प्रयोग करने से पहले खोला व प्रयोग के बाद बन्द किया जा सकता है।

उपर्युक्त दोनों ही प्रकार के शौचालयों में मेहतर की सेवाओं की नितान्त आवश्यकता होती है। वे ही मल को एकत्रित कर उसे गाँव या नगर से बाहर ले जाने का कार्य करते हैं।

सण्डास विधि–उपर्युक्त शौचालयों के अतिरिक्त कहीं-कहीं सण्डास विधि को भी उपयोग में लाया जाता है। इस विधि के अन्तर्गत जमीन में एक गहरा गड्ढा खोद लिया जाता है और गड्ढे से मल का निष्कासन नहीं किया जाता। वह उसी में पड़ा सड़ता रहता है। इस विधि के प्रयोग में मेहतरों की सेवाओं की अधिक आवश्यकता नहीं होती।

शुष्क विधि से एकत्रित मल-मूत्र का अन्तिम निस्तारण निम्न विधियों द्वारा किया जाता है–

(1) जलाकर–हमारे देश में अभी यह विधि अधिक प्रचलन में नहीं हैं क्योंकि यह विधि अत्यधिक व्ययसाध्य है। इस विधि में मल को कूड़े के साथ मिलाकर या पृथक से जलाया जाता है। मल को जलाने वाली भट्टी बन्द प्रकार की होनी चाहिये जिससे इसके धुएँ से वायु के दूषित होने का भय नहीं रहे।

(2) गड्ढे में दाबकर–इस विधि में खन्दक या गड्ढे खोदकर मल को दबाया जाता है। इस विधि का प्रयोग उष्ण-कटिबन्धीय प्रदेशों में अधिक किया जाता है। गड्ढे खोदने का स्थान नगर से बाहर होना चाहिये। यह विधि सरल है परन्तु इस विधि में अधिकांश

लोग गड्ढे को विधिपूर्वक नहीं भरते जिसके कारण दुर्गन्ध फैलती है तथा मक्खियाँ पनपती हैं।

(3) खाद बनाकर–इस विधि में भी मल-मूत्र को खन्दक में डाला जाता है पर डालने की प्रक्रिया भिन्न होती है। इस विधि में सर्वप्रथम तले में 6 इन्च मोटी कूड़े की तह बिछा दी जाती है। उसके ऊपर मल-मूत्र की 2 इन्च मोटी तह डाली जाती है। इसी क्रम से कूड़ा व मल तब तक क्रमशः भरते जाते हैं जब तक कि खन्दक पूरी तरह से भर नहीं जाती है। सबसे ऊपरी तह में 1 इन्च मोटी कूड़े की तह बिछाते हैं और उसके ऊपर 2 इन्च मोटी मिट्टी की तह बिछाई जाती है। ऐसा करने से दुर्गन्ध व मक्खियाँ नहीं फैल पातीं तथा नमी भी बनी रहती है। इस विधि से चार से छह महीने में उत्तम खाद तैयार हो जाती है।

2. जल संवहन विधि–मल-मूत्र के निकास की यह सर्वोत्तम विधि है। इस विधि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें मेहतरों द्वारा मल-वाहन का घृणास्पद कार्य नहीं कराया जाता। इस विधि में मल-मूत्र पोर्सलीन की बन्द नालियों से जल द्वारा बहाकर बड़े-बड़े मल बम्बों तक पहुँचाया जाता है। ये बम्बे ढलवा लोहे के बने होते हैं। इनके माध्यम से मल-मूत्र नगर के बड़े नालों में प्रवाहित कर दिया जाता है। इसमें दुर्गन्ध, गन्दगी तथा मक्खियाँ फैलने का भय नहीं रहता।

जल संवहन पद्धति में प्रयुक्त शौचालयों के दो मुख्य भाग होते हैं–1. शौच सीट तथा पात्र 2. जल द्वारा संवहन

शौच सीट तथा पात्र भी दो प्रकार के होते हैं। एक को भारतीय शैली का और दूसरे को पाश्चात्य शैली का कहते हैं। भारतीय शैली के शौच पात्र पर कूच मारकर बैठने की व्यवस्था होती है जबकि पाश्चात्य पद्धति के शौच पात्र की सीट ऊँची होती है और उस पर कुर्सी की तरह बैठा जाता है।

जल प्रवाह उपकरण में जल डालना होता है जिसमें वह मल को बहाकर बम्बे में ले जाता है। इस विधि में जल की विशेष आवश्यकता होती है। अतः शौचालयों की टंकी को पानी देने के लिए एक बड़ी टंकी मकान की छत पर जल संग्रह हेतु रख दी जाती है।

जिन स्थानों पर जल संवहन के लिए उचित सार्वजनिक व्यवस्था नहीं होती वहाँ एक बड़ा सा गड्ढा खोदकर पक्की ईंटों और सीमेन्ट से सैप्टी टैंक बनाया जाता है। यह तीन भागों में बँटा होता है। शौचगृह से मल-मूत्र को बन्द नालियों द्वारा पहले भाग में भरने दिया जाता है। जब यह भाग भर जाता है तो इसके ऊपर का जल दूसरे भाग में आ जाता है और ठोस पदार्थ पहले ही भाग में नीचे बैठ जाता है। दूसरा भाग भर जाने पर जल तीसरे भाग में पहुँच जाता है जो अपेक्षाकृत साफ होता है। सैप्टी टैंक के पहले व दूसरे भाग को समय-समय पर साफ कराते रहना चाहिए।

जल संवहन विधि में मल का अन्तिम निस्तारण–इस विधि में सम्पूर्ण नगर के मल-मूत्र को बम्बों द्वारा किसी नाले, नदी या समुद्र में प्रवाहित करा दिया जाता है। विदेशों में बम्बों के गन्दे जल को पुन: साफ किया जाने लगा है तथा प्रकाश व जलाने के लिए गैसें बनाई जाने लगी हैं।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि मानवीय अवशिष्टों को हटाने के लिए कौन-कौन सी विधि को काम में लाया जाता है। मल-मूत्र के निस्तारण के लिए कोई भी विधि क्यों न अपनाई जाये किन्तु यह महत्त्वपूर्ण तथ्य सदैव स्मरण रखना चाहिये कि उससे गन्दगी, दुर्गन्ध, मक्खी, कीटाणु आदि फैलने न पायें। ऐसी स्थिति में ही व्यक्ति स्वस्थ व सुखी जीवन व्यतीत कर सकता है।

वायु, भूमि एवं पेयजल का रखरखाव

वायु की उपयोगिता–वायु सभी जीवधारियों के प्राणों का मूलाधार है। जिस प्रकार जीवित रहने के लिए सभी प्राणियों को अन्न तथा जल की आवश्यकता होती है उसी प्रकार वायु भी एक आवश्यक पदार्थ है। अन्न व जल के अभाव में व्यक्ति फिर भी कुछ समय तक जीवित रह सकता है परन्तु हवा के बिना कोई भी प्राणी चार मिनट से अधिक जीवित नहीं रह सकता। वायु न केवल हमारे जीवन के लिए वरन् आग, रोशनी और वनस्पति के लिए भी परम आवश्यक पदार्थ है। यदि हमें हवा नहीं मिले तो हमारे शरीर का रक्त अशुद्ध रह जायेगा और शरीर के विभिन्न अंगों को शक्ति तथा ताप नहीं मिलेगा। परिणामस्वरूप कई रोग जैसे-चेचक, छोटी माता, खसरा, क्षय, डिप्थीरिया आदि हो जायेंगे। अत: स्वच्छ हवा सभी जीवधारियों के लिए एक महत्त्वपूर्ण पदार्थ है।

वायु का संगठन–वायु अपने शुद्ध रूप में गंध, रंग व स्वादरहित होती है। इसमें वजन होता है तथा फैलने व सिकुड़ने की शक्ति भी होती है। वायु कई गैसों का एक यौगिक मिश्रण है। वायु में इन विभिन्न गैसों का प्रतिशत विभिन्न स्थानों पर अलग-अलग होता है। सामान्यत: शुद्ध वायु में इनका मिश्रण निम्नानुसार होता है:-

ऑक्सीजन	20.94	प्रतिशत
नाइट्रोजन	78	प्रतिशत
कार्बन डाइऑक्साइड	0.3 से 0.4	प्रतिशत
ओजोन	0.02	प्रतिशत
हाइड्रोजन आदि	1.01	प्रतिशत

इनके अतिरिक्त वायु में अमोनिया, जलवाष्प, धूल के कण, जीवाणु आदि भी रहते हैं, जिनका प्रतिशत स्थान-स्थान पर बदलता रहता है।

वायु की अशुद्धियाँ—सामान्यत: वायु में अशुद्धियाँ नहीं होतीं क्योंकि गैसों में विसरण का गुण होता है। वह वायु जिसमें ऑक्सीजन की मात्रा अधिक, कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा कम होती है शुद्ध वायु कहलाती है तथा जिसमें ऑक्सीजन की मात्रा कार्बन डाईऑक्साइड की अपेक्षा कम होती है, उसे अशुद्ध वायु कहते हैं। अशुद्ध वायु निर्बलता और सुस्ती पैदा करती है। सिरदर्द होना, चक्कर आना, जी मिचलाना, कै होना, भूख की कमी आदि बीमारियाँ अशुद्ध हवा के कारण ही उत्पन्न होती हैं। बीमारी व मृत्यु दर बढ़ाने में अशुद्ध वायु का बहुत बड़ा हाथ रहता है। वायु में अशुद्धता निम्नलिखित कारणों से उत्पन्न होती है–

1. श्वसन क्रिया
2. जलने की क्रिया
3. जैवीय पदार्थों का विघटन
4. धूल के कण
5. रोगाणुओं की उपस्थिति

(1) श्वसन क्रिया—सामान्यत: एक आदमी एक मिनट में 19 बार श्वास लेता है और हर श्वास में 360 घन सेन्टीमीटर वायु निकलती है। उच्छ्वास द्वारा निकली वायु में शुद्ध ऑक्सीजन की अपेक्षा कार्बन डाइ-ऑक्साइड अधिक होती है और लगभग उतनी ही (4.37%) प्रतिशत ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है। श्वास लेते समय फेफड़े के अन्दर उपस्थित अशुद्ध रक्त ऑक्सीजन ग्रहण करता है। रक्त में हीमोग्लोबिन नामक पदार्थ रहता है जो ऑक्सीजन को शरीर के विभिन्न अंगों में पहुँचाता रहता है। इस प्रकार श्वसन क्रिया द्वारा वायुमंडल में कार्बन-डाइऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है और वह अशुद्ध हो जाता है।

(2) जलने की क्रिया—कोयला, लकड़ी, तेल, मोमबत्ती आदि पदार्थ भी जलने की क्रिया में ऑक्सीजन लेते हैं और कार्बन-डाइऑक्साइड अधिक मात्रा में छोड़ते हैं, जिससे वायु अशुद्ध होती है।

(3) जैवीय पदार्थों का विघटन—मृत शरीर, वनस्पति पदार्थ आदि सड़ने पर दुर्गन्ध देते हैं और कार्बन-डाइऑक्साइड, अमोनियम, हाइड्रोजन आदि विषैली गैसें उत्पन्न करते हैं। वायु में इस प्रकार की गैसों की उपस्थिति के कारण भोज्य पदार्थ जल्द ही सड़ जाते हैं।

(4) धूल के कण—धूल के कण तो वायु में प्राय: देखने को मिलते हैं। औद्योगिक क्षेत्रों में ये और भी अधिक होते हैं। ये बहुधा सिलिका, एल्युमीनियम, कार्बन-डाइऑक्साइड, क्लोराइड आदि के बने रहते हैं। सूती, लिनन, ऊनी धागों के टुकड़े, कोयले के कण भी वायु में मिलकर उसे दूषित बनाते हैं और श्वास के साथ शरीर में पहुँचकर नाक व गले में खराश व अन्य रोग उत्पन्न करते हैं।

(5) रोगाणुओं की उपस्थिति—टी.बी., इन्फ्लूएंजा, चेचक, खसरा आदि रोगों के रोगाणु वायु द्वारा ही स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में पहुँचकर उन्हें रोगी बना देते हैं।

अशुद्ध वायु के कुप्रभावों के कारण—वायु की उपर्युक्त अशुद्धियाँ मनुष्य के लिए अत्यन्त हानिकारक होती हैं। वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि घुटन या बेचैनी का कारण वायु का रासायनिक मिश्रण न होकर वातावरण की निम्नलिखित भौतिक दशाएँ होती हैं–

1. उच्च तापमान
2. अत्यधिक आर्द्रता
3. वायु में गति का अभाव
4. संक्रमणकारक रोगाणुओं की उपस्थिति।

अत: वायु की शुद्धता के लिए आस-पास के वातावरण को उपर्युक्त दोषों से मुक्त रखना आवश्यक है जिससे कि मानव शरीर का तापमान सदैव औसत बना रहे और वह सरलता से अपने चर्म के सम्पर्क में आने वाली वायु को गर्म कर सके। सामान्यत: मानव शरीर का तापमान 98.6 फॉरेनहाइट और कमरों का ताप 55° से 59° फॉ. होता है। इस प्रकार शरीर अपने आस-पास की वायु से अधिक गर्म होता है और वह सरलता से आस-पास की वायु को गर्म करके सामान्य बनाये रखता है। यदि कमरे का ताप अधिक होगा तो वह बेचैनी अनुभव करने लगेगा। यदि कमरे में अत्यधिक नमी होगी तो चर्म के ऊपर से पसीना सूख नहीं पायेगा और शरीर से बहुत कम गर्मी निकलेगी।

वायु में गति का अभाव होने के कारण भी पसीने का वाष्पीकरण नहीं हो पाता। परिणामत: हमें बेचैनी अनुभव होती है। इसी प्रकार रोगाणुओं की उपस्थिति के कारण भी अनेक प्रकार के चर्म रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

वायु की शुद्धता के उपाय—अशुद्ध वायु के कारण अनेक प्रकार के रोग फैलने की आशंका बनी रहती है। अत: स्वस्थ जीवन के लिए शुद्ध वायु का होना परम आवश्यक है। इस दृष्टि से प्रकृति हमारी सबसे बड़ी शुभचिन्तक है। वर्षा, आँधी, सूर्य के प्रकाश से वायुमंडल स्वत: शुद्ध होता रहता है। परन्तु वर्तमान में वनों की अनियमित कटाई के कारण पर्यावरण का सन्तुलन बिगड़ गया है। साथ ही नगरों में बड़ी-बड़ी फैक्टरियाँ, रासायनिक कारखाने तथा भारी वाहनों के आवागमन के कारण वायू दुषित हो जाती है। आज नाइट्रोजन ऑक्साइड तथा हाइड्रोजन के समयुग्म से निर्मित फोटोकेमिकल ने प्रकृति को कम्बल की तरह ढक लिया है। परिणामस्वरूप सूर्य की पराबैंगनी किरणें पृथ्वी पर नहीं पहुँच पाती हैं एवं पृथ्वी से उठने वाल जहरीली गैसें व धुआँ ऊपर नहीं जा पाता है। ये सब मिलकर वातावरण में हानिकारक पदार्थों को जन्म देते हैं, मनुष्य को शुद्ध हवा से वंचित रखते हैं। बढ़ता हुआ कैंसर इसी का परिणाम है।

वायु शुद्धि का साधन–

संवातन–संवातन का आशय शुद्ध वायु के आने की उचित व्यवस्था से है। मकानों, विद्यालयों, सिनेमाघरों आदि ऐसे भवनों में जहाँ व्यक्ति रहते हैं या एकत्र होते हैं वहाँ वायु के गमनागमन की उचित व्यवस्था होनी चाहिए जिससे निरन्तर शुद्ध, ताजी, स्वच्छ तथा शीतल वायु प्राप्त हो सके।

संवातन के दो साधन हैं–(1) प्राकृतिक संवातन (2) कृत्रिम संवातन। **प्राकृतिक संवातन** के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है–

(1) मकान खुले स्थान पर हों।

(2) मकान के चारों ओर का वातावरण साफ व स्वच्छ हो।

(3) मकानों के आस-पास बड़ी-बड़ी इमारतें व कारखाने न हों।

(4) सड़कें व गलियाँ चौड़ी हों।

(5) स्वास्थ्य के लिए हानिकारक उद्योग शहर व गाँव से दूर विशिष्ट गृहों में स्थित हों।

(6) सड़कों व गलियों की उचित समय पर नियमित सफाई हो।

(7) दूषित गैसों, कीटाणुओं तथा धूल कणों को यथाशीघ्र निष्कासित किया जाये।

(8) घरों के दरवाजे व खिड़कियाँ आमने-सामने हों।

(9) वायु को अन्दर प्रवेश कराने वाले संवातन भूमि के निकट तथा कमरे की वायु को निर्गम करने वाले संवातन ऊपर की ओर छत के निकट होने चाहिए, जिससे विसरण वायु क्रिया व संवहन धाराओं के माध्यम से कमरों में स्वच्छ, शुद्ध व शीतल हवा मिलती रहे।

कृत्रिम संवातन–कृत्रिम या यांत्रिक संवातन के साधन भारत जैसे गर्म देश में सरलता से अपनाये जा सकते हैं। परन्तु यूरोप जैसे ठंडे देशों में इनका उपयोग नहीं किया जा सकता। यांत्रिक साधनों में निर्वात पद्धति, प्लीनम पद्धति और मिली-जुली पद्धति को अपनाया जाता है। वर्तमान समय में सिनेमाघरों, औद्योगिक संस्थानों और शोध प्रयोगशालाओं में संवातन की नवीन पद्धति वातानुकूलन का उपयोग किया जा रहा है। कृत्रिम संवातन की विधियाँ अधिक खर्चीली हैं। इसलिए इनका उपयोग सम्पन्न परिवारों तथा सार्वजनिक स्थानों पर ही अधिक किया जाता है।

भूमि का रखरखाव

पत्थर और चेतनायुक्त पदार्थ नष्ट होकर भूमि निर्माण करते हैं। ये पदार्थ पृथ्वी की ऊपरी परत को ऊपर से ढके रहते हैं। भूमि चेतनायुक्त पदार्थ की एक बड़ी राशि को (जिससे छूत वाली बीमारी फैल सकती है) सड़ाकर निर्दोष बनाती रहती है। भूमि की

ऊपरी सतह जीवित प्राणी की तरह कार्य करती है। कूड़ा-करकट आदि को सड़ाने-गलाने जैसा महत्त्वपूर्ण कार्य भूमि-स्थित जीवाणु करते हैं। यदि ऐसा न हो तो मनुष्य के लिए भूमि पर रह सकना असम्भव हो जाता।

भारतीय भूमि—(1) पत्थर के रूपान्तर होने से प्राप्त भूमि।

(2) एक ही प्रकार की चट्टान से निर्मित होने वाली मिट्टी।

(3) अवसाद शैल से प्राप्त होने वाली मिट्टी।

(4) कछारी मिट्टी।

कूड़ा-करकट से भरी गई जमीन-सामान्यत: बेकार पोखरों, खड्डों, खन्दक या अन्य प्रकार के गड्ढों को कूड़ा-करकट से भरकर तैयार की गई भूमि को प्रस्तुत जमीन या मैड स्वायल (Made Soil) कहते हैं।

प्रस्तुत जमीन सम्बन्धी सावधानियाँ-

(1) प्रस्तुत जमीन को अच्छी तरह सूखने के लिए छोड़कर जलविहीन हो जाने देना चाहिये।

(2) भराई का कार्य शीत ऋतु में करना चाहिए जिससे ग्रीष्म ऋतु में उसके अन्दर का जल स्वत: सूख जाये।

(3) यदि गड्ढा काफी बड़ा हो तो भरावट एक बार न करके सतह दर सतह करनी चाहिए।

(4) भरावट धरती की सतह से लगभग दो फीट ऊपर होनी चाहिए, जिससे वह बाद में बैठकर सतह के बराबर आ जाये।

(5) भरावट की हर सतह पर कूड़ा-करकट को अच्छी तरह बैठ जाने का अवसर देना लाभदायक होगा।

(6) भरावट के बाद लगभग दस वर्ष तक ऐसी जमीन को परती छोड़ देने के बाद ही गृह-निर्माण का कार्य उत्तम होता है।

(7) धरती की भीतरी नमी को सोखने के लिए परती जमीन पर तरकारी व अन्य पौधों को काफी अन्तर देकर लगाना चाहिए।

भूमिजनित रोग—ये चार प्रकार के होते हैं-(1) कृमि रोग (2) हैजा, पेचिश व मियादी बुखार (3) धनुष्टंकार (4) वात व्याधि।

भूमि की सुरक्षा के लिए भूमि प्रदूषण को रोकना अत्यन्त आवश्यक है। भूमि पर बढ़ता जा रहा जनसंख्या दबाव, वृक्षों की कटाई के कारण भूमि का कटाव, बाढ़ आदि भूमि प्रदूषण के मुख्य कारण हैं। जनसंख्या नियन्त्रण व वृक्षारोपण के द्वारा इस प्रदूषण से काफी हद तक मुक्ति मिल सकती है।

जल का रखरखाव

''रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।'' सचमुच जीवन के लिए जल अत्यन्त आवश्यक पदार्थ है। भोजन के बिना मनुष्य 40 दिन तक जीवित रह सकता है, परन्तु जल के अभाव में वह अधिक से अधिक 6 दिन ही जीवित रह सकता है। मानव शरीर भी मुख्यत: जल से ही बना है। शरीर के सम्पूर्ण भार का दो तिहाई भाग जल ही होता है। जल का उपयोग केवल भोजन और पीने तक ही सीमित नहीं है अपितु हमारे नहाने, वस्त्र धोने, घर की सफाई करने, गली, नाली व सड़क को स्वच्छ रखने के लिए भी जल की आवश्यकता होती है। हमारे पालतू जानवरों के जीवन तथा उनके शरीर की सफाई भी जल पर ही निर्भर करती है। अत: जल हमारे लिए बहुत ही उपयोगी है।

मानव शरीर में जल के कार्य

(1) जल रक्त को समुचित तरल अवस्था में बनाये रखता है। जल की कमी से रक्त गाढ़ा हो जाता है जिससे शरीर में अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

(2) जल, शरीर में उत्पन्न होने वाले रसों को तरलता प्रदान करता है।

(3) जल पाचन क्रिया में सहायता देता है।

(4) जल में शरीर का तापमान समान रहता है।

(5) शरीर में कोशिकाओं के टूटने-फूटने तथा अपच विषैले पदार्थ हर समय बना करते हैं। जल इन विषैले पदार्थों को मल, मूत्र व पसीने के द्वारा बाहर निकालता है। यदि जल की मात्रा कम हुई तो यह विष रक्त में मिल जाता है और अनेक रोग उत्पन्न करता है।

दूषित जल और बीमारियाँ—जिस प्रकार से जल जीवित रहने के लिए अत्यन्त उपयोगी है, वैसे ही हैजा, टाइफाइड, पेचिश और कई अन्य संक्रामक रोगों के फैलने का एक सशक्त माध्यम भी है। कच्चा जल विभिन्न वस्तुओं के संसर्ग में आने के कारण दूषित हो जाता है। चूँकि सब लोग प्राय: कच्चे जल को ही उपयोग में लाते हैं अत: उचित सावधानी बरतने की अत्यन्त आवश्यकता है। हमारे देश में दूषित जल के व्यवहार के कारण प्रतिवर्ष अनेक व्यक्ति हैजा, टाइफाइड जैसें रोगों से असमय ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए शुद्ध जल का रखरखाव और उसकी जानकारी बहुत ही आवश्यक है।

जल प्राप्ति के स्रोत—वास्तव में जल प्राप्ति का मुख्य स्रोत समुद्र है। समुद्र का यह जल वाष्प बनकर उड़ता रहता है और वर्षा के रूप में पुन: पृथ्वी पर आ जाता है। वर्षा का यह जल ही हमें तालाब, नदी, झीलों, झरनों, कुओं आदि के रूप में मिलता है जिसे हम अपने दैनिक कार्यों में प्रयोग करते हैं। वर्षा का जल बादलों से निकलते समय

पूरी तरह शुद्ध होता है, परन्तु भूमि पर आने से पूर्व वायु में उपस्थित अशुद्धियाँ गैसें, कोयले, धूल के कण आदि उसमें मिलकर उसे दूषित बना देते हैं। अतः स्रोतों से प्राप्त जल को उपयोग में लेने से पहले सावधानी बरतना और उसे शुद्ध करके काम लेना आवश्यक है।

जल के दूषित होने के कारण—स्वास्थ्य की दृष्टि से तालाब व पोखरों का जल पीने के लिए अच्छा नहीं होता, क्योंकि इनके जल में अशुद्धियाँ अधिक होती हैं। तालाब व पोखरों के जल में अशुद्धियाँ निम्न कारणों से होती हैं–

(1) मनुष्यों द्वारा इनके किनारे और आस-पास मल-मूत्र त्याग करना। वर्षा होते ही ये सारे दूषित पदार्थ घुलकर पोखरों में चले जाते हैं और जल को दूषित कर देते हैं।

(2) पालतू जानवरों का इन पोखरों में धोना तथा नहलाना–बहुधा ये पशु उस समय ही पोखरों में मल-मूत्र त्याग कर जल को दूषित कर देते हैं।

(3) धोबियों का पोखरों या तालाबों के घाटों पर कपड़े धोना।

(4) मनुष्यों का उसमें स्नान करना व बर्तन धोना।

(5) शौचादि क्रिया के बाद पोखरों में ही 'पन छुआ' करना।

(6) गाँव की नालियों का निकास तालाब या पोखरों में होना।

(7) आस-पास की झाड़ियों का इनमें सड़ना।

(8) मरे हुए जानवरों की लाशों का जलाशयों के किनारे फेंका जाना।

जल को दूषित होने से बचाने के उपाय–निम्नलिखित उपायों द्वारा जल को दूषित होने से बचाया जा सकता है–

(1) तालाब का निर्माण ऐसे स्थान पर होना चाहिये जहाँ आस-पास गन्दे पानी की नालियाँ, गड्ढे, शौचालय, श्मशान आदि अशुद्धियाँ उत्पन्न करने वाले स्थान न हों।

(2) तालाब के बाहरी किनारे ऊँचे होने चाहिए ताकि बाहर का गन्दा पानी अन्दर न आ सके।

(3) तालाब में जानवरों के प्रवेश को रोकने के लिए चारों ओर काँटेदार तार लगाना आवश्यक है।

(4) तालाब में यदि कोई वनस्पति उग रही हो तो इसे तुरन्त उखड़वा देना चाहिए।

(5) तालाब के अन्दर नहाने-धोने का निषेध होना चाहिये। स्नान-गृह आदि की पृथक् से व्यवस्था होनी चाहिये।

(6) तालाब से जल साफ बाल्टी या पम्प द्वारा ग्रहण करना चाहिए।

(7) जहाँ तालाब सार्वजनिक जल पूर्ति के साधन हों वहाँ पक्के बनाये जाने चाहिए:

(8) तालाब के जल को शुद्ध रखने के लिए उसमें छोटी-छोटी मछलियाँ होनी चाहिए।

(9) तालाब काफी गहरे होने चाहिए। गहरे तालाबों का जल उथले तालाब की अपेक्षा उत्तम होता है।

(10) ऐन्द्रिक अशुद्धियों से बचाने हेतु यदि सम्भव हो तो तालाब को ढकने की व्यवस्था होनी चाहिए। परन्तु वायु के आवागमन हेतु उचित व्यवस्था आवश्यक है। शुद्ध वायु जल की शुद्धि के लिए आवश्यक होती है।

नदी के जल में अशुद्धियाँ होने के कारण–

(1) नदी के किनारे बसे हुए नगरों की गन्दगी और मल गन्दे नालों के रूप में बहकर नदी के जल को अशुद्ध कर देते हैं।

(2) नदी के किनारे के खेतों में जो खाद दी जाती है, इससे भी नदी का जल गन्दा हो जाता हैं।

(3) किनारों के शहरों के कारखानों से निकला अपशिष्ट पदार्थ बहकर नदी के जल को गन्दा करता है।

(4) नदी के मार्ग में पड़ने वाली मिट्टी में जो प्राकृतिक लवण होते हैं वे जल में घुलकर उसे गन्दा कर देते हैं।

(5) मनुष्यों के नहाने, कपड़ा, बर्तन आदि धोने, जानवरों के नहाने तथा मोटर आदि की सफाई करने से नदी का जल अशुद्ध हो जाता है। रोगी व्यक्ति तथा जानवरों के जल पीने, नहाने से जल में रोग के कीटाणु प्रवेश कर महामारी का रूप धारण कर लेते हैं।

(6) नदी में शव बहा देने की प्रथा भी उसके जल को अशुद्ध कर देती है। तट पर जलाये गये शव और नदी में प्रवाहित उनकी अस्थियाँ व राख नदी के शुद्ध जल को पीने के लिए अनुपयुक्त बनाती हैं।

नदी के जल को अशुद्धियों से बचाने के उपाय–यह एक पुरानी कहावत है कि 'बहता जल गन्दा नहीं होता।' जिस नदी में जल की अधिकता हो तथा जिसमें तीव्र प्रवाह हो, उसका जल सूर्य के प्रकाश, ताप तथा शुद्ध हवा के सम्पर्क में आकर स्वत: ही शुद्ध हो जाता है। सूर्य की किरणों में कीटाणुनाशक गुण होते हैं। नदी में रहने वाले जीव भी जलशुद्धि में सहायक होते हैं। मछली, कछुए तथा मगर आदि बहुत सी ऐन्द्रिक अशुद्धियों को नष्ट करने में भाग लेते हैं। फिर भी नदियों के जल को पीने आदि में लाने के लिए निम्नलिखित सावधानी रखनी चाहिए–

(1) नदी के किनारे से कम से कम 7 या 10 मीटर दूरी पर सार्वजनिक जल पूर्ति हेतु जल संग्रह की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(2) जल-संग्रहालय नदी से लगभग 3 किलोमीटर दूर स्थित होने चाहिए।

(3) जल-ग्रहण करने के स्थान के आस-पास नहाने, धोने, जानवर नहलाने, नगर का मल फेंकने तथा मछली आदि पकड़ने की मनाही होनी चाहिये।

(4) जहाँ पर सरकार या नगरपालिका द्वारा सार्वजनिक जल-संग्रह और जल वितरण की व्यवस्था न हो, वहाँ पर नदी का जल किसी साफ तट पर से लेकर छानकर या उबालकर ही प्रयोग में लाना चाहिए।

कुओं के जल में अशुद्धियों के कारण–

(1) कभी-कभी कुआँ ऐसे स्थान पर होता है जहाँ भूमि के प्रवेश स्तर में दरारें होती हैं जिनसे धरातल का गन्दा और मलयुक्त जल बिना पूर्ण रूप से छने ही अप्रवेश्य स्तर तक पहुँच जाता है। इस अपूर्ण छने जल में घुलनशील ऐन्द्रिक द्रव रह जाते हैं। इससे वहाँ का जल दूषित हो जाता है।

(2) खुले कुओं में पेड़ों की पत्तियाँ, कूड़ा-करकट आदि अशुद्धियाँ गिरने की सम्भावना रहती है। इससे वहाँ का जल दूषित हो जाता है।

(3) यदि कुएँ पर नहाने-धोने के जल के निकास की उचित व्यवस्था न हो और कुएँ की दीवार पक्की न हो तो अशुद्ध जल कुएँ में जाकर उसके जल को दूषित कर देता है।

आदर्श कुआँ–कुएँ के जल को अशुद्धियों से बचाने के लिए उसका निर्माण ही इस तरह से किया जाये जिससे कि जल में अशुद्धियाँ होने की सम्भावना कम से कम रहें। एक आदर्श कुएँ में निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं–

(1) कुएँ का निर्माण ऐसे स्थल पर किया जाये जहाँ शौचालय, गन्दे जल के गड्ढे, अस्तबल, गन्दे जल के नाले कम से कम 30 मीटर दूर हों।

(2) कुएँ की भीतरी दीवार पक्की ईंटों या पत्थरों की होनी चाहिए और उसके ऊपर सीमेन्ट का पलस्तर करा देना चाहिए, जिससे इधर-उधर का पानी कुएँ में न आ सके।

(3) कुएँ की दीवार भूमि की सतह से काफी ऊपर तक होनी चाहिए।

(4) कुएँ के चारों ओर ढलावदार पक्का चबूतरा होना चाहिए। चबूतरों का ढलाव बाहर की ओर हो, जिससे बाहर का पानी किसी दशा में भी कुएँ के अन्दर न जा सके।

(5) कुआँ काफी गहरा होना चाहिये। कुआँ जितना गहरा होगा उसका जल उतना ही शुद्ध होगा।

(6) कुएँ के आस-पास वृक्ष नहीं होने चाहिये। और न ही आस-पास के पेड़ों की जड़ें कुएँ की दीवार में से निकलने देना चाहिए। ये जल को गन्दा करती हैं।

(7) कुआँ ऊपर से ढका होना चाहिए तथा ढक्कन इस प्रकार का होना चाहिए जिससे पेड़-पौधों की पत्तियाँ आदि कुएँ में न जा सकें परन्तु हवा का प्रवेश हो सके।

(8) कुएँ के चारों ओर नहाने, बर्तन और वस्त्र धोने पर रोक होनी चाहिए।

(9) कुएँ से पानी खींचने के लिए गन्दी रस्सी व गन्दे बर्तन का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

जल के प्रकार—जल दो प्रकार का होता है:- (1) कठोर जल और (2) मृदु जल।

कठोर जल भी दो प्रकार का होता है। एक वह जिसमें अस्थायी कठोरता होती है, दूसरा वह जिसमें स्थायी कठोरता होती है। अस्थायी कठोरता जल को उबालने अथवा चूने के प्रयोग से दूर की जा सकती है। स्थायी कठोरता को दूर करने के लिए जल में सोडियम कार्बोनेट या कपड़े धोने का साबुन मिलाना चाहिए। कठोर जल पीने के लिए उपयुक्त नहीं रहता। इसके प्रयोग से मन्दाग्नि, पेचिश आदि रोग हो जाते हैं। नहाने, कपड़े धोने तथा खाना पकाने के लिए भी इस जल का उपयोग उचित नहीं होता क्योंकि इसमें कैल्शियम तथा मैग्नीशियम के लवण घुले होते हैं। इससे वस्त्र धोने में साबुन भी अधिक खर्च होता है। मृदु या कोमल जल पीने, खाना पकाने व नहाने-धोने के लिए अति उत्तम होता है। इसमें कैल्शियम के कार्बोनेट या सल्फेट बहुत कम मात्रा में होते हैं या बिल्कुल भी नहीं होते। यह जल पीने में मधुर व स्वादिष्ट होता है।

जल को शुद्ध करने की विधियाँ

सामान्यत: जल को तीन विधियों से शुद्ध किया जा सकता है-(1) भौतिक (2) रासायनिक और (3) यान्त्रिक।

1. भौतिक विधियाँ—

(1) जल को उबालकर—जिस जल के दूषित होने का सन्देह हो, उसे उबालकर पीना चाहिए। इससे जल की कठोरता, जल में उपस्थित रोगों के जीवाणु तथा सभी प्रकार के ऐन्द्रिक पदार्थ नष्ट हो जाते हैं तथा विषैली गैसें जल से निकल जाती हैं। नदी, तालाब, उथले कुएँ आदि का जल उबालकर पीना स्वास्थ्य के लिए उत्तम होता है।

(2) जल का आसवन—इस विधि से पहले जल को उबालकर उसकी भाप बनाते हैं। इसके बाद उसको यन्त्रों द्वारा ठण्ड पहुँचाकर उसे जल के रूप में बदल लेते हैं।

(3) अल्ट्रा-वायलेट किरणें—ये किरणें रोग के जीवाणुओं का नाश करती हैं। जल की बड़ी राशि को शुद्ध करने के लिए बड़े-बड़े यन्त्र बनाये जाते हैं। इन यन्त्रों से अल्ट्रा-वायलेट किरणें उत्पन्न होती हैं। ये किरणें जल को शुद्ध करती हैं।

(4) छानना–सामान्य रूप से अवलम्बित अशुद्धियाँ इस विधि द्वारा दूर की जा सकती हैं।

2. रासायनिक विधियाँ– रासायनिक पदार्थ दो प्रकार के होते हैं–

(1) अवक्षेपक–जिससे जल में निहित दोष नीचे बैठ जाते हैं, जैसे फिटकरी, निर्भली आदि।

(2) जीवाणुनाशक–इनके द्वारा जीवाणु तथा अन्य ऐन्द्रिक दोष नष्ट हो जाते हैं, जैसे–पोटैशियम परमैंगनेट, आयोडीन, तूतिया, ओजोन, ब्लीचिंग पाउडर, चूना, क्लोरीन आदि।

3. यान्त्रिक विधियाँ–

घड़ों द्वारा जल का छानना–इस विधि में चार घड़ों को किसी लकड़ी के स्टैण्ड पर एक-दूसरे के ऊपर रख दिया जाता है। ऊपर के घड़ों में एक-एक छोटा छिद्र होता है। पहले घड़े में शुद्ध किया जाने वाला जल भर दिया जाता है, दूसरे के तले में कुछ कोयला पीस कर रख दिया जाता है तथा तीसरे में ऊपर बाल और कंकड़ डाल दिये जाते हैं। तीनों घड़ों के छिद्रों में थोड़ी रुई या कपड़ा लगा दिया जाता है। सबसे ऊपर के घड़े का पानी धीरे-धीरे तीनों घड़ों में छनता हुआ चौथे घड़े में एकत्र होता है।

जल शुद्ध करने की उपर्युक्त विधि का प्रयोग सन्तोषजनक नहीं है। इस विधि से जल शुद्ध होने के बजाय और अशुद्ध हो जाता है, क्योंकि घड़ों को स्वच्छ रखना प्रायः असम्भव होता है।

फिल्टर विधि–आजकल घरों में जल को शुद्ध करने के लिए फिल्टर विधि का प्रयोग किया जाने लगा है। इस विधि में चेम्बरलेन फिल्टर तथा बर्कफील्ड फिल्टर मुख्य हैं। इनका निर्माण क्ले और पोर्सलेन मिट्टी से किया जाता है। इनमें बाहर की ओर ऐ वोर्सलेन का बना बर्तन होता है और नीचे की ओर एक नल लगा हुआ होता है। इसमें अन्दर की ओर एक दूसरा बर्तन ऊपर लटका हुआ होता है। इस बर्तन की तली में क्ले मिट्टी के बने हुए सिलिण्डर होते हैं। सिलिन्डर ही जल को शुद्ध करने का कार्य करते हैं। इस विधि द्वारा जल की अशुद्धियाँ सिलिण्डरों के बाहर ही रुक जाती हैं। रोग के जीवाणु भी इसकी दीवारों से होकर प्रवेश नहीं कर पाते।

इनके सिलिण्डरों को समय-समय पर साफ करते रहना चाहिये। बर्कफील्ड फिल्टर से छनने की क्रिया तीव्र गति से होती है। घरेलू उपयोग के लिए ये फिल्टर पर्याप्त उपयोगी होते हैं।

विद्यालय में उत्तम पर्यावरणीय परिस्थितियाँ

विद्यालय की पर्यावरणीय परिस्थितियों से अभिप्राय विद्यालय के आस-पड़ोस, भवन की स्थिति, भवन में गन्दगी, कूड़ा-करकट, मल-मूत्र आदि के निकास की

व्यवस्था, स्वच्छ जल की व्यवस्था, हवा एवं प्रकाश की व्यवस्था, बैठने का प्रबन्ध, खेल-कूद की व्यवस्था तथा कार्य करने की अनुकूल परिस्थितियों से है। यह आवश्यक है कि विद्यालय में उत्तम पर्यावरणीय परिस्थितियाँ बनाये रखने में सभी की सहभागिता हो। किसी भी विद्यालय का नाम मात्र उसके उत्तम भवन से ही नहीं होता वरन् स्वस्थ, अध्ययनशील और पाठ्येतर प्रवृत्तियों में उत्साह रखने वाले छात्रों से होता है। इसलिए विद्यालय का पर्यावरण ऐसा हो जो छात्रों का सर्वांगीण विकास करने में सहायक सिद्ध हो सके।

विद्यालय भवन का आस-पड़ोस—विद्यालय भवन ऐसे खुले स्थान पर बनाया जाना चाहिये जहाँ प्रकाश, जल व वायु की समुचित व्यवस्था हो तथा उसके आस-पास गन्दी बस्तियाँ, कारखाने, रेलवे स्टेशन, शोरगुल या अधिक आवागमन न हो। विद्यालय भवन के पास कूड़े के ढेर, चमड़े की सफाई, अस्तबल, रबड़ के कार्य आदि की दुर्गन्ध नहीं होनी चाहिये। विद्यालय के आस-पास की भूमि सूखी होनी चाहिए जिससे विद्यालय भवन में सीलन उत्पन्न न हो और बच्चे गले के रोग, गठिया, फुफ्फुस के रोग, जुकाम, खाँसी आदि से सुरक्षित रहें।

विद्यालय भवन—विद्यालय भवन में प्राकृतिक संवातन की समुचित व्यवस्था हो तथा वहाँ सूर्य का प्रकाश सहजता से पहुँच सके। भवन में कक्षा कक्ष, अध्यापक कक्ष, भोजन कक्ष, चिकित्सक के निरीक्षण का कक्ष, शौचालय, व्यायामशाला, जलाशय तथा खेल के मैदान की अपेक्षित व्यवस्था हो। विद्यार्थियों के बैठने के लिए आवश्यक फर्नीचर, उपयुक्त श्यामपट्ट व गन्दे जल के निकास की समुचित व्यवस्था हो। खेल के मैदान, पुस्तकालय, वाचनालय, अल्पाहार गृह और पाठ्येतर प्रवृत्तियों के पृथक-पृथक कक्ष हों। वातावरण शान्त व स्वास्थ्यवर्द्धक हो।

गन्दगी के निकास की व्यवस्था—विद्यालय भवन से गंदगी अर्थात् गन्दे पानी, कूड़ा-करकट तथा मल-मूत्र के निकास की उचित व्यवस्था हो। बच्चों के पीने का पानी शुद्ध तथा जीवाणुरहित हो। नलों के नीचे पानी के निकास के लिए नालियाँ हों। छात्र-छात्राओं के लिए पृथक-पृथक शौचालय हों और रद्दी कागज, मिट्टी तथा कूड़ा-करकट एकत्र करने के लिए कूड़ापात्र यथेष्ट संख्या में रखे होने चाहिए। शौचालयों तथा नालियों की नियमित सफाई होनी चाहिये।

स्वच्छ जल की व्यवस्था—बच्चों के पीने का पानी शुद्ध और मृदु हो तथा उसमें किसी प्रकार के रोगाणु न हों। पानी जिन टंकियों में भरा जाये उनकी नियमित सफाई हो। उसमें रसायन डाले जायें और यथासम्भव नलों पर कपड़ा बाँध दिया जाये, जिससे बच्चे छना हुआ, साफ जल पी सकें। पीने के पानी की व्यवस्था खुले स्थान पर होनी चाहिए।

शुद्ध हवा एवं प्रकाश की व्यवस्था—विद्यालय के कक्षों में शुद्ध हवा एवं सूर्य के प्रकाश की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। कक्षा-कक्षों में पर्याप्त खिड़कियाँ हों, जिनसे वायु सरलता से प्रवेश कर सके। रोशनदान एक-दूसरे के आमने-सामने हों तथा कक्षा में छात्रों के बैठने के लिए पर्याप्त स्थान हो। दरवाजे व खिड़कियाँ इस प्रकार से बनाई जायें जिससे कक्षा कक्षों में पर्याप्त प्रकाश प्रवेश कर सके। प्रकाश के अभाव में नेत्र रोग, क्षय रोग तथा सीलन बनी रहने की सम्भावना बनी रहती है।

विद्यालय फर्नीचर—विद्यालय के फर्नीचर का भी बालकों के स्वास्थ्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है। फर्नीचर का आकार-प्रकार व लिखते तथा पढ़ते समय बालकों के बैठने के आसन आदि का भी उनके शरीर के विभिन्न अंगों पर भिन्न प्रकार का प्रभाव पड़ता है। यदि बैठने के आसन दोषपूर्ण हैं तो बालक के पाचन तंत्र, दृष्टि आदि में भी दोष उत्पन्न होने की संभावना रहती है। यदि अच्छे श्यामपट्ट का प्रयोग नहीं किया जाये तो बालक नेत्र दोष का शिकार होने के साथ-साथ शैक्षिक दृष्टि से भी प्रगति नहीं कर सकता।

खेलकूद की व्यवस्था—खेल-कूद बालक के स्वस्थ शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक विकास के लिए अत्यधिक उपयोगी हैं। यह विद्यालय पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग है। खेल के मैदान को 'खुला विद्यालय' भी कहा जाता है। यहीं पर उसमें सामाजिक सामंजस्य की भावना विकसित होती है और वह अनुशासनात्मक आज्ञापालन, सहयोग आदि गुणों को सीखता है। अत: खेल का मैदान काफी खुला और बड़ा होना चाहिये।

विद्यालय अल्पाहारगृह—विद्यालय अल्पाहारगृह का भी बालकों के स्वास्थ्य से सीधा सम्बन्ध है। प्राय: देखने में यह आता है कि विद्यालय अल्पाहरगृहों में कचोरी-समोसा, चाट-पकौड़ी आदि की बिक्री ही अधिक होती है। ये खाद्य पदार्थ छात्रों के लिए हानिकारक होते हैं। अत: इन पर रोक लगाना आवयश्क है। विद्यालय अल्पाहारगृहों में यथासम्भव ताजा व स्वास्थ्यवर्द्धक फलों की बिक्री की व्यवस्था होनी चाहिये, जिससे बालकों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

स्वास्थ्य परीक्षण—बालकों के स्वास्थ्य की परीक्षा उनके स्वास्थ्य स्तर को निश्चित करने और उनकी स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकताओं को जानने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। स्वास्थ्य परीक्षण द्वारा बालकों में बीमारी के प्रारम्भिक संकेतों और दोषों का ज्ञान हो जाता है। विद्यालय के चारों ओर का वातावरण अस्वास्थ्यप्रद, अस्वच्छतापूर्ण और दोषयुक्त तो नहीं है जिसके कारण बालक फैलने वाली बीमारियों से आक्रान्त हो जाये इसका ज्ञान भी स्वास्थ्य निरीक्षण द्वारा सम्भव हो जाता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विद्यालय में उत्तम पर्यावरणीय परिस्थिति

बनाये रखने के लिए उपर्युक्त बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है। वातावरण की स्वच्छता में विद्यालय के कर्मचारियों, शिक्षकों, बालकों और अभिभावकों सभी की सहभागिता आवश्यक है। उचित तो यह होगा कि बालकों को पर्यावरण की स्वच्छता का महत्त्व भली प्रकार समझाया जाये और समय-समय पर इससे सम्बन्धित वार्ताएँ तथा व्याख्यानों का आयोजन किया जाये। गलत कार्य करने वाले छात्र को ताड़ना दी जाये तथा पर्यावरणीय स्वच्छता बनाये रखने के लिए छात्र-दैनन्दिनी अथवा प्रवेश नियमावली में स्पष्ट उल्लेख किया जाना चाहिए। विद्यालय की उत्तम पर्यावरण परिस्थितियों में ही शैक्षिक तथा सहयोगी क्रियाएँ सम्भव हैं।

❑❑❑

3

व्यक्तिगत एवं सामुदायिक स्वास्थ्य

'पहला सुख निरोगी काया'–स्पष्ट है कि रोगरहित व्यक्ति ही सुखी है। रोगरहित बने रहने के लिए निरन्तर जागरूक रहकर उत्तम स्वास्थ्य बनाये रखना अति आवश्यक है। मानव शरीर अस्थियों, माँस, रक्त आदि द्वारा निर्मित है और यह भी स्पष्ट है कि इनका निर्माण हम जो भोजन ग्रहण करते हैं उसके द्वारा होता है अतः हम कह सकते हैं कि भोज्य पदार्थों में उपस्थित प्रोटीन, कार्बोज, वसा, विटामिन, लवण व जल के द्वारा हमारे शरीर का निर्माण होता है। रक्त, माँस व अस्थियों से निर्मित शरीर के द्वारा विभिन्न कार्यों को करने के लिए विभिन्न अवयव हैं। स्वस्थ व्यक्ति के शरीर के ये सभी शारीरिक अवयव भली प्रकार अपने समस्त कार्यों को करते हैं। यदि ये सभी अवयव ठीक प्रकार अपने कार्यों को करते हैं तो व्यक्ति स्वस्थ कहा जाएगा। शरीर के किसी भी अंग में कोई विकार या दोष उत्पन्न होने पर ये शारीरिक अवयव अपना कार्य भली प्रकार नहीं कर पायेंगे, ऐसी स्थिति ही अस्वस्थता है।

स्वास्थ्य के लिए आवश्यकता–शरीर को स्वस्थ रखने के लिए उत्तम व स्वास्थ्यप्रद भोजन के अलावा स्वच्छ पर्यावरण की आवश्यकता होती है। दूषित वातावरण अनेक विकार उत्पन्न कर देता है–

व्यक्तिगत एवं सामुदायिक स्वास्थ्य

स्वास्थ्य को निम्नलिखित तीन घटक प्रभावित करते हैं :-

(1) आनुवांशिक

(2) पर्यावरणीय

(3) व्यक्तिगत

1. आनुवांशिकता–प्रत्येक प्राणी को अपने जन्म से ही कुछ गुण अपने माता-पिता से प्राप्त होते हैं। ये गुण आनुवांशिक गुण होते हैं। कुछ रोग इस कारण होते हैं कि व्यक्ति अपने पूर्वजों से एक प्रवृत्ति प्राप्त करता है जो उसे विशेष रोग या विकारों के प्रति सुग्राह्य बना देती है।

2. पर्यावरणीय घटक–जैसा पूर्व में लिखा जा चुका है कि भोजन के पश्चात् हमारे स्वास्थ्य को पर्यावरण प्रभावित करता है। हमारे पर्यावरण के निम्नलिखित क्षेत्र की व्यवस्था ही हमारे स्वास्थ्य को उन्नति या अवनति की ओर ले जाती है–

(1) आवासीय व्यवस्था

(2) सुरक्षित जल

(3) स्वच्छ वायु

(4) पर्यावरणीय स्वच्छता

(5) भोजन एवं पोषण

(6) चिकित्सा सेवा

3. व्यक्तिगत–उत्तम आचरण रखने से ही व्यक्ति स्वस्थ रह पाता है। दुनिया का प्रत्येक प्राणी अपने जीवन का पूरा आनन्द लेना चाहता है, किन्तु स्वस्थ बने रहने के लिए कुछ आदतें डालनी पड़ती हैं तथा कुछ आचरण अपनाने होते हैं। व्यक्तिगत स्वास्थ्य सम्बन्धी आचरण में–शारीरिक स्वच्छता, आँखों एवं दाँतों की सफाई, नाखूनों की सफाई, शारीरिक अंगों की देखभाल, भोजन, व्यायाम, विश्राम एवं नींद आदि का ध्यान रखना चाहिए। इनके प्रति लापरवाही हमारे स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है। यदि हम नियमित रूप से अपने दाँतों की सफाई नहीं करें तो हमारे दाँत गिर जायेंगे, फलस्वरूप भोजन को चबाने में कठिनाई होगी और पाचन नहीं हो सकेगा, जिससे स्वास्थ्य चौपट हो जाएगा।

प्रत्येक व्यक्ति को मद्यपान, नशीले मादक द्रव्य, तम्बाकू आदि के किसी भी रूप में प्रयोग से दूर रहना चाहिए। ये सभी व्यक्ति के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं साथ ही धन की हानि भी करते हैं। हमें अपने उत्तम स्वास्थ्य के लिए वैज्ञानिक आधार बनाकर स्वास्थ्यप्रद आदतें एवं आचरण अपनाना चाहिए।

व्यक्तिगत एवं सामुदायिक स्वास्थ्य का महत्त्व

जो व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ है, वही अच्छा नागरिक बन सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को समुदाय के सक्रिय सदस्य के रूप में सार्वजनिक कार्यों में योगदान देना होता है। जिस देश में स्वस्थ नागरिक होंगे उसकी उत्पादन क्षमता भी उसी अनुपात में बढ़ जाएगी।

व्यक्तिगत एवं समुदाय का स्वास्थ्य एक-दूसरे पर आधारित है। यदि व्यक्तियों का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता है तो समुदाय में रोग एवं मृत्यु की दर बढ़ जाती है। फलस्वरूप सामाजिक उत्पादकता प्रभावित होती है। यदि समुदाय में कोई बुरे एवं अस्वास्थ्यकर आचारों में लिप्त है तो उस समुदाय के सदस्य कभी सुखी नहीं रह सकते।

अत: किसी भी समुदाय के लिए यह आवश्यक है कि उसका प्रत्येक सदस्य उत्तम स्वास्थ्य के नियमों को समझे, तभी उस समुदाय में सुख एवं समृद्धि बढ़ेगी।

अपशिष्ट

अपशिष्ट दो प्रकार के होते हैं–

1. ठोस 2. तरल

ठोस अपशिष्ट—कूड़ा-करकट, सफाई के द्वारा इकट्ठा हुआ कचरा, व्यापारिक, औद्योगिक एवं कृषि से निकले निरर्थक एवं अवांछनीय पदार्थ ठोस अपशिष्ट हैं। इनसे निम्न प्रकार से स्वास्थ्य को हानिकारक स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं–

1. कूड़ा-करकट रोगों को उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं के लिए विकास एवं पनपने की स्थितियाँ उत्पन्न करता है।

2. ठोस अपशिष्टों का जैविक अंश सड़कर मक्खियों के प्रजनन में सहायक होता है।

3. कूड़ा-करकट चूहों को आकर्षित करता है।

4. वर्षा का पानी यदि सड़ते हुए कचरे के ढेरों से होकर जल स्रोतों तक पहुँचता है तो जल-प्रदूषण की सम्भावना रहती है।

5. कूड़े-करकट में अनायास या दुर्घटनावश आग लग जाने पर वायु-प्रदूषण का संकट उत्पन्न हो जाता है।

अत: हमें कूड़ा-करकट और कचरा सदैव इसके लिए निर्धारित स्थान या कूड़ेदानों में ही डालना चाहिए। इन कूड़ेदानों को समय-समय पर खाली करने का प्रबन्ध भी होना चाहिए। नगरपालिका व नगर-निगम वाले स्थानों पर क्रेन युक्त लारियों द्वारा यांत्रिक विधि से इनको खाली किया जाता है।

तरल अपशिष्ट—तरल अपशिष्ट अथवा मलिन जल रसोईघर, स्नानघर तथा शौचालय में इस्तेमाल किये गये जल को कहते हैं। इस जल में अनेक ठोस कण आलम्बित रहते हैं। यदि यह जल धरातल पर यूँ ही फैला दिया जाए तो सड़न के फलस्वरूप इससे दुर्गन्ध आने लगेगी। यदि यह गड्ढों में भर जाएगा तो मच्छर उत्पन्न होकर मलेरिया या फाइलेरिया आदि रोग उत्पन्न होंगे। इस तरल अपशिष्ट को नालियों द्वारा भूमि में सोखने के लिए डाल दिया जाता है या सिंचाई के लिए प्रयोग में लाया जाता है। जहाँ जल का स्तर नीचा हो व भूमि सरन्ध्री हो वहाँ की भूमि द्वारा जल शीघ्रता से सोखा जा सकता है। वहाँ सोखने वाले गड्ढों का निर्माण किया जाता है।

मल उत्सर्जन

यदि मानव द्वारा मल-मूत्र का ठीक उत्सर्जन न किया जाए तो हैजा, संग्रहणी, टाइफाइड आदि रोग हो जाते हैं। ये प्राय: असावधानी के कारण होते हैं, जैसे कि खुली

जगह, सड़कों या जलाशयों के किनारों पर पाखाना करना आदि। इन कारणों से वातावरण दूषित हो जाता है तथा संक्रामक रोग फैलते हैं! इसलिए मल-मूत्र उचित स्थानों पर उचित विधि से करना तथा फेंकना चाहिए।

मलोत्सर्जन की विधियाँ–

आधुनिक युग में मल उत्सर्जन की भिन्न-भिन्न विधियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं। वैसे तो मल-मूत्र के उत्सर्जन की अनेक विधियाँ हैं, परन्तु शहरों में जल-वाहन विधि अधिक उपयोग में लायी जाती है। इसका वर्णन नीचे किया जा रहा है।

जलवाहन विधि–शहरों में आन्तरिक जल-वाहन विधि का प्रबन्ध प्रायः हो जाता है। इसलिए इस विधि द्वारा मल-मूत्र शौच जल आदि बन्द नलों द्वारा वाहन कर दिया जाता है। मल को इस विधि से छोटी नलियों से बड़ी नलियों में पहुँचाते हैं। बड़ी नलियों को मलवाहक नलियाँ कहते हैं जो जमीन के भीतर बिछी रहती हैं। पाखाना करने के बाद जंजीर खींच दी जाती है और पाखाना बहकर नलियों में पहुँच जाता है यह विधि स्वास्थ्यकर है तथा उत्सर्जन एक सुथरा हो जाता है।

हमारा भोजन

वायु, जल और भोजन हमारी प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं। वायु और जल हमें प्राकृतिक रूप में उपलब्ध हो जाते हैं, किन्तु भोज्य सामग्री प्रकृति से मिलने पर भी मानव को अपना भोजन बनाने का कार्य स्वयं करना पड़ता है।

जिस प्रकार मोटरगाड़ी पेट्रोल या डीजल से संचालित होती है उसी प्रकार विभिन्न शारीरिक क्रियाओं के सुचारु सम्पादन के लिए मानव को प्रतिदिन आवश्यकतानुसार भोजन करना पड़ता है।

सतत् क्रियाशील बने रहने से शरीर की कोशिकाएँ घिसती एवं नष्ट होती रहती हैं। यदि कोशिकाएँ नष्ट होती चली जाएँ तो स्वास्थ्य चौपट होकर मृत्यु हो सकती है, किन्तु भोजन से शरीर में नवीन कोशिकाओं का निर्माण होने से इस प्रकार प्रतिदिन नष्ट होने वाली कोशिकाओं की क्षतिपूर्ति हो जाती है।

सामान्यतया भोजन शरीर में निम्नलिखित कार्य करता है–

1. विभिन्न शारीरिक क्रियाओं के लिए ऊर्जा प्रदान करना।
2. शारीरिक वृद्धि एवं विकास में सहायक होना।
3. रोगों से सुरक्षा प्रदान करना।

1. शारीरिक क्रियाओं के लिए ऊर्जा प्रदान करना–आपने अनुभव किया होगा कि जिस दिन शारीरिक कार्य अधिक करना पड़ता है उस दिन भूख भी अधिक लगती है। स्पष्ट है कि विभिन्न शारीरिक क्रियाओं के सम्पादन में ऊर्जा की आवश्यकता

होती है। हमें यह ऊर्जा भोजन से मिलती है। कहावत भी है कि-"भूखे भजन न होय गोपाला।" व्रत या उपवास के दिन या अधिक भूख लगने पर शरीर में कमजोरी अनुभव होती है। भोजन ग्रहण करने पर शरीर को पुन: ऊर्जा प्राप्त होती है।

(2) शारीरिक विकास एवं वृद्धि में सहायक होना—जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है, भोजन नवीन कोशिकाओं के निर्माण में सहायता देता है। उदाहरण के लिए यदि एक नवजात बालक जिसका जन्म के समय भार तीन किलो है यदि इस बालक को इसकी आवश्यकतानुसार आहार दिया जाये तो वह छ: माह में ही दुगुने भार वाला हो जाएगा और एक वर्ष की-आयु में इस बालक का भार इसके जन्म के भार से तिगुना हो जाएगा। यदि बालक के बाल्यकाल में वृद्धि की दर तीव्र रही तो किशोरावस्था में समुचित विकास और वृद्धि होगी। शारीरिक वृद्धि के समय उचित और पर्याप्त आहार नहीं मिलने पर शारीरिक विकास नियमित और उचित नहीं हो पाता है। वास्तव में भोजन की आवश्यकता होती है और यह आवश्यकता शैशवावस्था, बाल्यावस्था और किशोरावस्था तक बनी ही रहती है। इन अवस्थाओं में उपयुक्त आहार मिलना अत्यन्त आवश्यक है। यदि उपयुक्त आहार नहीं मिला तो बालक की शारीरिक वृद्धि और विकास नहीं हो पायेगा।

इससे यह नहीं मान लिया जाना चाहिये कि किशोरावस्था के बाद शारीरिक निर्माण के लिए आवश्यक भोज्य पदार्थों की आवश्यकता ही नहीं रहती। शरीर में प्रतिदिन कई कोशिकाएँ टूटती और नष्ट होती रहती हैं, अत: नवीन कोशिकाओं के निर्माण एवं टूट-फूट की मरम्मत हेतु भोजन के निर्माणकारी पोषक तत्त्वों की आवश्यकता हर अवस्था में बनी रहती है। किन्तु, किशोरावस्था तक यह तत्त्व बहुत अधिक मात्रा में चाहिए, बाद में आवश्यकतानुसार भोजन में यह सामग्री होनी चाहिए।

(3) रोगों से सुरक्षा प्रदान करना—भोजन का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य रोगों से सुरक्षा प्रदान करना भी है। उचित प्रकार का भोजन शरीर को रोग-प्रतिरोधक शक्ति प्रदान करता है। प्रकृति में ऐसी भोज्य सामग्री पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध भी है। हालाँकि ऐसे भोज्य पदार्थ शरीर में अत्यंत ही कम मात्रा में चाहिए, किन्तु फिर भी यदि ये प्रतिदिन के भोजन में उचित मात्रा में उपस्थित न हों तो कई शारीरिक क्रियाएँ असंतुलित हो जाएँगी। परिणामस्वरूप शरीर रोगग्रस्त हो जाएगा, वृद्धि रुक जाएगी या विकास धीरे होने लगेगा।

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शारीरिक आवश्यकता के आधार पर भोज्य पदार्थों को निम्नलिखित तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता हैं-

(1) ऊर्जा प्रदान करने वाले भोज्य पदार्थ,

(2) वृद्धि और निर्माण करने वाले भोज्य पदार्थ,

(3)सुरक्षा प्रदान करने वाले भोज्य पदार्थ।

भोज्य पदार्थों के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि उनकी रचना विभिन्न रासायनिक अवयवों द्वारा हुई है। भोजन के इन्हीं अवयवों को पोषक तत्त्व कहते हैं।भोजन के ये अवयव (पोषक तत्त्व) निम्नलिखित हैं–

1. प्रोटीन 2. कार्बोहाईड्रेट

3. वसा या तेल 4. विटामिन,

5. खनिज लवण।

भोज्य पदार्थों में पोषकता भिन्न-भिन्न प्रकार और मात्रा में होती है।

उदाहरणार्थ- तेल में आहार तत्त्व मात्र वसा ही होता है, जबकि चावल में कार्बोहाइड्रेट के साथ-साथ प्रोटीन भी कुछ मात्रा में होता है अत: भोज्य पदार्थों को उनके गुणों के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। किस पदार्थ में कौन से पोषक तत्त्व हैं यह जानना नितांत आवश्यक है, ताकि भोजन में आवश्यकतानुसार उनका समावेश करके भोजन को व्यक्ति की आवश्यकता की शर्तों के अनुकूल बनाया जा सके। इसके लिए यहाँ पर यह जान लेना आवश्यक रहेगा कि कौनसा पोषक तत्त्व शरीर में कौनसी क्रिया का सम्पादन करता है–

1. प्रोटीन–शारीरिक वृद्धि के लिए प्रोटीन आवश्यक है। शरीर की कोशिकाओं की मरम्मत, रक्त निर्माण तथा रोग-संक्रमण को रोकने के लिए आवश्यक प्रति-पिण्डों (एन्टीबॉडीज) का निर्माण भी प्रोटीन द्वारा ही किया जाता है।

2. वसा और कार्बोहाइड्रेट–वसा और कार्बोहाइड्रेट शरीर के लिए ईंधन का कार्य करते हैं। वास्तव में ये शरीर को ऊर्जा प्रदान करते हैं। वसा और कार्बोहाइड्रेट के अभाव में प्रोटीन भी कुछ मात्रा में शरीर को ऊर्जा प्रदान कर सकता है, किन्तु जो तत्त्व वृद्धि के लिए आवश्यक हैं यदि वे ऊर्जा प्रदान करने लगें तो वृद्धि रुक जायेगी। अत: शरीर चुस्ती-फुर्ती वाला और बलवान बना रहे और शारीरिक क्रियाओं के सम्पादन की समस्त ऊर्जा सदैव प्राप्त होती रहे, इसके लिए भोजन में उपयुक्त मात्रा में वसा और कार्बोहाइड्रेट का समावेश किया जाना आवश्यक है।

3. विटामिन और खनिज लवण–रोग-प्रतिरोधक क्षमता और रक्त-कोशिकाओं के निर्माण के लिए शरीर में विटामिन और खनिज लवण आवश्यक हैं जो आँखों की रोशनी, दाँतों और हड्डियों की मजबूती और रोग-प्रतिरोधक क्षमता के विकास आदि क्रियाओं में सहायक हैं।

4. पानी—हमारे सम्पूर्ण शारीरिक भार का दो-तिहाई भाग पानी द्वारा ही निर्मित है। पानी हमारे शरीर की सभी जैव-रासायनिक क्रियाओं को सम्पादित करने के लिए आवश्यक है। शरीर के तरल संतुलन के लिए पानी एक अनिवार्य आवश्यकता है।

शरीर में पोषक तत्त्वों की आवश्यकता मनुष्य की आयु, लिंग, शारीरिक श्रम और शारीरिक अवस्था के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्ति, मजदूर, खिलाड़ी आदि को दफ्तर में काम करने वाले, लेखक या मानसिक श्रम करने वाले व्यक्ति की तुलना में ऊर्जा देने वाले पोषक तत्त्वों की आवश्यकता अधिक रहती है। बालकों और किशोरों को अपने भोजन में प्रोटीन की अधिक आवश्यकता रहती है। गर्भवती महिलाओं और स्तनपान करने वाले शिशुओं को भी प्रोटीन और खनिज की आवश्यकता अधिक रहती है।

उत्तम स्वास्थ्य के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने भोजन में वांछित भोज्य पदार्थों का समावेश करे ताकि उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और शरीर स्वस्थ और स्फूर्तिदायक बना रह सके।

सन्तुलित आहार

अब हम यह जान चुके हैं कि हमारे भोजन के लिए आवश्यक विभिन्न पोषक तत्त्व कौन-कौन से हैं, उनकी प्राप्ति के स्रोत, उनकी उपयोगिता, उनसे हानि-लाभ आदि के बारे में भी हम पढ़ चुके हैं। इन जानकारियों के आधार पर हमें हमारी भोजन व्यवस्था और भोजन को इस प्रकार नियोजित करना चाहिए कि हम सदैव स्वस्थ एवं चुस्त-दुरुस्त और सक्रिय रह सकें। भोजन ऐसा हो जो हमारे शरीर को वांछित ऊर्जा दे सके और जिससे समय एवं उपाय के अनुसार वृद्धि होकर शरीर सुडौल रह सके और वांछित क्षमतावान बन सके।

मनुष्य को अपने भोजन में कौन से तत्त्वों की कितनी मात्रा लेनी चाहिए यह इस बात पर निर्भर करेगा कि वह कितना कार्य करता है, उसमें कितनी शारीरिक टूट-फूट होती है तथा दैनिक कार्यों के लिए कितनी कैलोरी ऊर्जा की आवश्यकता है।

ऊर्जा को 'कैलोरी' नामक इकाई में नापा जाता है। भोजन का मापदंड औसत व्यक्ति की उम्र, भार, दिनचर्या और उसकी विशेष परिस्थितियों के अनुरूप पोषक तत्त्वों के आधार पर तय किया जाता है, इसके लिए समय-समय पर विशेष सर्वेक्षण कर इसे बदलती परिस्थितियों के अनुरूप रखा जाता है। यही मापदंड व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के लिए आहार व्यवस्थाओं में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ, विश्व स्वास्थ्य संगठन आदि समय-समय पर इस बारे में मार्गदर्शन देते रहते हैं। हमारे देश में भी इण्डियन कौन्सिल ऑफ मेडिकल रिसर्च की पोषाहार समिति ने पिछले कुछ सालों में

इस दिशा में महत्त्वपूर्ण शोध किए हैं।

इस संस्थान के द्वारा सर्वप्रथम 1944 में इस प्रकार के मापदंड निर्धारित किए गए, फिर परिवर्तित परिस्थितियों के आधार पर इन मापदंडों में 1958, 1968 तथा 1981 में वांछित संशोधन कर इन्हें समयानुकूल बनाया गया।

इन मापदण्डों की तालिका से हमें अपनी आवश्यकतानुसार कैलोरी (ऊर्जा), प्रोटीन, कैल्शियम, लोहा, विटामिन 'ए', थायमीन, राइबोफ्लेवीन आदि की आवश्यक मात्रा का बोध होता है और इसी आधार पर सन्तुलित भोजन के बारे में जानकारी मिलती है।

बालकों को उनके भोजन के भार की तुलना में प्रौढ़ों से अधिक भोजन चाहिए, उन्हें भोजन से ऊर्जा और ऊष्मा के साथ-साथ वसा और प्रोटीन की उपयुक्त मात्रा चाहिए, क्योंकि वे विकास और वृद्धि करते हैं। वृद्ध व्यक्ति को भोजन कम मात्रा में चाहिए क्योंकि वह कार्य भी कम करता है तथा वृद्धावस्था में उसकी शारीरिक वृद्धि प्रायः नगण्य हो जाती है।

स्त्रियों को पुरुषों की तुलना में कम भोजन की आवश्यकता होती है, क्योंकि सामान्यतः वे पुरुषों से लम्बाई तथा भार में कम होती हैं तथा कार्य भी उन्हें कम करना पड़ता है। किन्तु जो महिलाएँ स्तनपान करा रही हों या गर्भवती हों, उन्हें उपयुक्त पदार्थों वाला अधिक भोजन मिलना चाहिए।

जलवायु भी भोजन की मात्रा को प्रभावित करती है। ठण्डे प्रदेशों के निवासियों को अपनी ताप आपूर्ति के लिए गर्म प्रदेश के निवासियों की तुलना में अधिक ऊर्जायुक्त भोजन चाहिए। जहाँ ऋतु परिवर्तन होता है वहाँ के निवासियों का भार ग्रीष्म ऋतु में कम हो जाता है क्योंकि उन्हें भूख कम लगती है, किन्तु वहाँ शीत ऋतु आने पर लोगों को खूब भूख अधिक लगती है, फलस्वरूप शरीर का भार भी बढ़ जाता है। शारीरिक परिश्रम करने वालों को कार्बोहाइड्रेटस की अधिक आवश्यकता होती है।

जिस भोजन से मानव अपनी समस्त शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर उत्तम स्वास्थ्य एवं शारीरिक विकास कर सके, ऐसा भोजन संतुलित भोजन होगा।

संतुलित भोजन में निम्नांकित बातें होनी चाहिये-

1. समस्त भोज्य तत्त्वों का उत्तम एवं उचित समन्वय हो।
2. शारीरिक आवश्यकताओं के अनुरूप पोषक तत्त्व प्रदान करता हो।
3. वांछित ऊर्जा और ऊष्मा प्रदान करता हो।
4. जिससे वांछित शारीरिक वृद्धि होकर रोजाना की शारीरिक टूट-फूट की मरम्मत हो सके।

हमारा भोजन सम्बन्धित भोज्य पदार्थों के उपयुक्त समन्वय और संतुलन के फलस्वरूप निर्मित होना चाहिए। हमें भोज्य सामग्री का चयन करते समय इसको ध्यान में रखना चाहिए कि उनमें से अधिकांश उपज के हों, सरलता से प्राप्त हो सकें और आर्थिक रूप से अधिक महँगे भी न हों।

चयन के पश्चात् हमें देखना होगा कि वे सभी मिलकर व्यक्ति विशेष के लिए निर्धारित ऊर्जा (कैलोरीज) उपलब्ध कराते हैं अथवा नहीं साथ ही उनसे वांछित पोषक तत्त्व प्राप्त होते हैं या नहीं। यदि होते हैं, तो वे उपयुक्त मात्रा में हैं अथवा नहीं।

प्रत्येक आय वर्ग का परिवार खाद्य पदार्थ वर्ग में से अपने अनुरूप सामग्री का चुनाव करके संतुलित भोजन प्राप्त कर सकता है। सामान्यत: अपनी आय का 60 प्रतिशत भोजन पर व्यय करना चाहिए।

मौसम के समय फलों और शाक-सब्जियों के परिरक्षण, गृह वाटिका (किचन गार्डन), छत पर खेती द्वारा कम खर्च में पोषक तत्त्व प्राप्त किए जा सकते हैं।

भोजन को पौष्टिक एवं संतुलित बनाने की कुछ विधियाँ–

(1) आटा गूँथते समय उसमें हरी पत्तियाँ (मेथी, पालक आदि) डालने से उस भोजन में खनिज लवण की मात्रा बढ़ाई जा सकती है।

(2) रोटी अथवा चपाती में एक मुठ्ठी भर, सादा चावल डालने से उसमें प्रोटीन की मात्रा बढ़ाई जा सकती है।

(3) कच्ची खाई जा सकने वाली सब्जियों को कच्चा (सलाद) ही खाया जाकर उनकी पौष्टिकता बढ़ाई जा सकती है।

(4) सप्ताह में एक बार या दो बार सामान्य मुख्य अनाज, जैसे–गेहूँ, चावल या मक्का के स्थान पर मोटा अनाज, जैसे–जौ, ज्वार या बाजरा मिलाकर खाया जाना पौष्टिकता प्रदान करता है।

(5) गेहूँ के साथ दालों को पिसवाकर उस आटे की रोटी से खनिज लवण और प्रोटीन अधिक मात्रा में प्राप्त किये जा सकते हैं।

(6) दलिये को पानी के बजाय दूध में पकाने से पौष्टिकता बढ़कर संतुलित भोजन प्राप्त हो जाता है।

(7) मशीन से कुटे हुए चावल के स्थान पर हाथ से कुटे हुए चावल खाने से विटामिन 'बी' की आपूर्ति होगी।

कुछ अन्य विधियाँ

(1) अंकुरित दालों का भोजन में प्रयोग विटामिन 'बी' और 'सी' की वृद्धि करता है। इससे भोजन सुपाच्य हो जाता है। अंकुरित दालें या अनाज कच्चा खाना चाहिए या उसे बहुत कम पका कर खाना चाहिए।

(2) अनाजों और दालों में खमीर विटामिन 'बी' बढ़ा देते हैं।

सामान्यत: एक ही प्रकार के भोजन से मन ऊब जाता है इसलिए उपर्युक्त विधियों के अनुसार भोज्य पदार्थ बदल कर भोजन लेने चाहिए, इससे उत्तम स्वास्थ्य और संतुलित भोजन प्राप्त होगा।

सामान्य आहार योजना

हमारे देश में अधिकतर लोग अपने भोजन में अनाज की अधिक मात्रा लेते हैं। सामान्य भारतीय के भोजन में अन्य अवयवों की कमी होती है। मोटे रूप से भोजन में परिवर्तन किया जाकर उसमें सुधार किया जा सकता है। जहाँ भोजन में अन्न अधिक लिया जाता हो वहाँ प्रोटीन, विटामिन तथा खनिज लवण वाले पदार्थों का समावेश किया जाए। इस प्रकार आहार योजना का ज्ञान हो जाने से व्यक्ति उपलब्ध सामग्री में से अपने लिए आवश्यक भोज्य सामग्री का चयन कर उत्तम पोषण एवं स्वास्थ्य प्राप्त कर सकता है।

उदाहरणार्थ–एक व्यक्ति केवल दूध को ही अपना आहार निर्धारित करता है। जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है, एक व्यक्ति को एक दिन में 2400 कैलोरी ऊर्जा चाहिए। यदि वह व्यक्ति मात्र दूध का ही सेवन करता है तो उसे 3580 ग्राम दूध की प्रतिदिन आवश्यकता होगी, फिर भी इस दूध से उस व्यक्ति को कार्बोहाइड्रेट, विटामिन सी, थायमीन, नियासीन व आयरन अत्यन्त नगण्य मात्रा में ही मिल पाएँगे, अत: यह आहार सन्तुलित आहार नहीं होगा।

इसी प्रकार एक व्यक्ति अपने प्रतिदिन के आहार में केवल मक्का की रोटी और मिर्च की चटनी खाता है तो उसे आवश्यक अमीनो अम्ल, विटामिन समूह, आयरन आदि की कमी रहेगी, साथ ही उसे पर्याप्त कैलोरी ऊष्मा भी नहीं मिल पाएगी। ऐसे ही कोई व्यक्ति मात्र माँस को ही अपना आहार बनाता है तो उसे प्रोटीन तो अधिक मात्रा में मिल जाएगा किन्तु कार्बोहाइड्रेट, विटामिन समूह आदि की कमी ही रहेगी।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि भोजन की योजना की जानकारी नहीं होने से भोजन के चयन तथा उससे उत्पन्न पोषण एवं स्वास्थ्य में कठिनाई होती है।

अत: सामान्य आहार योजना बनाते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए–

(1) भोजन में सभी पोषक तत्त्व पर्याप्त अनुपात में होने चाहिए।

(2) भोजन को मात्र खा लेना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् उसकी उपादेयता उसके भली प्रकार पाचन पर निर्भर करती है। इसलिए भोजन में लिए जाने वाले पदार्थ सुपाच्य होने चाहिए।

(3) भोजन न अधिक न कम पका हुआ होना चाहिये।

(4) भोजन को गन्दगी और हानिकारक कीटाणुओं से बचाना चाहिये।

पुरुषों के लिए सन्तुलित आहार योजना

भारतीयों के लिए प्रस्तावित आहार योजना 1981 के अनुसार एक वयस्क पुरुष के भोजन में विविध तत्त्वों की मात्रा पिछले पृष्ठों में दी गई तालिका के अनुसार होनी चाहिए।

वृद्ध लोगों में उपापचय ऊर्जा दर में कमी आने लगती है, इससे उनकी विभिन्न शारीरिक क्षमताएँ, यथा–रक्त धमनियों में सख्ती, पाचक रसों में कमी, कोलस्टरोल में वृद्धि, आयरन, कैल्शियम के अवशोधन में कमी के साथ–साथ मानसिक स्थिति में परिवर्तन होने लगता है अत: उपर्युक्त तालिका से 55 वर्ष की उम्र में 3%, 55 से 75 वर्ष तक 7.5 % और 75 वर्ष के बाद 10 % की कमी करनी चाहिए।

किन्तु वृद्धावस्था में प्रोटीन की मात्रा उतनी ही रखी जानी चाहिए जितनी किशोरावस्था में आवश्यक है। वसामय पदार्थों की कमी की जाकर शुद्ध तेलों का प्रयोग किया जाना चाहिए। इससे फेटी एसिड तथा कॉलेस्ट्रोल की वृद्धि नहीं होगी। वृद्ध व्यक्तियों के आहार में दूध, दही, छाछ, पनीर, छैना, मछली, अण्डा, हरी सब्जियाँ, खजूर, बादाम, मूँगफली आदि की पर्याप्त मात्रा रखनी चाहिए।

शिशुओं और बालकों के लिए आहार योजना

(1) शिशुओं (0 से 12 महीने तक) के लिए आहार

चार माह तक की आयु के शिशुओं के लिए लिए माँ का दूध सर्वोत्तम आहार है। इसमें सभी आवश्यक तत्त्व उचित अनुपात में साफ और सुरक्षित रहते हैं। इस अवस्था तक यदि माँ का दूध पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न हो सके तो उसे पशु के दूध को पतला करके दिया जा सकता है। किन्तु, चार माह के पश्चात् मात्र माँ का दूध शिशु के लिए पर्याप्त नहीं होता है, इसके लिए उसे अतिरिक्त आहार की आवश्यकता होती है। इसके लिए पशु दूध, उबले हुए आलू, हरी सब्जियाँ आदि दी जा सकती हैं। जब शिशु पाँच या छ: माह का हो जाए तब उसे ज्वार, बाजरे का खीचड़ा या दलिया दिया जा सकता है। शिशु को नरम फल जैसे केला दिया जा सकता है। इससे शिशु को पर्याप्त पौष्टिक आहार, विटामिन और खनिज लवण मिलेंगे।

हमारे देश में अधिकांश ग्रामीण माताएँ अपने शिशु को दूध के साथ दूसरी पौष्टिक चीजें नहीं देती हैं, फलस्वरूप बालक कुपोषित होता जाता है।

(2) 1 से 3 वर्ष तक के बालक का आहार

एक से तीन वर्ष तक के बालक को उसके शारीरिक विकास के अनुरूप आहार, विशेषकर प्रोटीन की आवश्यकता रहती है। उसे दूध, छाछ, दही, पनीर, मिश्रित अनाज,

दालें आदि की आवश्यकता होती है। माँसाहारी परिवार इस कमी को माँस, मछली या अण्डे से पूरी कर सकते हैं। इसके साथ हरी शाक, पत्तियों वाली सब्जियाँ, फलों और सब्जियों का सलाद, फल आदि पर्याप्त मात्रा में देने चाहिए।

'नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ न्यूट्रीशन' हैदराबाद ने प्रयोग करके स्थानीय उपज के खाद्य पदार्थों से पूरक आहार तैयार किए हैं, जो ग्रामीण क्षेत्रों में लोकप्रिय हुए हैं।

महिलाओं के लिए आहार योजना

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को कम कैलोरी ऊष्मा की आवश्यकता होती है। अत: उनके भोजन में खाद्य पदार्थों की मात्रा पुरुषों की तुलना में कम होनी चाहिए। स्त्रियों को लौह तत्त्व पुरुषों से अधिक चाहिए अत: उनके भोजन में लौह तत्त्व अधिक होना चाहिए। साथ ही उनका भोजन सुपाच्य होना चाहिए और उसमें रक्षित भोज्य पदार्थ अधिक मात्रा में होने चाहिए। स्त्रियों के लिए सन्तुलित आहार का विवरण पीछे तालिका में दिया गया है।

गर्भकाल में स्त्रियों का भोजन सामान्य आहार से भिन्न होना चाहिए। गर्भकाल में स्त्रियों को अतिरिक्त भोजन एवं पोषक पदार्थों की आवश्यकता होती है। अनाज, दालें, हरी व पत्तीदार सब्जी, दूध, अण्डे, माँस, फल आदि से गर्भवती स्त्री को अतिरिक्त कैलोरी, प्रोटीन, विटामिन, कैल्शियम और लोहा मिलते हैं। गर्भावस्था में लोहा वांछित मात्रा में नहीं मिलने पर गर्भ के दूसरे या तीसरे माह में रक्तहीनता हो जाती है। शिशु को स्तनपान अधिकतर जन्म से लेकर 9 माह की आयु तक कराया जाता है, अत: धात्री माता को प्रसव के एक वर्ष तक अतिरिक्त पोषण की आवश्यकता होती है। दूध-उत्पत्ति में उत्तम प्रोटीन, जिसमें आवश्यक अमीनो अम्ल मिले रहें; इसके लिए भोजन में दूध-मिश्रित अनाज, दालें, माँस, मछली, अण्डा सम्मिलित किया जाना चाहिए।

शिशु को कैल्शियम, फॉस्फोरस, विटामिन 'ए' तथा 'डी' की अतिरिक्त आवश्यकता होती है, अत: ये खाद्य पदार्थ इसकी पूर्ति करते रहेंगे। दूध पिलाने वाली महिलाओं को अपने भोजन में तरल पौष्टिक पदार्थों की आवश्यकता होती है। इसके लिए दूध व फलों का रस दिया जाना चाहिए।

पोषाहार: पोषक मूल्य

पूर्व में हमने मनुष्य के भोज्य पदार्थ तथा उसकी आवश्यक मात्रा, जो संतुलित आहार माना जाता है, के बारे में चर्चा की। भोज्य पदार्थों में से कुछ तो ऐसे होते हैं जिन्हें हम स्वाभाविक स्थिति में थोड़ी सफाई के बाद काम में ले लेते हैं, जैसे–फल, मेवे आदि। परन्तु अधिकांश भोज्य पदार्थों को खाने योग्य बनाने हेतु पकाना आवश्यक होता है। भोजन पकाने के सामान्यत: तीन प्रमुख उद्देश्य हैं–

(1) भोजन को सुपाच्य बनाना—भोजन पकाने से, गरम, चबाने व पचने योग्य हो जाता है जिससे पाचक रस भली प्रकार से प्रभाव डाल सकते हैं।

(2) रूप सुधारना—भोज्य पदार्थों को पकाने में इनका स्वाद व सुगन्ध की दृष्टि से इन्हें आकर्षक बना दिया जाता है। इस प्रकार का आकर्षक भोजन सुपाच्य व भूख को बढ़ाने वाला होता है।

(3) रोग के कीटाणुओं का नाश करना—पकाने में विभिन्न प्रकार के ताप का प्रयोग किया जाता है। ताप से वस्तुओं को सड़ाने वाले तथा विषाक्त करने वाले कीटाणु (अण्डों सहित) नष्ट हो जाते हैं। मछली, दूध, सब्जी आदि में पाये जाने वाली कृमियों का भी नाश हो जाता है।

इस प्रकार भोजन पकाना आवश्यक है। परन्तु यदि पकाते समय असावधानी रखी गई तो उससे कुछ हानियाँ होने का भय रहता है। इसलिए भोजन पकाते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये–

(1) भोजन सदैव स्वच्छ बर्तनों में पकाना चाहिए। गन्दे बर्तन में पकाया गया भोजन विषयुक्त होकर स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

(2) कलई किए गये बर्तनों में ही भोजन पकाया जाना चाहिए अन्यथा भोजन विषैला हो सकता है।

(3) भोजन पकाते समय हाथ, नाखून आदि भी स्वच्छ होने चाहिए। नाखूनों में जमा मैल, बिखरे बाल भोजन में गिर सकते हैं।

(4) रसोईघर में काम में लाया जाने वाला वस्त्र भी स्वच्छ होना चाहिए।

(5) पकाते समय बर्तन को खुला नहीं छोड़ना चाहिए अन्यथा वायु के सम्पर्क में आने पर विटामिन तथा भोजन की सुगन्ध नष्ट हो जाती है।

(6) निश्चित अवधि से अधिक भोजन पकाने पर उसके पौष्टिक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं।

(7) भोज्य पदार्थों में खाने का सोडा डालने से विटामिन 'बी' नष्ट हो जाता है।

(8) जिस पानी में चावल, हरी सब्जी उबाली गई हो उस पानी को फेंकना नहीं चाहिए, क्योंकि उस पानी में पोषक तत्त्व विद्यमान रहते हैं। चावल, सब्जी आदि में उतना ही पानी डालना चाहिए जितना पकाते वक्त सोख लें।

(9) अधिक मसालों का प्रयोग करने से स्वाभाविक स्वाद नष्ट हो जाता है तथा पोषक तत्त्व भी नष्ट हो जाते हैं। भोजन को बार-बार गर्म करने से भी उसके पोषक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं।

संसार के विभिन्न भागों में भोजन पकाने की अनेकों विधियाँ प्रचलित हैं। प्रत्येक विधि में ताप किसी न किसी प्रकार प्रयोग में लाया जाता है। भोजन पकाने की विधियों को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है–जल द्वारा, चिकनाई द्वारा, भाप द्वारा, वायु द्वारा।

1. जल द्वारा–जल माध्यम में भोजन निम्न विधियों से पकाया जाता है–

(अ) उबालना–भोजन पकाने की यह सरलतम विधि है। किसी बर्तन में पानी लेकर तत्पश्चात् चूल्हे या अँगीठी पर 212° फा. पर उबालने की क्रिया की जाती है। वस्तुओं को तब तक उबाला जाता है जब तक वे मुलायम न हो जायें। चावल, दाल तथा कुछ सब्जियाँ इस विधि से पकायी जाती हैं। कुछ लोग दाल; चावल आदि उबालकर पानी फेंक देते हैं जिससे पोषक तत्त्व चले जाते होते हैं। आलू, अरबी आदि को छिलके सहित उबालकर उसका पानी फेंकने में कोई नुकसान नहीं; क्योंकि इनके पोषक तत्त्व उबले पानी में मिश्रित नहीं हो पाते।

(ब) धीमी आग पर पकाना–यह भोजन पकाने की अत्यधिक सरल व अल्पव्ययी विधि है। इसमें ईंधन की कम आवश्यकता होती है; क्योंकि 180° ताप पर्याप्त होता है। फल, सब्जियाँ, माँस आदि पकाने की यह उत्तम विधि है। इस विधि से पका भोजन सुपाच्य, स्वास्थ्यवर्द्धक एवं स्वादिष्ट भी होता है। धीमी आँच पर पोषक तत्त्व भी नष्ट नहीं होते हैं। पाश्चात्य पाक विधियों में इसका प्रयोग विशिष्ट रूप से किया जाता है।

(2) भाप द्वारा–कुछ भोजन भाप से पकाये जाते हैं, इसलिये उनके पौष्टिक तत्त्व नष्ट नहीं हो पाते हैं। सब्जी, माँस आदि इस विधि से सरलता से पकाये जाते हैं। पुराने समय में भाप से पकाने के लिए एक विशेष पात्र काम में लाया जाता था जिसमें एक ढक्कनदार बर्तन होता है और अन्दर एक जालीदार थाली सी लगी रहती है जिस पर रखकर सब्जी, गोश्त, इडली आदि पकाई जाती है। आजकल भाप से भोजन पकाने के लिए कई प्रकार के कुकर प्रयोग में लाए जाते हैं। कुकर में आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न वजन का दबाव निर्मित किया जाता है, परिणामत: बर्तन में उष्णता का घनत्व बढ़ जाता है। समस्त पाक विधियों में भाप द्वारा पकाने की विधि सर्वोत्तम है, क्योंकि इस विधि से पके भोजन के पोषक तत्त्व नष्ट नहीं होते हैं। भोजन हल्का एवं शीघ्रता से पचने वाला होता है। इस विधि से पका भोजन पेट के रोगियों तथा वृद्धों के लिए उत्तम होता है; क्योंकि यह वसा एवं मसाले-रहित होता है।

(3) चिकनाई द्वारा तलना–इस विधि में भोजन को गरम घी या तेल में पकाया जाता है। गरम घी या तेल में ज्योंही पदार्थ डाला जाता है उसकी ऊपरी परत कठोर हो जाती है जिससे भीतर के पोषक तत्त्व बाहर नहीं निकल पाते। इस विधि से भोजन तो स्वादिष्ट बनता है, परन्तु गरिष्ठ होने से पचता नहीं है। तलने की दो विधियाँ हैं–1.

उबली विधि और 2. गहरी विधि। तलने की गहरी विधि में वस्तु को घी या तेल में उबाला जाता है। उबालने के लिए घी या तेल का तापमान 350° फा. के लगभग होता है।

(4) वायु द्वारा—पदार्थों को भूनने, सेंकने आदि में वायु पकाने का कार्य करती है। राख या बालू के माध्यम से भोज्य पदार्थ को ताप के सम्पर्क में लाने की क्रिधि भूनना कहलाती है। वैसे पकाने के लिए आलू, बैंगन, अरबी, टमाटर आदि गर्म राख में भी रखे जाते हैं।

बैकिंग या सेंकने की विधि में पकाने की क्रिया भट्टी या चूल्हे में विद्यमान रहने वाली शुष्क, उष्ण वायु में सम्पन्न की जाती है। पकाये जाने वाले पदार्थों के अनुकूल ताप भिन्न-भिन्न होते हैं। सेंकने से वस्तु पूर्ण रूप से पक जाती है और सरलता से पच जाती है। रोटी, डबल रोटी, बिस्कुट आदि इसी विधि से पकाये जाते हैं। भट्टी का तापमान साधारणत: 250° से 500° फा. तक रहता है।

भोजन पकाने का कार्य चाहे किसी भी विधि से किया जाये उसमें खाद्य पदार्थों पर अनुकूल व प्रतिकूल प्रभाव पड़ता ही है। साधारणतया सामान्य पाक विधि में पोषक तत्त्वों का अधिक ह्रास नहीं होता यदि पानी को न फेंका जाये। अधिक समय तक अधिक ताप विटामिनों का नाश अवश्य करता है। सामान्य पाक-विधि में विटामिन 'सी' व कुछ अंश तक विटामिन 'बी' वर्ग अवश्य नष्ट हो जाते हैं, जिनकी पूर्ति कच्ची सब्जियाँ, फलों, सलाद आदि से कर सकते हैं। सब्जियों में केरोटीन व दूध, अण्डों आदि का विटामिन 'ए' सामान्य पाक-विधि से नष्ट नहीं होता है। परन्तु, अनाज व दालों के परिस्तर में जो विटामिन-थायमिन, नियासीन, पेन्टाथानिक एसिड एवं कुछ खनिज पदार्थ मिलते हैं उनके संसाधन का प्रक्रियाओं के कारण व्यर्थ में अपव्यय हो जाता है। तेज आँच पर सब्जियों व चावल आदि को खुले में पकाने से विटामिन 'बी' वर्ग, 'सी' वर्ग व कुछ अंश में प्रोटीन का नाश होता है। अधिक समय तक तेज आँच पर खुले उबालने या पकाने पर कुछ अमीनो अम्ल, कार्बोहाइड्रेट्स, विशेषकर शर्करा की उपस्थिति में जटिल यौगिक पदार्थ बन जाते हैं जिन पर पाचक एन्जाइम्स पूरा कार्य नहीं कर पाते और पदार्थों का पूरा उपयोग नहीं हो पाता । तलने पर हरी सब्जियों में पाया जाने वाला विटामिन 'ए' का कैरोटीन वसा विलेय होने के कारण तेल-घी में घुलकर नष्ट हो जाता है। शाक-सब्जियों को अधिक छीलने, धोने, काटने या देर तक पानी में पड़े रखने पर खनिज पदार्थ व विटामिन 'बी' व 'सी' ग्रुप का ह्रास होता है।

पाक-विधि से पोषक तत्त्वों के अधिकाधिक अपव्यय को कुछ सीमा तक निम्न उपायों से रोका जा सकता है-

(1) हाथ की चक्की का पिसा आटा चोकरसहित काम में लिया जाये। इसी प्रकार हाथ का कुटा चावल ही काम में लायें।

(2) छिलकों सहित दाल काम में लें। चावल व दालों के अतिरिक्त उबले पानी को फेंकने के बजाय रसा या सूप के काम में लाया जाये।

(3) चावल, दाल, सब्जियों आदि को अधिक न धोयें न अधिक छीलें और न ही देर तक पानी में उबालें। उबालते समय सोडा या बैकिंग पाउडर काम में नहीं लाना चाहिए, अन्यथा थायमीन विटामिन का नाश हो जाता है।

(4) सब्जियों के बड़े-बड़े टुकड़े काटें और अधिक देर तक खुला न रखें अन्यथा पोषक तत्वों का ऑक्सीकरण होकर ह्रास हो जाता है।

(5) सब्जियों को खौलते पानी में डालकर उबालना चाहिये। उबालते समय ढक्कनदार पात्र का प्रयोग करना चाहिए। प्रेशर कुकर पकाने के लिए आर्थिक दृष्टि से उत्तम साधन है। यह पोषक तत्त्वों के अलावा समय और ईंधन बचाने में भी सहायक है।

कुपोषण व अधिपोषण

प्रत्येक व्यक्ति की यही इच्छा रहती है कि उसका पोषण समुचित हो, परन्तु कई कारणों से ऐसा नहीं हो पाता है और किसी न किसी रूप में कुछ पोषक तत्त्वों की कमी रह जाती है। पोषण जब समुचित नहीं होता है तो वह या तो अल्प या अपर्याप्त पोषण होता है।

अपर्याप्त पोषण से पीड़ित भारत के लगभग 75% व्यक्तियों में 1 से 5 वर्ष के बच्चों की स्थिति तो अधिक शोचनीय है। लगभग 30 से 40% बच्चे प्रोटीन-कैलोरीज के अभाव से ग्रसित हैं जिससे उनका शारीरिक व मानसिक विकास वाँछित स्तर का नहीं हो पाता है। आयरन और विटामिन के अभाव में लगभग 60% बच्चे अरक्तता के शिकार बने रहते हैं। विटामिन 'ए' के अभाव में हजारों बच्चे प्रतिवर्ष केरेटोमलेशिया के कारण अन्धे हो जाते हैं। उत्तम प्रोटीन, विटामिन 'ए', बी वर्ग, 'सी' और आयरन व कैल्शियम आदि के अभाव के कारण युवा वर्ग भी अपर्याप्त पोषण का शिकार बन रहा है। महिलाओं में यह अनुपात और अधिक है। अपर्याप्त पोषण के कई कारण दृष्टिगत होते हैं। कई व्यक्तियों का शरीर भोजन के पौष्टिक पदार्थों को नहीं पचा सकता है। जैसा कि अतिसार और कुछ चयापचयी विकारों में होता है। दूसरी, वातावरण एवं सामाजिक परिस्थितियाँ भी कई क्षेत्रों में कुपोषण को फैलाती हैं। सूखा, बाढ़ अथवा महामारी, बेरोजगारी जैसी घोर विपत्तियों के बाद समाज में बड़ी संख्या में कुपोषण से प्रभावित व्यक्ति देखे जा सकते हैं। जिन इलाकों में लम्बे समय तक वर्षा नहीं होती उनमें उपलब्ध भोजन की किस्मों और उसकी एकरूपता में कमी आ जाती है। कुपोषण मामूली किस्म से लेकर गम्भीर किस्म का भी हो सकता है। मामूली कुपोषण में तो स्वास्थ्य पर छोटे-छोटे

बुरे प्रभाव पड़ते हैं, परन्तु अत्यधिक कुपोषण से शरीर का विकास मन्द हो सकता है, असमर्थता स्थायी रूप ले सकती है तथा मृत्यु तक हो सकती है। अतः, कुपोषण एक गम्भीर स्वास्थ्य समस्या है। और यह देश में दूर स्तर तक फैली हुई है। इसके लिए अज्ञानता, भोजन की कमी, आहार सम्बन्धी गलत प्रथाएँ, निजी तथा समाज की सफ़ाई के कम प्रबन्ध तथा इलाज की कम सुविधाएँ; सभी सम्मिलित रूप से जिम्मेदार हैं। अपर्याप्त पोषण के कारणों पर जब हम विचार करते हैं तो निम्न कारण दृष्टिगोचर होते हैं–

उपयुक्त खाद्यान्नों का अभाव–अनाज की उत्पत्ति में देश अब स्वावलंबी बन रहा है फिर भी दालें, तिलहन, दूध व दूध से बने पदार्थ, ताजी सब्जियाँ, फल आदि अभी भी अपर्याप्त हैं। वर्तमान में अनाज व दालों का उत्पादन लगभग 12 करोड़ टन है फिर भी इनका वितरण प्रति व्यक्ति 408 और 50 ग्राम प्रतिदिन ही हो पाता है ; जबकि साधारण, मध्यम व भारी मेहनत करने वाले व्यक्तियों को अनाज की क्रमशः 250, 460, व 670 ग्राम मात्रा चाहिए और दालें क्रमशः 40, 50 व 60 ग्राम चाहिए। अधिकांश भारतीय कठिन परिश्रम करने वाले हैं, वे इन्हें गरीबी के कारण क्रय नहीं कर पाते हैं। दैविक प्रकोप से होने वाली खाद्य क्षति, भू-क्षरण, अच्छे बीज व रासायनिक खादों, तथा सिंचाई व्यवस्था में अपेक्षित प्रगति नहीं हो पाने से, यातायात व परिवहन की अव्यवस्था, प्रान्तीय-क्षेत्रीय हड़तालें, तोड़-फोड़ आदि से खाद्यान्नों के उत्पादन एवं वितरण में अव्यवस्था आदि कई कारणों से पर्याप्त भोजन उपलब्ध नहीं हो पाता है।

दूध जो बच्चों, वृद्धों, प्रसूति व धात्री माताओं और शाकाहारियों के लिए अत्यन्त आवश्यक है, आज भी 80 ग्राम प्रति व्यक्ति के हिसाब से वितरित नहीं हो पा रहा है। इसमें से भी अधिकांश भाग, दूध, दही, खोया, मलाई, आइसक्रीम आदि में काम आ जाता है। इस प्रकार औसतन 50 ग्राम ही मात्रा रह पाती है जबकि प्रति व्यक्ति कम से कम 150 ग्राम दूध की आवश्यकता सामान्य व्यक्ति को होती है।

माँस, मछली भी माँसाहारी को पर्याप्त नहीं मिल पा रहे हैं। अधिकांश खाद्यान्न वर्तमान में औद्योगिक प्रगति के कारण प्रदूषित अवस्था में हैं, जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। गरीबी, बेरोजगारी और बढ़ती आबादी खाद्यान्न अभाव का कारण है।

भोजन सम्बन्धी कारण–अज्ञानता, खाद्य सामग्री में मिलावट आदि भी कुपोषण का प्रमुख कारण है। मिलावट से पोषक तत्वों का व्यर्थ में ह्रास होता है। अधिकांश ग्रामीण जनता अभी भी सन्तुलित भोजन के महत्त्व से अनभिज्ञ है। उनके भोज़न में अधिकतर कार्बोहाइड्रेट की मात्रा ही होती है। शिशु संभरण में भी यथासमय अतिरिक्त पोषक पदार्थों का प्रयोग न करने से शिशुओं की शारीरिक वृद्धि व परिवर्द्धन में कमी रह जाती है और शिशु रोग-ग्रसित हो जाते हैं।

अनुचित भोजन अपचनीय होते हैं और उससे कुपोषण अधिक होता है। समय-कुसमय, कभी जल्दी और कभी बहुत देर पीछे किये गये भोजन से अन्नमार्ग को विश्राम और कार्य की सामयिक आदत नहीं हो पाती है। इससे प्राय: अपच, बदहजमी या कब्ज की शिकायत रहती है। परिणामत: अपूर्ण पोषण हो जाता है। भोजन के पश्चात् परिश्रम करने से, भोजन को भली-भाँति न चबाने से, व्यायाम की कमी, बैठे रहने की आदत अथवा मद्य आदि का प्रयोग सभी कुपोषण के कारण हो सकते हैं।

सामान्य कारण—व्यक्ति का पोषण ताजा हवा की कमी, सूर्य के प्रकाश और व्यायाम के अभाव में दोषपूर्ण हो सकता है। अस्वास्थ्यकर, अत्यधिक भीड़ और असंतोषजनक वायु-प्रवाह वाले गृह भी पोषण में बाधक हो सकते हैं। जो खुराक एक दिन के औसत कार्य के लिए पर्याप्त होती है, वही खुराक अधिक कार्य करने की दशा में अपर्याप्त होती है। घर या कार्य-स्थल में यदि व्यक्ति की उपेक्षा की जाये तो उससे भी प्राय: पोषण में दोष आ जाता है। सोने का कुप्रबन्ध, कार्य की अधिकता के कारण नींद की कमी आदि भी पोषण में बाधा का कारण हो सकता है। अधिकांश स्त्रियाँ शेष बची अपर्याप्त सामग्री में ही अपनी संतृप्ति कर लेती हैं। कई लड़कियाँ अपने शरीर की सुन्दरता व मोटापे से बचने के लिए आवश्यकता से कम भोजन करती हैं और कुपोषण का शिकार हो जाती हैं। मिथ्या धारणाएँ और सामाजिक व धार्मिक प्रतिबन्ध भी हमारे पोषण को निम्न स्तर का बनाते हैं।

शारीरिक परिस्थितियाँ व रोग विशेष के कारण—कुछ व्यक्तियों में जन्म से ही त्रुटि रहने के कारण, जैसे- कटा होठ, फटा तालु आदि के कारण भोजन करने में व्यवधान होता है। गले व खाने की नली में रुकावट या रोग विशेष के कारण भोजन निगलना असंभव होता है। आमाशय में शोथ, जख़्म या कैंसर आदि के कारण पाचन रस पर्याप्त नहीं बन पाते हैं व भोजन-मन्थन में रुकावट होने से पाचन में अवरोध बना रहता है और भोजन के प्रति अरुचि उत्पन्न होने लगती है। आँतों की बीमारियाँ जैसे आन्त्रशोथ, पेचिश, आँत कृमि विशेषकर हुक-वार्म, राउण्ड-वार्म, संग्रहणी या अतिसार आन्त्र-क्षय व कैंसर आदि के कारण भी पाचन व अवशोषण ठीक से नहीं हो पाता है।

इनके अतिरिक्त लम्बे समय के ज्वर, तपेदिक, थायरॉयड ग्रन्थि के अतिस्राव, पेन्क्रियाज की कार्यक्षमता में शिथिलता, मधुमेह, हृदय व गुर्दा के रोग, भूख की कमी, पाचन रसों की कमी और पाचनशक्ति की शिथिलता बनी रहती है।

पोषणिक कमी के लक्षण व उपचार

प्रत्येक व्यक्ति को पोषणिक कमी से होने वाले उन रोगों की जानकारी होनी चाहिये जो बार-बार देखने में आते हैं और विशेषकर जो स्वास्थ्य सम्बन्धी अनेक समस्याएँ खड़ी कर सकते हैं। इनमें कुछ रोग तो शिशुओं और छोटे बच्चों को होते हैं और कुछ सभी उम्र

के व्यक्तियों को होते हैं। इनमें से कुछ तो जानलेवा हैं या मृत्यु का मुख्य कारण होते हैं, जबकि कुछ गंभीर रूप से असमर्थ बना देते हैं। ये रोग इस प्रकार हैं–

(1) भुखमरी– अकाल, युद्ध, हड़ताल आदि के कारण उत्पन्न अभाव परिस्थितियों में जब लम्बे समय तक पोषण प्राप्त नहीं होता है तब यह अवस्था उत्पन्न होती है। भुखमरी से पीड़ित व्यक्ति की पाचन-शक्ति अत्यन्त क्षीण हो जाती है, जिससे सामान्य आहार को भी वह पचा नहीं पाता है। इसलिए आरम्भ में उसे केवल फलों का रस, शरबत या ग्लूकोज थोड़े-थोड़े अन्तराल में देना होगा। लगभग 12 घण्टे के पश्चात् मलाई निकले दूध की 2 से 4 औंस तक की मात्रा का सेवन कराना होगा। ताजा दूध के स्थान पर स्किम्ड दूध पाउडर का प्रयोग भी किया जा सकता है। जब यह पचने लगे तत्पश्चात् सब्जियों का रस (सूप), पतली दाल, दूध मिला पतला दलिया, दही या छाछ आदि दें। उसके बाद यथासमय सामान्य भोजन देना प्रारंभ करना चाहिए। भूख से पीड़ित व्यक्ति को ऐसे समय में विटामिन 'बी'-वर्ग, 'सी'-वर्ग की अतिरिक्त मात्रा अनिवार्यत: चाहिए, जिसे दवा के माध्यम से पूर्ण किया जा सकता है। रोगी में अन्य रोग या उपद्रव दिखाई देने पर उनका तत्काल समुचित उपचार भी आवश्यक है।

(2) प्रोटीन-कैलोरी कुपोषण– यह रोग अधिकतर 6 महीने से तीन वर्ष की आयु तक के बच्चों में काफी मात्रा में भोजन या आहार में प्रोटीन या कैलोरी की कमी या दोनों की कमी रहने से होता है। प्रोटीन-कैलोरी कुपोषण के दो गम्भीर रूप हैं, जो क्वाशियोरकोर और भ्रास्मस (सूखा रोग) के नाम से प्रसिद्ध हैं। गम्भीर प्रोटीन-कैलोरी कुपोषण के चिह्न इस प्रकार हैं–

	क्वाशियोरकोर	सूखा रोग
आयु के अनुसार वजन में वृद्धि	सामान्य से कम वजन होना जिस पर ईडीमा के कारण परदा पड़ सकता है।	सामान्य से बहुत कम वजन होना
माँसपेशी	ऊपरी भुजा पतली होना जिस पर ईडीमा के कारण परदा पड़ सकता है	ऊपरी भुजा बहुत पतली होना
पैरों का ईडीमा	होता है	नहीं होता है।
बालों का रंग और गठन	औरों की अपेक्षा हल्के या सुर्ख तथा भुरभुरे	स्वाभाविक रंग या उससे हल्का रंग किन्तु औरों के मुकाबले मुलायम

त्वचा	कसी और तनी हुई, पपड़ियाँ झड़ना, फीके धब्बे	झुर्रियाँ या सिलवटें
भूख और व्यवहार	कम भूख, दु:खी और कमजोर नजर आना	इसके द्वारा जो प्रक्रिया देखने को मिलती हैं वह अत्यंत चौकन्नों और तीव्र आक्रोशित रूप की होती है।
मल	प्राय: दस्त	कभी-2 दस्त, कब्जी भी हो सकती है।
डायरिया (प्रवाहिक)	प्राय:	कभी-कभी
अरक्तता	कभी-कभी	कभी-कभी
विटामिनों की कमी	प्राय: पायी जाती है	कभी-कभी पाई जाती है।

ऐसे बच्चे जो गम्भीर रूप से कुपोषण के शिकार होते हैं और उन्हें ऐसा भोजन दिया जाता है, जिसमें कैलोरीज व प्रोटीन की मात्रा काफी कम हो तो वे क्वाशियोरकोर के प्राय: शिकार हो जाते हैं। यह रोग खसरा, काली खाँसी और मलेरिया जैसे रोगों के दौरान अथवा पश्चात् पहले से कुपोषित बच्चों में आसानी से पनप सकता है।

भारत में प्रोटीन-कैलोरी कुपोषण की भ्रास्मस किस्म क्वाशियोरकोर की अपेक्षा कहीं अधिक होती है। सूखा रोग या भ्रास्मस वह तकनीकी शब्द है जो अल्पपोषित बच्चे या वयस्क के लिए प्रयोग में लाया जाता है जो गम्भीर रूप से दुर्बल होते हैं। यह गम्भीर रोग वयस्क व्यक्ति को किसी भी आयु में हो सकता है। छोटे बच्चों में यह बीमारी उनके पहले अथवा दूसरे वर्ष में तब पैदा होती है जब माँ का दूध बन्द कर दिया जाता है और दैनिक पोषणिक आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए दूध या अन्य खाद्य पदार्थ पर्याप्त मात्रा में देने की व्यवस्था नहीं की जाती है। यह रोग गम्भीर डायरिया या उल्टी के पश्चात् भी हो सकता है।

प्रोटीन-कैलोरी कुपोषण से ग्रसित रोगी को प्रारम्भ में केवल मलाई निकला दूध या स्किम्ड दूध पाउडर से तैयार किया दूध 4-4 घण्टे के अंतराल से देना उपयुक्त होगा। यदि दूध न पच सके तो छाछ दी जा सकती है। तत्पश्चात् सूप, दलिया आदि देना प्रारम्भ किया जाये। हजम होने की स्थिति में यथा-शक्ति अन्य खाद्य पदार्थ, जैसे-छैना, अण्डा, हरी सब्जियाँ, अनाज के व्यंजन आदि भी दिये जाने चाहिए। रोगी की पाचन शक्ति में अभिवृद्धि के लिए रस, पाचन रस, उत्पादक औषधियों का प्रयोग भी करना चाहिए।

(3) विटामिन सम्बन्धी कुपोषण

(अ) विटामिन 'ए' की कमी– खाने में विटामिन 'ए' की कमी और इसके फलस्वरूप आँखों में होने वाले परिवर्तन व्यक्तियों के लिए गम्भीर स्वास्थ्य समस्या है। यह समस्या एक से पाँच वर्ष के बच्चों में खासकर पायी जाती है। गाँवों मे गर्भवती व दूध पिलाती माताओं में इस विटामिन की अधिक कमी पायी जाती है। यद्यपि उनकी आँखों में पाए जाने वाले परिवर्तन इतने गम्भीर नहीं होते हैं जितने कि छोटे बच्चों में। कम पोषित महिलाओं के बच्चों में इस विटामिन की कमी अक्सर दूध छुड़ाने से पहले ही पैदा हो जाती है। यह कमी उन समुदायों में आमतौर पर पायी जाती है जिनका भोजन पॉलिश किया हुआ चावल है, उदाहरण के लिए दक्षिण भारत। कुपोषित बच्चों में यह कमी बीमार पड़ने के दौरान यानि कि निमोनिया, खाँसी, अतिसार या मलेरिया आदि के तुरन्त बाद हो जाती है। पर्याप्त मात्रा में विटामिन 'ए' नहीं मिलने से आँखों में निम्नलिखित प्रकार के परिवर्तन हो सकते हैं–

(1) विटामिन 'ए' की कमी का प्रारम्भिक लक्षण है रात के समय कम दिखना, जिसे 'रतौंधी' कहते हैं।

(2) आँखों की सामान्य चमक कम हो जाती है। श्लेष्मा में झुर्रियाँ दिखाई देने लगती हैं और आँखों की सामान्य सफेदी वाले भाग का रंग भूरा हो जाता है। इसे आँखों की श्लेष्मा का सूखापन कहा जाता है।

(3) आँख के सफेद भाग के बाहरी ऊपरी हिस्से में लगभग दाल के दाने के बराबर सफेद झागदार, गोल, अण्डाकार या त्रिभुज की शक्ल के धब्बे सामान्यत: स्कूल जाने वाली आयु के बच्चों में दिखाई देते हैं।

(4) यदि विटामिन 'ए' की कमी का पता आरम्भ से ही न लगे तो कॉर्निया वाला भाग (आँख के आगे का भाग, स्वच्छ भाग) खुरदरा सा हो जाता है और उसमें अपनी समान्य चमक नहीं रह जाती जिससे निस्तेज सा दिखाई देता है।

(5) जब कॉर्निया के धरातल का हिस्सा नष्ट हो जाता है तो कॉर्निया में अल्सर हो जाता है और इलाज नहीं करवाने पर कॉर्निया नष्ट होकर आदमी को अन्धा बना सकता है।

(6) यदि विटामिन 'ए' की कमी का समय पर पता नहीं लगता और इलाज नहीं हो पाता तो कॉर्निया पिघलकर गन्दा, पीला जैली जैसा बन जाता है। इससे आँख नष्ट हो जाती है और आदमी सदैव के लिए अन्धा हो जाता है।

विटामिन 'ए' की कमी का इलाज भोजन के द्वारा किया जा सकता है। विटामिन 'ए' दूध, घी, अण्डे, मछली, पालक, सोया, मेथी, गाजर, आम आदि चीजों में काफी

मात्रा में होता है। अगर बच्चे को खाने की ये चीजें मिलती रहें तो वह अन्धेपन से बच जायेगा। रोग से बचने के लिए उपाय के रूप में एक से पाँच वर्ष की आयु वाले सभी बच्चों को हर छः महीने में एक बार विटामिन 'ए' की खुराक पिलानी चाहिये। भारत सरकार ने विटामिन 'ए' की कमी को दूर करने के लिए एक राष्ट्रीय कार्यक्रम भी चलाया है।

(ब) विटामिन 'बी-कॉम्प्लेक्स' की कमी–बेरी-बेरी अवस्था विटामिन बी-(थायमीन) की कमी के कारण उत्पन्न होती है। अधिकतर इस अवस्था का प्रकोप इण्डोचीन, जापान, मलेशिया, थाइलैण्ड, इण्डोनेशिया, बर्मा, बांग्लादेश और भारत के पूर्वी तट प्रान्तों में देखने को मिलता है। विटामिन 'बी' की कमी से हृदय की कार्यक्षमता में कमी आ जाती है तथा हृदय की धड़कन तेज होने लगती है। हृदय में धड़कन महसूस होने लगती है तथा भूख में कमी हो जाती है। हाथ-पाँवों में जल-जमाव के कारण सूजन आकर चकत्ते पड़ जाते हैं और अत्यन्त कमजोरी आ जाती है। विटामिन 'बी' के अधिक अभाव में हाथ-पाँवों की तंत्रिकाओं में स्थायी दर्द रहने लगता है जिसे तंत्रिका-शोथ की स्थिति कहते हैं।

साधारणतया 1000 कैलोरीज खुराक पर इस विटामिन की मात्रा 6 मि.ग्रा. निर्धारित की गई है। प्रसूता और धात्री माता को क्रमशः 0.2 और 0.4 मि.ग्रा. की अतिरिक्त आवश्यकता होती है। साधारणतया इसकी 1.2 मि.ग्रा. से 2.2 मि.ग्रा. मात्रा निर्धारित करना उपयुक्त होगा। परन्तु अधिक शारीरिक परिश्रम करने वाले, अधिक शराब का सेवन करने वाले आदि व्यक्तियों में सामान्य से अधिक मात्रा आवश्यक होती है। विटामिन 'बी' की कमी पूर्ति के लिए इन्जेक्शन के जरिये थायमीन देना हितकर होगा। यीस्ट का समुचित प्रयोग और भी लाभदायक होता है। हरे पत्ते वाली सब्जियाँ, कुछ फल, जैसे-केला, आम, सेब, मेवों में मूँगफली, काजू, अखरोट आदि, चापड़ सहित आटा, साबुत अनाज का दलिया, अंकुर निकले अनाज आदि का अधिकाधिक प्रयोग रोग के निवारण में सहायक है।

विटामिन-बी की न्यूनता से आरम्भ में खून की कमी, शारीरिक कमजोरी, निरन्तर वजन में कमी, सिर दर्द आदि होते रहते हैं। मुँह के छाले, जिह्वा शोथ होने लगता है। हाथ-पाँवों पर काले चकत्ते पड़ने लगते हैं जो काफी फैल जाते हैं। बीमारी की अधिक तीव्रता से मानसिक कमजोरी, स्मरणशक्ति की कमी, डिप्रेशन आदि की शिकायत हो जाती है और अन्त में मृत्यु भी हो जाती है। यह सब लक्षण पेलेग्रा बीमारी के हैं जो उक्त विटामिन की कमी से उत्पन्न होती है। बहुधा मक्का खाने वाले लोगों में यह रोग अधिकता से देखा जा सकता है।

पेलेग्रा बीमारी के इलाज हेतु समुचित मात्रा में नियासीन औषधि के रूप में देना होगा। नियासीन व ट्रिप्टोफेन प्राप्त कराने वाले खाद्य पदार्थों का विशेष प्रयोग प्रतिदिन आहार में करना होगा, क्योंकि यह अन्य विटामिन 'बी' की तरह संचित नहीं हो पाता है।

इसके अभाव या कमी से कॉर्निया के चारों ओर ललाई उत्पन्न होने लगती है। छोटी-छोटी रक्त-कोशिकाओं का फैलाव बढ़ने लगता है जो कभी-कभी व्रण, फुल्ला पैदा करता है, उससे दिखाई देना बन्द हो जाता है। होठों पर कटाव उत्पन्न होने व सफेद दाग पड़ने लगते हैं जो कभी-कभी मुँह की झिल्ली तक फैल जाते हैं। त्वचा पर खुजली व काले दाग उत्पन्न होकर उनमें से पानी निकलने लगता है जिसे त्वक्शोथ कहते हैं।

ताड़ के वृक्ष का रस 'नीरा' में इसकी प्रचुर मात्रा होती है। कुछ मात्रा में विटामिन $बी_2$ का निर्माण आँतों में भी होता है। अनाज, दाल मिश्रण और मूँगफली का अधिकतम उपयोग इस विटामिन की कमी से बचाव करता है।

(स) विटामिन 'सी' की कमी–विटामिन 'सी' को एस्कोरबिक एसिड, सिविटामिक एसिड या हेक्युरोनिक् एसिड आदि नामों से पुकारा जाता है, चूँकि यह स्कर्वी नामक बीमारी का निराकरण करता है अत: इसे एन्टी स्कारब्यूटिक विटामिन भी कहते हैं। 1932 में नींबू के रस से इसे पृथक किया गया और रासायनिक रूप से भी तैयार किया गया। इस विटामिन के प्रारम्भ में थोड़े से अभाव के कारण कमजोरी, थकावट, भूख की कमी, हाथ-पाँवों में दर्द, नजला, जुकाम आदि की शिकायत बनी रहती है। अधिक अभाव में स्कर्वी नामक रोग के लक्षण दिखाई देते हैं जिससे मसूढ़े सूज कर स्पंज के समान फूल जाते हैं और दबाने पर रक्तस्राव होने लगता है, दाँत ढीले पड़ जाते हैं तथा भोजन चबाने में असुविधा होती है।

भरपूर मात्रा में विटामिन 'सी' प्राप्त करने के लिए उन खाद्य पदार्थों का बहुतायत में प्रयोग करना चाहिए जिनमें यह अधिक मात्रा में उपस्थित हो। आँवला, अमरूद, सैंजन पत्ते, गाँठ गोभी, मिर्च, हरा धनिया आदि इसकी प्राप्ति के श्रेष्ठ स्रोत हैं।

(द) विटामिन 'डी' की कमी–विटामिन 'डी' की खोज लगभग 1922 में हुई। पोषण की दृष्टि से इस विटामिन के दो रासायनिक तत्त्व ही विशेष महत्त्व के हैं जो अर्गोकैल्सीफिरोल व कोलीकैल्सीफिरोल कहलाते हैं। प्रथम तत्त्व वनस्पति में तथा द्वितीय जीवित प्राणियों की त्वचा में अर्गोस्टेरोल और 7-डी हाइड्रोकोलेस्टरोल के सूर्य की किरणों के किरणित होने से बनता है। इस विटामिन की कमी के कारण रिकेट्स व ऑस्टियो-मलेशिया रोग उत्पन्न हो जाते हैं। रिकेट्स बहुधा बच्चों में होता है जिसके लक्षण शरीर का दुखना और नरम पड़ना, दाँतों का देरी से निकलना, टाँगें मुड़ी होना, पसली का झुकना तथा सिर की हड्डियों का फूलना आदि है।

अस्थि-मृदुता या ऑस्टियोमलेशिया की स्थिति वयस्क लोगों में होती है। मुख्यत: प्रौढ़ महिलाओं में। इस रोग के प्रारंभ में शरीर में पीड़ा होती है। बाद में हड्डियाँ नर्म पड़कर मुड़ सी जाती हैं। विशेषकर पसली की हड्डियाँ और रीढ़ टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती है जिससे महिलाओं को प्रसव में बड़ी कठिनाई होती है।

विटामिन डी की कमी से रक्त में कैल्शियम की कमी होने के कारण टेटेनी की स्थिति बन जाती है जिससे अँगुलियाँ स्वत: ही काँपती रहती हैं और बच्चों में तानें आने लगती हैं।

कैल्शियम व फॉस्फोरस युक्त खाद्य पदार्थों का अधिक सेवन व औषधि रूप में विटामिन 'डी' के उपयोग से इस विटामिन की कमी से होने वाले रोगों से मुक्त हुआ जा सकता है।

(4) रक्तहीनता—रक्तहीनता के कई कारण हो सकते हैं। परन्तु यदि हमारे भोजन में आयरन, फोलासिन व कोबालामिन (विटामिन बी-12) के साथ-साथ उत्प्रेरक तत्त्व, जैसे-कोबाल्ट, कॉपर तथा आयरन के अवशोषण में सहायक विटामिन 'सी' की कमी हो तो रक्तहीनता की स्थिति पैदा हो जाती है। महिलाओं को इन तत्त्वों की अधिकता आवश्यकता होती है ताकि मासिक धर्म के समय होने वाले रक्त की क्षतिपूर्ति होती रहे। गर्भवती व धात्री माता को और भी अधिक आवश्यकता होती है।

रक्तहीनता के कारण व्यक्ति में अत्यधिक कमजोरी, थकावट व काम करने की अनिच्छा बनी रहती है। थोड़े से परिश्रम में दम फूलने लगता है, उठते-बैठते चक्कर आते हैं। सिर दर्द रहता है, नींद व भूख की कमी हो जाती है, चेहरा पीला पड़ जाता है। आँखों के नीचे सूजन आ जाती है आदि। रक्तहीनता की स्थिति यदि बनी रहती है तो अनेकानेक अन्य रोग भी आ घेरते हैं और उपयुक्त उपचार के अभाव में मृत्यु भी हो जाती है।

रक्तहीनता का प्रारंभ से ही बचाव अधिक आसान है बजाय उपचार के। आहार में उन समस्त तत्त्वों को प्राप्त करते रहने से जो रक्तहीनता निराकरण के लिए आवश्यक हैं, स्वस्थ रहा जा सकता है। आवश्यक होने पर चिकित्सक की सलाह से अन्य कारणों का निराकरण भी किया जा सकता है जो रक्तहीनता उत्पन्न करते हैं, जैसे-अंकुश-कृमि बवासीर, गर्भाशय की खराबी, स्कर्वी, हीमोफीलिया आदि।

अत्यधिक पोषण—पोषण जब आवश्यकता से अधिक होता है तो शारीरिक स्थूलता बढ़ती है, मोटापा पैदा होता है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। विकासशील देशों में जहाँ अधिकांश जनता अल्प पोषण या कुपोषण की शिकार होती है वहाँ सम्पन्न देशों या सम्पन्न वर्ग के लोगों में अत्यधिक पोषण एक समस्या बन जाती है। अत्यधिक पोषण के कारण वसा व कार्बोहाइड्रेट्स चर्बी के रूप में संगृहीत होकर शरीर का बोझ बन

जाते हैं जिनसे अनेक प्रकार की असुविधाएँ उत्पन्न होती हैं। जैसे–अवयवों का कार्यभार बढ़ने से मधुमेह, गुर्दे के रोग, पित्त–पथरी, गठिया और हृदय रोग पनपते हैं, अल्प आयु के आसार बढ़ते हैं और परिपक्व उम्र के पूर्व ही मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं। इन समस्त कठिनाइयों से बचने के लिए आहार नियंत्रण के साथ–साथ नियमित दिनचर्या में शारीरिक परिश्रम में वृद्धि आवश्यक है।

बच्चों का पोषण

हमारे देश में अधिकांश लोगों का पोषण अपर्याप्त है विशेषकर बच्चों का। चूँकि आज के बच्चे कल के नागरिक होंगे इसलिए बच्चों के सुस्वास्थ्य की नींव प्रारंभ से ही डालनी अत्यन्त आवश्यक है। कुपोषण से प्रभावित बच्चों का शुरू में ही पता लगाने का सबसे अच्छा और विश्वसनीय तरीका है, उनका पाँच वर्ष की आयु तक नियमित रूप से माप–तौल करना। शिशुओं में यह कार्य प्रतिमाह तथा बड़े बच्चों के मामले में तीन से छः महीने के अन्तर पर किया जाना चाहिए। जिन बच्चों में निरन्तर वृद्धि नहीं होती और वजन नहीं बढ़ता है, वे या तो बीमार होते हैं या कुपोषण के शिकार। यदि किसी शिशु का वजन पहले तीन महीनों के किसी भाग में 0.5 कि.ग्रा. से कम बढ़ें या बाद के किसी भी महीने में 0.25 कि.ग्रा. से कम बढ़ता है और यही बात एक से अधिक बार देखने में आती है तो ऐसे बच्चों में कुपोषण की संभावना हो सकती है, अतः इसके प्रति सतर्क रहना आवश्यक है।

पहले पाँच वर्षों के दौरान बच्चों के वजन में औसत वृद्धि निम्नलिखित प्रकार होनी चाहिए–

आयु	प्रति सप्ताह/प्रति वर्ष वजन में वृद्धि
0 से 3 महीने	200 ग्राम
4 से 6 महीने	150 ग्राम
7 से 9 महीने	100 ग्राम
9 से 12 महीने	50 से 75 ग्राम
1 से 2 वर्ष	हर वर्ष 2.5 किलो ग्राम
3 से 5 वर्ष	हर वर्ष 2.0 किलो ग्राम

बच्चों के कुपोषण की समस्या के समाधान हेतु अब तक कई अभियान शासन एवं समाज द्वारा चलाए गए हैं, जो निम्नलिखित हैं–

(1) सन् 1962–63 में प्राइमरी स्कूल के बच्चों को दोपहर का जल–पान कराने की योजना बनी, जिसको शिक्षा विभाग ने क्रियान्वित किया। प्रारंभ में इस योजना का

समस्त व्यय केन्द्र सरकार ने वहन किया। तृतीय पंचवर्षीय योजना में इसे राज्य सरकार की योजना में सम्मिलित कर दिया गया जिसमें केन्द्रीय सरकार 40 प्रतिशत अनुदान देती रही। पोषक पदार्थ संस्थान से निःशुल्क प्राप्त होने लगे। वर्तमान में भी यह योजना प्राथमिक विद्यालयों में पंचायत समितियों के तत्वावधान में संचालित हो रही है।

(2) 'यूनीसेफ' के योगदान से शिशुओं, पूर्व-स्कूलगामी बच्चों, गर्भवती व धात्री माताओं को स्किम्ड दूध से तैयार दूध पिलाने की व्यवस्था मातृ-शिशु कल्याण केन्द्रों, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों व अस्पतालों में चालू की गई थी। चूँकि स्किम्ड दूध प्राप्त करने में भी कभी-कभी अवरोध हो जाया करता था इसलिए उसी के गुणों के अनुरूप सोयाबीन से तैयार दूध काम में लिया गया।

(3) चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के प्रारंभ में भिन्न-भिन्न स्वास्थ्य संस्थानों के माध्यम से रक्तहीनता व नेत्र रोग निवारण हेतु आवश्यकतानुसार आयरन की गोलियाँ, विटामिन 'ए' व 'डी' की पूर्ति की जाने लगी है।

(4) 'व्यावहारिक पोषण योजना' सर्वाधिक लोकप्रिय योजना है जिसे तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत प्रारंभ किया गया था। इसमें पोषण संबंधी सभी व्यावहारिक जानकारी बच्चों के अभिभावकों, गर्भवती व धात्री माताओं और सम्बन्धित सज्जनों को देकर अभिरुचि उत्पन्न की जाती है। इस योजना में तीन अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों का मुख्य व सक्रिय योगदान है और राजकीय शिक्षा, सामुदायिक विकास, स्वास्थ्य, सहकारिता, समाज कल्याण व पशुपालन विभागों को विशेष रूप से सम्बन्धित किया गया है जो तीन कार्यों-पौष्टिक खाद्य पदार्थों का उत्पादन, वितरण व रक्षण, प्रशिक्षण और व्यावहारिक पोषण का प्रतिपादन करते हैं।

पौष्टिक खाद्य पदार्थों के उत्पादन में मुर्गी-पालन, अण्डे व मछली उत्पादन, फलों व सब्जी की बाड़ियों की स्थापना, अच्छे बीज व खाद का वितरण, दुधारू पशुओं की सम्यक् संभरण व्यवस्था आदि सम्मिलित किए गए। उत्पादन में लगे ग्रामीणों, ग्राम सेवक-सेविकाओं, विकास और प्रसारण संबंधी सहायक कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया गया। व्यावहारिक पोषण के अंतर्गत स्थानीय उपज के खाद्य पदार्थों से सस्ते दामों पर पौष्टिक व्यंजन तैयार करना सिखाया गया। यही नहीं, संभरण केन्द्रों पर व्यंजन बनाकर खिलाये भी जाते हैं ताकि व्यंजन बनाने का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त हो और खान-पान संबंधी आदतों में भी सुधार हो।

प्रारंभ में परीक्षण के तौर पर इस योजना को केवल उड़ीसा, आन्ध्रप्रदेश व उत्तर प्रदेश के कुछ विकास खण्डों में ही प्रारंभ किया गया था परन्तु इसकी उपयोगिता को देखकर कार्यक्रम का तीव्रता से विस्तार किया गया और चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में इसे 833 विकास खण्डों में लागू किया गया। यहीं नहीं, स्कूलों व अहातों में बगीचे लगाने,

कुएँ खोदने, सिंचाई व्यवस्था, मुर्गी-पालन, मछली-पालन आदि के केन्द्र स्थापित करने के लिए यथोचित आर्थिक अनुदान भी दिया जाता है।

संचारी तथा असंचारी रोग

रोग शब्द का अर्थ है-सामान्य स्वास्थ्य का अभाव। जब शरीर का कोई भाग क्षतिग्रस्त या खराब हो जाता है तो उस व्यक्ति को कष्ट उठाना पड़ता है और हम इसे रोग कहतें हैं। यह कष्ट-रोग निम्नलिखित दो प्रकार का हो सकता है-

1. शारीरिक, यथा-ज्वर, शरीर दर्द, चोट, जख्म आदि।
2. मानसिक, यथा-तनाव, उदासी, चिन्ता, पागलपन आदि।

रोग दो प्रकार के होते हैं-

(अ) संचारी रोग-ये रोग वे हैं जो जीवाणु, कृमि या अन्य परजीवी द्वारा उत्पन्न होते हैं। साधारणत: ये रोग संक्रामक होते हैं, इसलिए रोगी से स्वस्थ व्यक्ति में फैलते हैं। चेचक, खसरा, डिफ्थीरिया, हैजा आदि ऐसे रोग हैं।

(आ) असंचारी रोग-ये रोग रोगी से स्वस्थ व्यक्ति के संपर्क द्वारा नहीं फैलते, संक्रामक नहीं होते। इनमें मधुमेह, कैंसर, दिल का दौरा आदि शामिल हैं।

संचारी रोग

1. हवा के द्वारा निम्नलिखित रोग फैल सकते हैं-
   (1) चेचक (2) छोटी माता (3) खसरा (मीजल्स)
   (4) तपेदिक (5) इनफ्लूएंजा
2. पानी और भोजन द्वारा निम्नलिखित रोग फैल सकते हैं-
   (1) हैजा (2) पेचिश (3) टाइफाइड
   (4) संक्रामक यकृत-शोथ (5) गोल कृमि रोग
3. कीड़े-मकोड़ों तथा पशुओं द्वारा फैलने वाले रोग-
   (1) मलेरिया (2) फीलपाँव (3) डेंगू
   (4) हाइड्रोफोबिया
4. संस्पर्श तथा मिट्टी द्वारा फैलने वाले रोग-
   (1) कुष्ठरोग (2) रोहे (ट्रेकोमा) (3) जूँ-रोग
   (4) खुजली (स्कैबीज) (5) सुजाक व उपदंश (योग-संचारी रोग)
   (6) धनुष बाय (7) अंकुश कृमि रोग

असंचारी रोग

(1) दन्त क्षरण (2) मधुमेह (3) हृदय रोग

(4) कैंसर

अन्य रोग

(1) जुकाम (2) खाँसी, बुखार (3) नाक से खून बहना (नकसीर)

(4) सिरदर्द (5) जलन, आदि

रोगों की रोकथाम के लिए हमें निम्नलिखित बातों की जानकारी होनी चाहिए-

1. रोग का कारण
2. फैलने की विधियाँ, स्थितियाँ
3. रोग की पहचान (लक्षण)
4. रोकथाम के उपाय

प्राथमिक उपचार

वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप जहाँ एक ओर साधन एवं सुविधाएँ बढ़ी हैं, वहीं दूसरी ओर जटिल जीवन, शहरीकरण, आवागमन के साधनों का विस्तार और वाहनों की तेज गति के कारण दुर्घटनाएँ भी उसी अनुपात में बढ़ी हैं। दुर्घटनाएँ खेत-खलिहान, कारखानों, यात्राओं, सड़कों, खेल मैदानों, घर, विद्यालय, कार्यालयों आदि किसी भी स्थान पर हो सकती हैं। अक्सर दुर्घटना के स्थान से चिकित्सालय दूर होते हैं या आवागमन के साधनों के अभाव में रोगी को तुरन्त चिकित्सक तक या चिकित्सक को तुरन्त रोगी तक नहीं पहुँचाया जा सकता। ऐसी स्थिति में रोगी को तत्काल कुछ सहायता दी जाती है, जिसे प्राथमिक उपचार कहते हैं।

वास्तव में प्राथमिक उपचार वे उपाय हैं जो किसी भी दुर्घटना के तुरन्त बाद किये जाते हैं। ये उपचार दुर्घटना में हुए नुकसान को एकदम ठीक करने के प्रयास नहीं होते, वरन् दुर्घटना के फलस्वरूप भविष्य में होने वाले नुकसान को रोकने के प्रयास होते हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि यह दुर्घटना के शिकार या अचानक बीमार हो जाने की स्थिति में दी जाने वाली अस्थायी तुरन्त सहायता है जो रोगी को चिकित्सक तक पहुँचाने तक प्रदान की जाती है। प्राथमिक चिकित्सा का आधारभूत उद्देश्य है दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति की जीवन-रक्षा। अत: प्राथमिक उपचारकर्ता को सर्वप्रथम निम्नलिखित बातों पर तत्काल ध्यान देना चाहिए-

(1) अत्यधिक खून के बहने को रोकना।

(2) श्वास क्रिया को नियमित करना।

(3) चोट या आघात के प्रभाव को रोकना।

(4) चिकित्सक से सम्पर्क करना।

(5) पीड़ित या रोगी में आत्मविश्वास का संचार करना।

प्राथमिक उपचार के सामान्य सिद्धान्त

(1) आहत व्यक्ति को किसी भी प्रकार के मादक पेय पदार्थ न दें।

(2) यदि कपड़े कसे हुए हों तो उन्हें ढीला कर दें।

(3) आहत व्यक्ति को ऐसे स्थान पर व इस प्रकार लिटायें कि उसे शुद्ध वायु सरलता से मिल सके।

(4) यदि रोगी या आहत व्यक्ति का शरीर ठण्डा पड़ रहा हो तो कम्बल से ढँक कर शरीर की गर्मी को सुरक्षित रखें।

(5) आहत व्यक्ति के निकट सम्बन्धी का नाम-पता ज्ञात कर उस तक सूचना पहुँचाने का प्रबन्ध करें।

(6) जैसी भी स्थिति हो रोगी को चिकित्सक तक या चिकित्सक को रोगी तक पहुँचाने की व्यवस्था करें।

(7) यदि व्यक्ति को उल्टी आ रही हो तो उसका सिर आहिस्ता से दायें व बायें घुमायें।

प्राथमिक चिकित्सा की आवश्यक सामग्री

1. तिकोनी पट्टियाँ, रुई 2. कैंची
3. पिन 4. बोरिक लिंट
5. टिंचर 6. सोडियम बाई-कार्बोनेट, कार्बोलिक अम्ल

चोट पर बहते हुए रक्त को रोकना

लक्षण—अचानक चोट लग जाना, घाव में कोई और चोट लग जाना आदि।

आवश्यक सामग्री-रुई, पट्टी, डिटॉल, बर्फ की थैली, एन्टीसेप्टिक मलहम आदि।

रक्त को रोकने की विधि—शरीर में रक्त किस ओर से बह रहा है, उस दिशा को देखना चाहिए और उस हिस्से को ऊपर की ओर कर देना चाहिए। घाव को डिटॉल से साफ करके उस पर बर्फ रख देनी चाहिये जिससे बहने वाले स्थान पर खून जम ज़ाये। अन्त में कोई मलहम व पट्टी कर देनी चाहिये।

घाव का उपचार

लक्षण—घाव शरीर के किसी भी स्थान पर हो सकता है। ताजा व पुराना, दोनों प्रकार के घाव होते हैं। कभी-कभी पुराने घाव में मवाद पड़ जाती है और गंध आने

लगती है।

आवश्यक सामग्री–बोरेक्स पाउडर, डिटॉल, एन्टीसेप्टिक मलहम, पट्टी, रुई।

उपचार विधि–गर्म पानी में डिटॉल या बोरेक्स पाउडर डालकर घाव को साफ करते हैं, उसके बाद कोई भी एन्टीसेप्टिक मलहम लगाकर पट्टी बाँध देते हैं।

रोज इसी विधि से पट्टी करते रहें, जब तक घाव पूरा भर नहीं जाये।

सावधानी–घाव पर पानी न लगने दें। मिट्टी आदि से बचायें। घाव भरने के लिए कभी-कभी स्वच्छ वातावरण में घाव को खुला भी छोड़ें।

बेहोशी का प्राथमिक उपचार करना

लक्षण–चक्कर आना, थकान होना, कमजोरी आना, कोई विशेष समाचार प्राप्त होना, कोई बीमारी होना आदि।

आवश्यक सामग्री–ठण्डा पानी, चूना, नौसादर, स्मेलिंग साल्ट।

उपचार विधि–बेहोश व्यक्ति को तत्काल खुली हवा में ले जायें। उसके कपड़े ढीले कर दें। यदि हल्की बेहोशी है तो नाक बन्द कर दें और मुँह खुला रहने दें। पानी के छींटे मुँह पर मारें, मूर्च्छा खुल जायेगी।

यदि बेहोशी नहीं जाती है तो एक रूमाल में चूना व नौसादर बाँध कर बेहोश व्यक्ति को सुँघाना चाहिये या फिर स्मेलिंग साल्ट सुँघाना चाहिये, बेहोशी दूर हो जायेगी।

सावधानीयाँ–बेहोशी का उपचार करने से पहले बीमार मनुष्य को पूर्व में हुई बीमारी की जानकारी होना आवश्यक है कि बेहोशी लू लगने से, हिस्टीरिया या किसी अन्य कारण से तो नहीं हैं।

जहरीले जानवरों का काटना

कुछ जानवर व कीड़े काटने के बाद शरीर में अपना डंक छोड़ देते हैं। थोड़ी देर में इनमें से रक्त बहने लगता है। कभी-कभी बेहोशी व दर्द भी होता है।

उपचार–(1) यदि डंक आँखों से दिख जाये तो उसे सुई या चिमटी से तुरन्त बाहर निकाल दें। सुई या चिमटी साफ व स्वच्छ होनी चाहिये। घाव को सावधानी से गर्म पानी व साबुन से धोकर उस पर लाल दवा या मरकरी क्रीम लगा देनी चाहिये।

(2) पहले काटे गए स्थान से सावधानीपूर्वक मुँह द्वारा रक्त को चूस लेना चाहिये और उसे बाहर थूक देना चाहिये, इससे कीड़ों द्वारा छोड़ा गया विष बाहर निकल जाएगा।

(3) प्रभावित अंग पर अमोनियम हाइड्रोक्साइड, स्प्रिट या मीठे सोडे का गाढ़ा घोल लगाना चाहिये, इससे पीड़ा में कमी आएगी।

जलने पर प्राथमिक उपचार

लक्षण–त्वचा लाल पड़ जाती है, फफोले पड़ जाते हैं, अधिक कष्ट होता है, कपड़ा चर्म से चिपक जाता है, चर्म छिल जाती है आदि।

उपचार

(1) यदि कपड़े में आग लग जाये तो पृथ्वी पर तब तक लुढ़कते रहना चाहिए जब तक कि आग की लपटें बुझ न जायें।

(2) ठण्डे पानी की बाल्टी भर कर रखें।

(3) यदि अंग ताजा जला हो तो उस पर नारियल का तेल लगा देना चाहिए।

(4) घाव पर सोडियम बाई-कार्बोनेट के घोल में भीगी हुई रुई बाँध देनी चाहिये।

(5) जले हुए अंग पर बरनॉल या कोई देशी मलहम लगाना चाहिए और जहाँ तक हो शरीर का वह भाग खुला रखना चाहिये।

(6) यदि घाव अधिक हो तो हल्की रुई के साथ पट्टी बाँध देनी चाहिये।

डूबने पर प्राथमिक उपचार

लक्षण–(1) थोड़ी देर पानी में डूबा रहने पर व्यक्ति अचेत हो जाता है।

(2) शरीर में ठण्ड लग जाती है।

(3) श्वास नली में पानी जा सकता है।

उपचार–(1) रोगी के समस्त चुस्त कपड़ों को उतार देना चाहिये।

(2) शरीर के ऊपरी भाग को नीचे की ओर झुकाना चाहिये और कमर तक उठाकर कुछ क्षण उसी स्थिति में रहने देना चाहिये ताकि पानी पेट से बाहर निकल आए। श्वास-क्रिया को नियमित करने के लिए कृत्रिम श्वास का प्रबन्ध करना चाहिये।

(3) जब स्वाभाविक श्वास पुनः आने लगे तो रोगी को सूखे कम्बल में लपेट देना चाहिए। गर्म चाय व कॉफी भी दी जा सकती है।

अस्थि-भंग–अस्थि-भंग कई प्रकार से होता है–

1. सरल अस्थि-भंग–बिना घाव के हड्डी का टूट जाना।

2. विषम अस्थि-भंग–अस्थि-भंग के साथ घाव हो जाना।

3. जटिल अस्थि-भंग–जब हड्डी कोमल अंग को घायल कर देती है।

4. कच्ची अस्थि-भंग–यह अस्थि सरलता से नहीं टूटती। यह लचक कर या चटक कर रह जाती है।

5. बहु खंड अस्थि-भंग–जब हड्डी टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो जाएँ।

6. दबी अस्थि-भंग-इसमें खोपड़ी के ऊपरी भाग के आस-पास की हड्डी टूट जाने पर अन्दर की ओर धँस जाती है।

अस्थि-भंग के लक्षण-प्राय: यह एक्स-रे द्वारा निश्चित किया जाता है कि अस्थि भंग कैसा है परन्तु जब चोट वाले अंग में सूजन, दर्द, शक्तिहीनता, अंग हिल-डुल न सकना, लम्बी अस्थियों का छोटा हो जाना, टूटे हिस्से आपस में रगड़ खायें, तो अस्थि-भंग माना जाता है।

अस्थि-भंग के उपचार-1. घायल व्यक्ति की हड्डियों को अचल करके घटनास्थल से हटाना चाहिये।

2. यदि अस्थि-भंग के कारण संक्षेप हो, तो दूर करना चाहिए।

3. यदि घाव से खून चलता हो, तो शुद्ध जल में साबुन घोल कर घाव धो देना चाहिए तथा उस स्थान पर टिन्चर लगा कर पट्टी बाँध देनी चाहिए।

4. अस्थि-भंग में पच्चरों, पटरियों तथ पट्टियों का प्रयोग करना चाहिए।

प्राथमिक चिकित्सा बॉक्स

आपातकालीन अवस्था में उपचार करने के लिए यदि आवश्यक वस्तुएँ हों तो उपचार अच्छा होता है। आवश्यक सामग्री एक निश्चित स्थान पर रखी होनी चाहिये जिससे आवश्यकता पड़ने पर तुरन्त उपयोग में लाई जा सके। अत: इस प्रकार की वस्तुओं को एक बॉक्स में रखा जाता है जिसे प्राथमिक चिकित्सा बॉक्स कहते हैं। इसे ऐसे स्थान पर रखना चाहिए जिससे कि बच्चे इसे न छू सकें। एक प्राथमिक चिकित्सा बॉक्स में सामान्यता निम्नलिखित वस्तुएँ रखी जा सकती हैं-

तिकोनी पट्टी, लुढ़कने वाली पट्टी, चिपकी, साफ रुई, कुछ गौस के टुकड़े, कुछ तैयार सींकें, थर्मामीटर, ड्रॉपर, डिटॉल, डिटॉल क्रीम, बरनॉल, आयोडेक्स, स्प्रिट, लाल दवा (पौटेशियम परमेंगनेट), टिन्चर आयोडीन या टिंचर पेराजोयट, सुँघाने वाला लवण (अमोनिया साल्ट), बोरिक पाउडर, ग्लिसरीन, जैतून का तेल, यूप्लिस्टिक तेल, अमृतधारा, दर्द कम करने वाली गोली, ग्लुकोस, नमक, खाने का सोडा, सिरका, आँख धोने का गिलास, चाकू, टॉर्च, सेफ्टी पिन, चिमटी, मोमबत्ती, डिटॉल साबुन, माचिस, एक छोटा सफेद नेपकिन, कैंची, एक नोट बुक व पैन, एक छोटा गिलास एवं चम्मच।

प्राथमिक चिकित्सा में दवाइयाँ आवश्यकतानुसार घटाई व बढ़ाई जा सकती हैं। हर घर में प्राथमिक चिकित्सा बॉक्स के अतिरिक्त दवा रखने की अलमारी होनी चाहिए जिससे कि छोटी-मोटी बीमारी का उपचार घर में ही हो सके।

विभिन्न प्रकार की पट्टियाँ, थर्मामीटर, बुखार की गोली, विक्स, एन्टीसेप्टिक क्रीम, गर्म पानी की थैली, बर्फ की थैली हमेशा रखनी चाहिये।

प्राथमिक चिकित्सा बॉक्स के ताला लगाने की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे बच्चे उन तक न पहुँच सकें क्योंकि कुछ वस्तुएँ जहरीली होती हैं। अलमारी पर भी ताला होना चाहिए।

प्राथमिक सहायक– किसी भी बीमारी या दुर्घटना होने पर प्राथमिक सहायक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। रोगी को तुरन्त उपचार व शीघ्र ठीक होना प्राथमिक सहायक की कुशलता पर अत्यधिक निर्भर करता है।

प्राथमिक सहायक के गुण

1. ***सचेत***–प्राथमिक सहायक अपने काम में निपुण हो। वह दुर्घटनाओं के कारण या उनके चिह्न पहचान सके।

2. ***धैर्यवान***–प्राथमिक सहायक को घबराना नहीं चाहिए। यदि सहायक ही घबरा जाएगा, तो वह प्राथमिक सहायता नहीं कर सकता। घबराहट में वह गलत औषधि भी दे सकता है।

3. ***चतुर***–चतुर सहायक अधिक पूछ-ताछ किये बिना ही कारण समझ जाता है तथा शीघ्र उपचार करने की चेष्टा करता है।

4. ***साधन कुशल***–साधन कुशल प्राथमिक सहायक उपलब्ध वस्तुओं का पूरा-पूरा प्रयोग कर लेता है और रोगी की दशा को अधिक बिगड़ने से बचा लेता है।

5. ***तीक्ष्ण बुद्धि***–प्राथमिक सहायक तीक्ष्ण बुद्धि वाला हो ताकि वह जल्दी निश्चय कर ले कि कौन-सी चोट की ओर पहले ध्यान दिया जाए।

6. ***सहानुभूति***–रोगी दुर्घटना के कारण घबराया हुआ होता है। वह दु:ख के कारण शोर भी करता है। प्राथमिक सहायक को रोगी के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए तथा रोगी को धैर्य बँधवाना चाहिए।

प्राथमिक सहायक के कर्त्तव्य

प्राथमिक सहायक के मुख्य कर्त्तव्य निम्न प्रकार हैं–

1. ***स्थिति को समझना***–दुर्घटना होने पर प्राथमिक सहायक का प्रमुख कर्त्तव्य है कि वह स्थिति को समझकर निर्णय ले कि रोगी को अस्पताल ले जाना है या नहीं।

2. ***रोगी का निर्णय और उपचार***–यह देखना कि रोगी होश में है या बेहोश, प्राथमिक सहायक का कर्त्तव्य है। यदि रोगी होश में हो तो उसे पता लगाना चाहिए कि वह किस पीड़ा का शिकार है और पीड़ा का तत्काल निरीक्षण करके उसका उपचार कर देना चाहिए। यदि रोगी बेहोश हो तो उसे सबसे पहले कृत्रिम श्वास दिया जाये, यदि खून बह रहा है तो उसे बन्द किया जाए।

3. रोगी को सुरक्षित करना तथा कारणों को हटाना—जो व्यक्ति दुर्घटना का शिकार हुआ हो उसे तुरन्त ही उन परिस्थिति से दूर ले जाना चाहिए जहाँ उसकी जान को खतरा हो, जैसे मकान गिरने अथवा लकड़ी का गट्ठा गिरने से हुई दुर्घटनाओं के कारणों को दूर कर दें अथवा गैस से भरे कमरे, विषैले धुएँ आदि से रोगी को सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दें।

4. तुरन्त उपचार—रोग का पता लग जाने पर प्राथमिकताओं को ध्यान में रखते हुए, उनका तुरन्त उपचार करना चाहिए। इस कार्य में जरा सी देरी से रोगी की जान को खतरा हो सकता है। प्राथमिक सहायता के पश्चात् जब तक रोगी को अस्पताल ले जाने का प्रबन्ध न हो, उसका निरन्तर निरीक्षण करते रहना प्राथमिक सहायक का कर्त्तव्य है।

5. समुचित प्रबन्ध करना—दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति अथवा व्यक्तियों की चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध करना प्राथमिक सहायक का कर्त्तव्य है, आवश्यकतानुसार उसे घर, अस्पताल अथवा सुरक्षित स्थान पर पहुँचाये।

प्राथमिक सहायता के लिए आवश्यक बातें

1. आवश्यकता के समय तुरन्त सहायता देना।
2. सहायता का सारा सामान एक साथ ले जाना।
3. सावधानी से घटनास्थल का निरीक्षण करना।
4. रोगी की दुर्घटना का कारण दूर करना।
5. जख्मों से निकला हुआ खून तुरन्त बन्द करना।
6. रोगी का श्वास देखना। यदि श्वास बन्द हो तो चलाने का प्रयत्न करना।
7. रोगी के शरीर का तापमान सामान्य बनाए रखना।
8. रोगी को अधिक से अधिक आराम पहुँचाना।
9. रोगी के घाव को ढक देना। हड्डी टूटी हुई हो तो उसे हिलाना नहीं चाहिए।
10. रोगी को आवश्यकतानुसार कपड़े पहनाना।
11. रोगी को अस्पताल या सुरक्षित स्थान पर ले जाने का प्रबन्ध करना।
12. यदि रोगी दूध पी सके, तो अधिक चीनी वाला गर्म दूध पिला देना चाहिए।
13. सहायक को पूर्ण शारीरिक विज्ञान की जानकारी हो, परन्तु उसे अपने आप को डॉक्टर नहीं समझना चाहिए।
14. यदि रोगी ने विष खा लिया हो तो विष निकालने का प्रयत्न करना चाहिए।

❑❑❑

4

संक्रामक रोग

जब प्रत्यक्ष सम्पर्क से रोग एक-दूसरे को लग जाता है, तो उसे संसर्गज रोग कहा जाता है, परन्तु जब अप्रत्यक्ष रूप या किसी माध्यम से, जैसे- कीटाणु, जल, वायु एवं भोजन आदि के द्वारा रोग एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को लग जाता है, तो उन्हें संक्रामक रोग कहा जाता है।

संक्रामक रोगों के कारण

संक्रामक रोगों का मुख्य कारण अति सूक्ष्म जीवाणु हैं। ये जीवाणु वक्र रूप के होते हैं। इनकी आकृति घोंघे के समान होती है। इन जीवाणुओं की आकृति अति सूक्ष्म होती है। इन्हें सामान्य रूप से देखा नहीं जा सकता। इन्हें देखने के लिए सूक्ष्मदर्शी यन्त्र की आवश्यकता होती है। जब ये जीवाणु अवसर पाकर शरीर में प्रवेश कर जाते हैं, तो शरीर में बड़ी शीघ्रता के साथ बढ़ने लग जाते हैं।

संक्रामक रोगों के प्रसार के स्रोत

संक्रामक रोगों के प्रसारित होने के प्रमुख स्रोत निम्नलिखित हैं-

1. वायु द्वारा-अनेक रोग वायु द्वारा फैलते हैं, जैसे-छोटी चेचक, खसरा, इन्फ्लूएन्जा, खसरा, कुकर खाँसी, डिप्थीरिया, तपेदिक आदि।

2. भोजन एवं जल द्वारा-कुछ संक्रामक रोग भोजन एवं जल द्वारा फैलते हैं। इस प्रकार के प्रमुख रोग हैं-पेचिस, मोतीझरा, हैजा आदि। इस प्रकार के रोग फैलने में मक्खियों की भूमिका विशेष रहती है।

3. सम्पर्क द्वारा-रोगी व्यक्ति भी विभिन्न संक्रामक रोग फैलाते हैं। यदि रोगी व्यक्ति के सम्पर्क में कोई स्वस्थ व्यक्ति आ जाता है तो उसे भी वही रोग हो जाता है।

4. चर्म संघर्षण द्वारा-वैसे तो त्वचा हमारे शरीर का प्राकृतिक आवरण है। यह विभिन्न रोगाणुओं से हमारे शरीर की रक्षा करती है, परन्तु कभी-कभी चर्म में घर्षण द्वारा जीवाणु शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। प्रवेश के पश्चात जीवाणुओं की वृद्धि होती रहती है। एन्थ्रेक्स और टिटनेस जैसे रोगों के जीवाणु इसी प्रकार प्रसारित होते हैं।

कीड़ों द्वारा–विभिन्न कीड़े भी संक्रामक रोगों को फैलाने में सहायक होते हैं। मच्छर, मक्खियाँ, खटमल तथा जुएँ मानव शरीर का रक्तपान करते रहते हैं। जब ये कीड़े किसी रोगी व्यक्ति का रक्तपान कर लेते हैं और अन्य स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में अपना डंक छोड़ देते हैं तो उस व्यक्ति के शरीर में भी रोग के जीवाणु प्रवेश कर जाते हैं और वह रोगी हो जाता है। मलेरिया ज्वर इस प्रकार के रोगों का प्रमुख उदाहरण है।

देखा जाता है कि कुछ व्यक्ति रोगवाहक का कार्य करते हैं। ऐसे व्यक्तियों पर रोग के कीटाणुओं का तो कोई प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु इस प्रकार के व्यक्ति रोग के संवाहक का कार्य करते हैं और वे अपने शरीर के द्वारा रोग के जीवाणुओं को स्वस्थ व्यक्तियों तक पहुँचा देते हैं। इस प्रकार ये रोग फैलाने का कार्य करते हैं।

संक्रामक रोगों के सामान्य लक्षण

संक्रामक रोगों के कुछ सामान्य लक्षण होते हैं–

(i) ***पीड़ा*** **(Pain)**–जब बीमारी जोर पकड़ने लगती है तो शरीर बेजान सा हो जाता है तथा पीड़ा महसूस होने लगती है। शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों में पीड़ा संक्रामक रोगों का प्रारंभिक लक्षण है।

(ii) ***तापक्रम का बढ़ना*** **(Rise of Temperature)**– ज्वर अथवा तापमान का तीव्र गति से बढ़ना भी संक्रामक रोग का लक्षण है।

(iii) ***कँपकँपी होना*** **(Shivering)**–संक्रामक रोगों में जैसे मलेरिया आदि के कारण शरीर में कँपकँपी होने लगती है और शरीर को ठंडक अनुभव होती है।

(iv) त्वचा पर छोटे-छोटे लाल रंग के दाने हो जाते हैं।

(v) कई बार उल्टियाँ और दस्त आने लगते हैं।

संक्रामक रोगों से बचाव

यदि संक्रामक रोगों के लक्षणों के उभरते ही इन पर काबू पा लिया जाए तो इस प्रकार के रोग फैलने से रोके जा सकते हैं।

कुछ प्रमुख उपाय इस प्रकार हैं–

(1) अधिसूचना—जब कभी भी इस प्रकार के रोगों के लक्षण दिखाई दें, तो तुरन्त ही स्वास्थ्य विभाग को इस बात की सूचना दे देनी चाहिए। इस प्रकार ऐसे रोगों पर नियंत्रण किया जा सकता है।

(2) पृथक्करण—जब कभी भी इस प्रकार के रोगों के लक्षण दिखाई दें तो उस रोगी को तुरन्त अन्य व्यक्तियों से अलग कर देना चाहिए। जब तक वह व्यक्ति बिलकुल स्वस्थ न हो जाए तब तक उसे कामकाज में भाग नहीं लेने देना चाहिए तथा न ही किसी आदमी को उससे मिलने देना चाहिए।

(3) प्रतिरक्षण—बहुत से रोग ऐसे होते हैं जो किसी व्यक्ति को हो जाए तो शरीर के अन्दर थोड़ी सी शक्ति पैदा कर देते हैं जो उसी प्रकार के कीटाणुओं से शरीर की रक्षा करती है। ऐसी स्थिति को प्रतिरक्षण कहते हैं। प्रतिरक्षण कई प्रकार से प्राप्त किया जाता है, जैसे–प्राकृतिक, अर्जित तथा कृत्रिम प्रतिरक्षण इत्यादि।

(4) निरोधन काल—कई बार एक स्थान पर फैली हुई बीमारी से ग्रस्त लोग दूसरी जगह पर चले जाते हैं तो वहाँ के लोगों को भी रोगी बना देते हैं। ऐसे रोगियों पर ध्यान रखना चाहिये और उन्हें अन्य स्थान पर जाने से रोकना चाहिये। इसी के तहत अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार विदेशों में जाने वाले यात्रियों को डॉक्टरी सर्टीफिकेट लेना जरूरी होता है।

संक्रामक रोग अत्यन्त तीव्रता के साथ फैलते हैं। विद्यालय में इनकी रोकथाम के लिए विशेष ध्यान रखना चाहिए।

प्रत्येक जीवाणु या कीटाणु का अपना अलग रूप होता है। इन कीटाणुओं के शरीर में प्रवेश करने के कई माध्यम हैं–

1. वायु द्वारा 2. सम्पर्क द्वारा 3. भोजन तथा जल द्वारा।

1. वायु द्वारा—रोगियों के मुख तथा नाक द्वारा निकली हुई हवा के साथ ये कीटाणु बाहर निकल आते हैं और वायु में मिल जाते हैं। जब स्वस्थ व्यक्ति श्वास लेता है तो श्वास के द्वारा ये उसके शरीर में भी प्रवेश कर जाते हैं।

वायु द्वारा फैलने वाले प्रमुख रोग हैं–

1. चेचक (Small Pox)
2. खसरा (Measles)
3. काली खाँसी (Whooping Cough)
4. तपेदिक (Tuberculosis)
5. इनफ्लुएंजा (Influenza)
6. रौंहे (Infantile Paralysis)
7. कण्ठरोहिणी (Diphtheria)
8. कर्णफेड़ (Mumps)

चेचक

चेचक रोग को हमारे देश के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न नाम से पुकारा जाता है जिनमें शीतला, बूढ़ी माता आदि प्रसिद्ध नाम हैं। यह घातक रोग गाँवों में असावधानी के कारण बहुत तीव्रता से फैलता है। यह अति सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा पैदा होता है। चेचक के

जीवाणुओं को वायरोला वायरस के नाम से पुकारा जाता है। टीके के आविष्कार ने इस रोग के फैलने पर प्रभावी रोक लगाई है, अन्यथा पहले इस रोग से ग्रस्त सैकड़ों व्यक्ति मृत्यु के शिकार हो जाते थे।

रोग के लक्षण

(1) इस रोग में पहले शरीर में कँपकँपी, बदन, सिर और पीठ में तीव्र पीड़ा, तीव्र ज्वर और मुँह लाल हो जाता है।

(2) तीसरे दिन माथे तथा कलाई पर लाल दाने बन जाते हैं, जो बाद में पैर तथा शरीर पर फैल जाते हैं।

(3) पाँच या छः दिन बाद इन दानों में एक द्रव भर जाता है और ये एक छाले के समान बन जाते हैं।

(4) आठ या नौ दिन बाद इनमें पस पड़ जाती है तथा तीव्र ज्वर बड़ा हो जाता है।

(5) आँखों की पलकें फूलने से बन्द हो जाती हैं। यह स्थिति 10 या 12 दिन तक चलती है। इसके पश्चात् यह ठीक होना आरम्भ हो जाता है।

12 दिन के बाद ये दाने सूख जाते हैं। शरीर से पपड़ियाँ निकल कर गिर जाती हैं और त्वचा पर गहरे दाग दिखाई देते हैं। कमजोरी के कारण व्यक्ति को श्वास सम्बन्धी रोग हो जाते हैं।

बचने के उपाय

1. चेचक का टीका.इससे बचने का सर्वोत्तम उत्तम उपाय है। रोग की सूचना पाते ही विद्यालय में सभी बालकों को टीका लगवा दिया जाए। जन्म के बाद बच्चे को टीका अवश्य लगवाना चाहिए। इसका प्रभाव सात वर्ष तक रहता है।

(i) स्थानीय स्वास्थ्य अधिकारी को सूचना दी जानी चाहिए।

(ii) रोगी को उस समय तक घर से बाहर नहीं जाने देना चाहिए जब तक खरुंट व पपड़ी न गिर जाए।

2. यदि किसी छात्र में इस रोग के लक्षण दिखाई पड़ें तो उसे तुरन्त घर भेज दिया जाए।

3. रोगी को अलग स्थान पर लिटाना चाहिए तथा बच्चों को समीप न आने दिया जाए।

4. रोगी के कपड़े, बिस्तर, बर्तन आदि अलग रखने चाहिए।

5. मल-मूत्र, थूक और बलगम को दबवा देना चाहिए।

खसरा

चेचक की तरह खसरा भी एक भयानक रोग है। बड़ों के लिए यह कष्टकारी है परन्तु 2 से 5 वर्ष के बच्चों के लिए अत्यधिक घातक है। इस रोग के फलस्वरूप व्यक्ति की आँख, कान, गुदा आदि खराब हो जाते हैं।

लक्षण

1. आरम्भ में साधारण जुकाम होता है तथा नाक खूब बहती है।
2. चौथे दिन शरीर पर छोटे-छोटे दाने निकल आते हैं।
3. व्यक्ति को निमोनिया का डर रहता है।
4. बुखार तेज हो जाता है।
5. इसके साथ-साथ सिर दर्द हो जाता है।
6. नाक और गले में सूजन आ जाती है तथा शरीर लाल हो जाता है।
7. माथे पर फुन्सियाँ दिखाई पड़ती हैं तथा इसके बाद चेहरे, गर्दन, हाथ-पाँव, तथा फिर सारे शरीर पर फैल जाती हैं। शुरू-शुरू में इनका रंग मटमैला होता है। दो-तीन दिन के बाद इनका रंग बदल जाता है।
8. रोगी बहुत दुर्बल हो जाता है।
9. कभी-कभी आँखों और कान पर भी सूजन आ जाती है जिसके कारण बच्चे अन्धे तथा बहरे भी हो जाते हैं।

बचने के उपाय

(1) रोगग्रस्त बालक को विद्यालय से तुरन्त छुट्टी दे देनी चाहिए तथा रोगग्रस्त किसी भी बालक को विद्यालय में न आने दिया जाए।

(2) रोगी को ठण्ड से बचाया जाए।

(3) रोगी को काफी कपड़े पहना कर हवादार कमरे में रखा जाए।

(4) त्वचा पर खुजली रोकने के लिए कार्बोलेटिड वैसलीन आवश्यक है तथा आँखों की पीड़ा दूर करने के लिए उनमें बोरिक एसिड के घोल को 3-4 बार डालना आवश्यक है।

(5) रोगी के चेहरे पर रोशनी नहीं पड़ने देनी चाहिए।

इस रोग का कोई टीका अभी तक तैयार नहीं हुआ परन्तु एक बार इस रोग का आक्रमण होने पर फिर इस रोग की सम्भावना नहीं होती अर्थात् इस रोग का एक व्यक्ति पर साधारणतया एक बार ही आक्रमण होता है।

काली खाँसी

यह रोग प्राय: बच्चों को ही होता है। रोग का आरम्भ साधारण कफ़ या खाँसी (Cough) से होता है। बाद में खाँसते-खाँसते बच्चे का बुरा हाल हो जाता है। अधिक दिन रहने पर निमोनिया का डर रहता है।

इसका संप्रान्ति काल आठ से दस दिन का है।

लक्षण

1. एक सप्ताह रोगी जुकाम से पीड़ित रहता है। बाद में खाँसी जोर पकड़ती है।
2. खाँसी रात को अधिक होती है। बालक ठीक प्रकार से सो नहीं सकता।
3. खाँसते-खाँसते उल्टी हो जाती है।
4. रोगी का चेहरा लाल हो जाता है।
5. खाँसी से फेफड़ों पर कुप्रभाव पड़ता है और उनमें दर्द होने लगता है।

बचाव के उपाय

1. रोगी को स्वच्छ वायु में रखना चाहिए।
2. रोगी को गरम रखा जाए तथा उसे सीलन और नमी से बचाया जाए।
3. हल्का तथा शीघ्र पचने वाला भोजन दिया जाए।
4. रोगी को कुकर खाँसी का सीरम देना चाहिए तथा दो महीने तक विद्यालय से अवकाश दे देना चाहिए।
5. प्रत्येक माता-पिता को चाहिए कि बच्चे को जन्म के समय ही ट्रिपल वैक्सीन का टीका लगवा लें।
6. रोगी को एण्टीबायटिक्स जैसे-क्लोरोमाइसिटीन के टीके अथवा कैप्सूलों का प्रयोग करना चाहिए।
7. क्लोरोमाइसिटीन के कैप्सूल अथवा टीके के साथ विटामिन बी कॉम्पलैक्स खिलाना भी अत्यंत आवश्यक है।

तपेदिक, राजयक्ष्मा

यह अत्यन्त तीव्र संक्रामक रोग है। आंक्रान्त होने के लगभग एक वर्ष पश्चात् तक चलता है। प्राय: इस रोग का नाम सुनते ही लोग भयभीत हो जाते हैं। यह मलेरिया और प्लेग जैसा मौसमी रोग नहीं है बल्कि स्थायी तथा अधिक व्यापक है। भारतवर्ष में प्राय: कई लाख लोग इस रोग से प्रतिवर्ष मृत्यु का शिकार हो जाते हैं परन्तु नई-नई औषधियों के आविष्कार से इस रोग की रोकथाम करने का प्रयत्न होता रहता है। 1882 में राबर्ट कोच ने इस रोग के जीवाणु (Tubercula Bacillus) की खोज की जो मुड़े हुए डण्डे की तरह होता है।

इस रोग के उपचार के लिए फ्रांस के दो प्रसिद्ध वैज्ञानिकों कालमेटी (Calmette) तथा गुरीन (Guerin) ने एक टीके का आविष्कार किया जिसका नाम इन्हीं के नाम के आधार पर B.C.G. का टीका रखा गया है।

इस रोग को निम्नलिखित दो भागों में बाँटा जाता है–

(1) फुफ्फुसीय तपेदिक

(2) अफुफ्फुसीय तपेदिक

(1) फुफ्फुसीय तपेदिक—इसका आक्रमण प्रायः फेफड़ों पर होता है। यह प्रायः बूढ़े व्यक्तियों को होता है। बालक इससे बचे रहते हैं।

रोग के कारण

तपेदिक के जीवाणु थूक और कफ़ द्वारा शरीर से बाहर निकल जाते हैं। यह थूक और कफ़ मिट्टी से मिलकर धूप में सूख जाता है। हवा चलने पर जब धूल उड़ती है तब ये जीवाणु श्वास द्वारा फेफड़ों में पहुँच जाते हैं। इस प्रकार यह रोग जीवाणुओं द्वारा फैलता है।

लक्षण

1. खाँसी का बना रहना।
2. थूक तथा कफ़ में खून आना।
3. हल्का ज्वर रहना।
4. भूख न लगना।
5. धीरे-धीरे वजन घटना।
6. श्वास जल्दी-जल्दी आना।
7. खेल-कूद में बिल्कुल रुचि न होना।
8. दोपहर बाद ज्वर का आना।
9. सोते समय पसीना आ जाना तथा
10. गले और छाती में दर्द का रहना।

उपचार तथा बचने के उपाय

1. आरम्भिक अवस्था में इसे आसानी से रोका जा सकता है। इसके लिए विश्राम, पौष्टिक भोजन, स्वच्छ वायु, सूर्य का प्रकाश, व्यायाम तथा मनोरंजन अवश्य होना चाहिए जिसके द्वारा यह धीरे-धीरे कम हो जाता है।

2. B.C.G. का टीका लगवाना चाहिए।

3. स्वच्छ वायु तथा प्रकाश वाले खुले घर में रहना चाहिये। सूर्य का तेज प्रकाश तपेदिक के जीवाणुओं को समाप्त करता है।

4. खसरा, काली खाँसी, निमोनिया आदि रोगों से शरीर को बचाए रखना चाहिये।

5. सीलन वाले स्थान पर नहीं रहना चाहिये।

6. अनुवीक्षण यन्त्र द्वारा निष्कासित बलगम व बुखार की जाँच की जाती है जिसमें क्षय-जीवाणु पाए जाते हैं पर निश्चयात्मक रूप से इसका उपचार होता है।

(2) अफुप्फुसीय तपेदिक–अफुप्फसफुसीय तपेदिक के कई प्रकार हैं, जैसे–स्क्रोफूला (Scrofula), स्ट्रमा (Struma), मस्तिष्क शोथ (Meningitis)।

कारण

1. बाल-विवाह, शक्तिहीन करने वाली सामाजिक कुप्रथाएँ तथा निमोनिया, खसरा, बुखार इत्यादि।

2. संतुलित तथा पौष्टिक आहार की कमी।

3. अत्यधिक मद्यपान करना।

4. संक्रामक आहार का सेवन करना तथा अशुद्ध स्थानों पर रहना एवं गर्म हवा में साँस लेना।

लक्षण

1. उल्टियाँ और कोष्ठबद्धता (कब्ज) इस रोग के प्रारम्भिक लक्षण हैं।

2. पहले ग्रंथियाँ सूख जाती हैं तथा बाद में उनमें घाव पड़ जाता है।

3. रोगग्रस्त ग्रंथियाँ सूख जाती हैं तथा बुखार रहने लगता है।

उपचार

1. सूर्य उपचार (Helio Therapy) क्षय रोगग्रस्त ग्रंथियों के लिए अत्यधिक उपयोगी है।

2. इस रोग के लिए पराकाशी रश्मियाँ काफी लाभदायक सिद्ध हुई हैं।

3. संतुलित भोजन और पौष्टिक आहार मिलना चाहिए।

4. रोगग्रस्त व्यक्ति को तपेदिक के अस्पताल (Sanitorium) में भेजना चाहिए।

इनफ्लुएंजा

यह अत्यन्त तीव्रता से फैलने वाला संक्रामक ज्वर है जो कि विषैले तत्त्वों के कारण फैलता है। कभी-कभी तो यह महामारी का रूप धारण कर लेता है। श्वास, खाँसी, नाक और मुख से निकले हुए स्राव में कीटाणुओं से फैलता है।

इनफ्लुएंजा तीन प्रमुख वायरस के कारण होता है–वायरस–ए, वायरस–बी, वायरस–सी। वायरस की इन अलग–अलग किस्मों की खोज क्रमशः 1930, 1940 तथा 1947 में हुई थी।

रोग के कारण

फ्लू का कारण एक अत्यन्त छोटा–सा जीवाणु है। यह जीवाणु इतना छोटा होता है कि इसे सूक्ष्मदर्शी की सहायता से ही देखा जा सकता है।

फैलने का ढंग

यह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैलने वाला अति तीव्र रोग है। यह निम्नलिखित तीन विधियों द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैलता है–

1. सीधे सम्पर्क से।
2. बिन्दु संक्रमण द्वारा अर्थात्, थूक, खाँसी, साँस इत्यादि द्वारा।
3. रोगग्रस्त व्यक्ति के उपयोग में लाई जाने वाले वस्तुओं का प्रयोग करने से।

संप्रान्ति काल

इसका संप्रान्ति काल कुछ घण्टों से कुछ दिन का है।

लक्षण

1. आरम्भ प्रायः जुकाम तथा सिर दर्द से होता है।

1. इसके बाद हाथों, पैरों तथा कमर में दर्द होना, ठण्ड का लगना, नाक और आँख से पानी आना, छींकें आना तथा बुखार आना आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

ठंड लग जाने पर निमोनिया का भय रहता है।

बचने के उपाय

1. रोगी को पूर्ण आराम देना चाहिए और उसे ठण्ड से बचाना चाहिए।

2. जुकाम–ग्रस्त बच्चों को विद्यालय में आने से रोक दिया जाए। यदि रोग व्यापक रूप में फैल जाए तो विद्यालय कुछ दिन के लिए बन्द कर देना चाहिए।

3. रोग फैल जाने पर सिनेमा, थियेटर, पुस्तकालय आदि कुछ समय के लिए बन्द करवा दिये जायें।

4. बर्फ का पानी तथा बाजार की चीजें खानी बन्द कर देना चाहिए।

5. साधारण नमक से गरारे करने तथा नाक साफ करने से बड़ा लाभ होता है।

कण्ठरोहिणी

यह रोग प्रायः 2–5 वर्ष तक के बालकों में होता है। यह श्वास नली में होता है। इसके जीवाणु रोहिणी कहलाते हैं, जिनका आकार छड़ जैसा होता है। जब इसके कृमि

नाक या श्वास नली में एकत्र हो जाते हैं, तो वहाँ विष उत्पन्न करते हैं। जब विष की अधिकता हो जाती है तो यह रोग सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता है। प्राय: यह 2 से 3 दिन तक होता है।

रोग की अवस्था–इस रोग में रोगी को छींकें आती हैं या बार-बार खाँसता है। रोगी के वस्त्र या उसकी जूठन का इस्तेमाल करने से भी इसका प्रसार होता है। कभी-कभी यह रोग अशुद्ध भोजन या सड़े-गले पदार्थों का सेवन करने से भी होता है। रोहिणी के जीवाणु सर्वप्रथम टॉन्सिलों तथा श्वास नली को प्रभावित करते हैं।

रोग के लक्षण–इस रोग में गर्दन तथा नासिका ग्रंथियों के स्थान पर दर्द होता है तथा टॉन्सिलों पर सफेद झिल्ली सी दिखाई देने लगती है। बुखार लगभग 38 डिग्री से 39 डिग्री सेन्टीग्रेड तक होता है। इसमें स्वर यन्त्र अवरुद्ध हो जाता है तथा दम घुटने सा लग जाता है। यदि ये कृमि नाक से आक्रमण करते हैं तो नाक लाल हो जाती है तथा पानी सा बहता है।

कर्णफेड़

यह रोग भी प्राय: बालकों में होता है। इस रोग के कीटाणु कान के ऊपर-नीचे अपना प्रभाव डालते हैं जिसके फलस्वरूप कान के पास की गिल्टियाँ तथा जिह्वा ग्रन्थियाँ सूज जाती हैं। इससे भोजन के निगलने में दिक्कत आती है।

लक्षण–कान के नीचे-ऊपर स्थित भाग में सूजन आ जाती है तथा दर्द होता है। ज्वर भी आता है। इसकी सूजन 7 से 15 दिन में दूर हो जाती है।

उपचार–सर्वप्रथम रोगी को सात दिन तक स्वस्थ व्यक्तियों से अलग रखा जाये। ठण्ड से बचाकर जबड़े स्थित भाग की सफाई की जाये। रोगी को आराम दिया जाये। दर्द के लिए एस्प्रीन गोली दी जाये। दर्द या सूजन के स्थान पर इवियथौल बैलाडोना लगाया जाये। रोगी को पोटैशियम परमैंगनेट के घोल के कुल्ले कराये जायें। सूजन कम होने पर हल्का भोजन दिया जाये।

रौहे

यह रोग आँखों का है। प्राय: यह रोग गन्दगी के कारण होता है। इस रोग में आँखों की ऊपरी पलकों में दाने पड़ जाते हैं। जब पलक अपना कार्य करते हैं, तो इनके साथ घर्षण होता है। सारा घाव पूर्ण हो जाता है। चुभन होती है, आँखों में पीड़ा होती है। रोगी प्रकाश की ओर नहीं देख पाता, उसकी आँखों में चकाचौंध होती है, जलन के साथ पानी बहता है। इस रोग का शीघ्र उपचार करना चाहिए।

रोग की रोकथाम–जिस रूमाल या तौलिया को रोगी आँखों के लिए प्रयोग करता है, उसे स्वस्थ व्यक्ति द्वारा प्रयोग न किया जाये। नेत्र विशेषज्ञ को तुरन्त दिखाया

जाय एवं गन्दगी से बचाया जाये। आँखों में पैन्सिलीन या टेरामाइसन मरहम लगायी जाये। नेत्रों को साफ रखा जाये।

2. संपर्क द्वारा रोग फैलना

अस्वस्थ व्यक्ति के सम्पर्क में आने के कारण कीटाणु स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त वस्त्रों, पुस्तकों, कुर्सियों, मेज, बिस्तर आदि के सम्पर्क से भी रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

सम्पर्क द्वारा फैलने वाले रोग

1. लाल बुखार
2. खसरा
3. चेचक
4. दाद तथा खुजली।

लाल बुखार

यह रलैटिना (Relatina) नामक कीटाणुओं से उत्पन्न होता है जो टॉन्सिल्स द्वारा शरीर में प्रवेश करते हैं। प्राय: यह रोग 5 से 10 वर्ष की आयु वाले बच्चों में फैलता है। यह रोग बर्तनों, कपड़ों, पुस्तकों आदि के माध्यम से फैलता है।

इस रोग को फैलाने वाले जीवाणुओं को स्ट्रेप्टोकोकस स्कारलेटाईन (Streptococcus Scarlatine) जीवाणु कहा जाता है।

संप्रान्ति काल

इसका संप्रान्ति काल 2 दिन से लेकर 8 दिन का होता है।

लक्षण

1. रोगी को आरम्भ मे कँपकँपी होती है।
2. वमन तथा कमर में दर्द होने लगता है।
3. चेहरे का रंग लाल और त्वचा गर्म हो जाती है तथा सूखापन मालूम होता है।
4. गर्दन और छाती पर छोटे-छोटे दाने दिखाई पड़ते हैं।
5. जीभ पर सफेद तह जम जाती है। टॉन्सिल्स सूज जाते हैं तथा लाल हो जाते हैं।
6. 4 से 8 दिन में त्वचा से पपड़ियाँ उतर जाती हैं।

उपचार तथा बचने के उपाय

1. रोगी को छ: सप्ताह तक आराम करना चाहिए।
2. रोगी का गला, नाक, और मुँह विषनिरोधक के घोल से साफ करना चाहिए।
3. रोगी को पीने के लिए उबला हुआ पानी देना चाहिए और गले का सेंक देना चाहिए।

4. यदि डॉक्टर परामर्श दे तो सल्फा अथवा क्लोरोमाईसिटीन नामक औषधि का उपयोग करना चाहिए।

5. रोगी बच्चों को विद्यालय में नहीं आने देना चाहिए।

6. जिन बच्चों में इस रोग के लक्षण दिखाई दें उन्हें तुरन्त डॉक्टरी परीक्षा के लिए भेजना चाहिए। इसके लिए डिक टेस्ट प्रणाली प्रयोग में लानी चाहिए।

खाज या खुजली

खाज भी संक्रामक रोग है। एक परजीवी जिसे Acarus Scabbies कहते हैं के कारण खाज पैदा होती है। यह 5 मि.मी. लम्बा होता है। यह चमड़े की प्रथम सतह के भीतर प्रवेश कर जाता है। इसका स्थान कलाई के सामने पीछे की ओर, पाँव तथा उँगली की रागों में टखने के पास होता है। इस रोग में खुजली बहुत होती है। रोगी खुजाते-खुजाते परेशान हो जाता है। फफोले तथा दाने से पड़ जाते हैं। इन दानों में कभी-कभी मवाद भी पड़ जाता है। लिबलिबा सा पदार्थ निकलता है। अत: रोगी को स्वस्थ व्यक्ति से बचाना चाहिए।

रोग की रोकथाम—रोगी को यथासम्भव साफ रखा जाए तथा गन्धक के मरहम का लेप किया जाये। रोगाणुओं को मारने के लिए बेन्जाइल बेन्जोरएट का घोल लगाया जाये। रोगी के वस्त्रों को साफ करते तथा बदलते रहना चाहिए। रोगी के वस्त्रों को गरम खौलते पानी में डाल दिया जाये, इससे वस्त्रों में लगी गन्दगी तथा कीटाणु नष्ट हो जायेंगे।

दाद

चेहरे पर दाद होने पर लाल-लाल चकत्ते हो जाते हैं। ये चकत्ते देखने में गोलाकार होते हैं, इनका एक घेरा होता है जो उठा हुआ तथा लाल होता है। बीच का स्थान सामान्य लाल जैसा होता है। इस पर रिंगवर्म मरहम का प्रयोग किया जाये।

यह रोग कई स्थानों पर हो जाता है—1. चेहरे तथा कपाल के दोनों ओर 2. जाँघ की रागों में 3. शरीर के किसी भी भाग में 4. ठोड़ी या दाढ़ी के पास।

रोग के लक्षण एवं उपचार

कपाल या सिर पर घाव हो जाने पर बाल उड़ जाते हैं तथा गोल-गोल चकत्ते हो जाते हैं, उनमें घाव भी हो जाता है। इस प्रकार बाल झड़ने लग जाते हैं। सिर की दाद को ठीक करने के लिए बालों को कटवा दिया जाये। तत्पश्चात उन्हें धोकर मरहम लगाया जाये। जाँघों में दाद हो जाने पर यह भाग गुलाबी या भूरापन सा लिये रहता है। इसे एक्जीमा भी कहते हैं, इसमें जलन तथा खुजली भी होती है। ऐसा प्राय: रागों में होता है। इसके उपचार हेतु मरहम लगाया जाये। रोगी के वस्त्रों को गरम पानी में धोना चाहिए।

3. भोजन तथा जल द्वारा रोग फैलना

जल और भोजन द्वारा रोग के कीटाणुओं को फैलने का अवसर मिलता है। जब स्वस्थ व्यक्ति रोगी के सम्पर्क में आये हुए भोजन तथा जल को ग्रहण करता है तो रोगों के कीटाणु उसके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं जिनका निवास स्थान पाचन तंत्र है। भोजन तथा जल में गन्दगी मक्खियों द्वारा पैदा होती है और गन्दगी से रोगों के कीटाणुओं का प्रसार होता है।

जल तथा भोजन से फैलने वाले रोग

1. हैजा (Cholera)
2. मियादी बुखार (Typhoid)
3. पेचिश (Dysentery)

हैजा

प्लेग की भाँति हैजा प्राय: महामारी के रूप में प्रकट होता है और हजारों की संख्या में लोग इसका शिकार हो जाते हैं। हैजे के कीटाणुओं के फैलने का मुख्य कारण मक्खी है। मक्खी भोजन तथा पानी पर बैठ कर हैजे के कीटाणुओं को वहाँ पर छोड़ देती है। जब यह भोजन व जल स्वस्थ व्यक्ति प्रयोग में लाता है तो वह इस रोग का शिकार हो जाता है।

लक्षण

1. रोग के कीटाणुओं के प्रवेश होते ही पेट में दर्द और दस्तों का होना शुरू हो जाता है।
2. पेशाब बन्द हो जाना।
3. आँखों का धँस जाना तथा नाखूनों का काले पड़ जाना।
4. प्यास का अधिक लगना।
5. तीव्र गति से रोग का प्रसार होना।

बचने के उपाय

1. रोगी को निकटतम डॉक्टर से सलाह लेनी चाहिए।
2. रोगी की कै तथा दस्त से भी यह रोग फैलता है। इसलिए इन्हें मिट्टी के बर्तन में डालकर गहरे गड्ढे में गाड़ देना चाहिए।
3. रोगी को स्वच्छ कपड़े पहनाने चाहिए।
4. घर का भोजन, जल आदि ढक कर रखना चाहिए।
5. रोगी के खाने-पीने के बर्तन अलग रखने चाहिए।

कीड़ों द्वारा फैलने वाले रोग

1. पीला ज्वर (Yellow Fever)
2. मलेरिया (Malaria)
3. फाइलेरिया (Fileria)
4. प्लेग (Plague)
5. काला अजार (Kala Azar)
6. डेंगू (Dengue Fever)

पीला ज्वर

यह एडीज आरजेन्टियस नामक मच्छर के काटने से होता है। इसे पीत ज्वर भी कहते हैं।

संप्रान्ति काल

यह मच्छर 3 दिन में ही रोगी का समस्त खून चूस लेता है और कम से कम 12 दिन बाद दूसरे व्यक्ति को काटता है। 12 दिन में मच्छर का अपना विकासक्रम पूरा हो जाता है।

बचने के उपाय

1. सोते समय मच्छरदानी प्रयोग की जाए।
2. मच्छर को मारने का प्रबन्ध किया जाए।
3. रोग-निरोधक ठीका लगाना चाहिए।

मलेरिया

प्रायः मलेरिया से सभी लोग परिचित हैं। यह संक्रामक रोग है जो कि मादा एनोफेलीज़ (Anopheles) मच्छरों के काटने से होता है। ये मच्छर अपने शरीर में पराश्रयी (Parasite) जीवाणुओं का विकास तथा वृद्धि करते हैं। जब मच्छर व्यक्ति को काट जाते हैं तो पराश्रयी जीवाणु उसके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। ये जीवाणु शरीर के अन्दर जाकर अमैथुनी चक्र (Asexual Cycle) आरम्भ कर देते हैं। इसके द्वारा पराश्रियों की संख्या बढ़ जाती है तथा मलेरिया ज्वर हो जाता है।

पराश्रयी जीवाणु गड्ढों में, गन्दी जलवायु में तथा गन्दे स्थान पर होते हैं और विकास तथा वृद्धि करते हैं।

संप्रान्ति काल

इसका संप्रान्ति काल 7 से 12 दिन होता है।

रोग के लक्षण–सिर दर्द, सर्दी का लगना, उसके बाद तेज ज्वर का आना।

कालाज़ार

यह मलेरिया तथा फाइलेरिया की तरह होता है और बालू मक्खी द्वारा प्रसारित होता है। यह रोग महामारी के रूप में फैलता है। यह रोग कब फैलता है, इसका निश्चय पहले

10. स्वस्थ व्यक्ति को टाइफाइड रोग-निरोधक टीका (Antityphoid Vaccine) लगवाना चाहिए। यह टीका टाइफाइड के मृत कीटाणुओं से तैयार किया जाता है।

पेचिश (अतिसार, शूल, दस्त)

यह रोग प्राय: गर्म देशों में होता है। यह निम्नलिखित दो प्रकार का होता है-

1. बैसिलरी और 2. ऐमीबिक ।

1. बैसिलरी पेचिश–इसका प्रथम कारण तो कीटाणु होते हैं, दूसरी प्रोटोओजा जो मल-मूत्र, जल तथा झूठे बर्तन के कीटाणुओं द्वारा फैलते हैं।

2. ऐमीबिक पेचिश–यह महामारी के रूप में दिखाई देती है तथा इसका रोगी वर्ष भर पेचिश का शिकार रहता है।

संप्रान्ति काल

इसका संप्रान्ति काल दो दिन है।

लक्षण–

1. रोगी को मरोड़ के साथ दिन में कई बार पतले-पतले दस्त होते हैं।

2. दस्त में प्राय: आँव और रक्त होता है। रोग अधिक बढ़ जाए तो रक्त तथा आँव भी निकलती है।

3. रोगी जल्दी-जल्दी पाखाना जाता है। शौचालय में बैठा रहना पसन्द करता है।

4. रोगी को ज्वर भी हो जाता है। वह दिन-प्रतिदिन कमजोर होता जाता है। कई बार पेचिश से रोगी की मृत्यु भी हो जाती है।

बचने के उपाय–

1. दूध, जल तथा भोजन को मक्खियों से बचाने के लिए ढक कर रखना चाहिए।

2. स्वच्छता के नियमों का पालन करना चहिए।

3. रोगी को अच्छे डॉक्टर से परामर्श करना चाहिए।

4. डॉक्टर के परामर्श अनुसार रोगी को सल्फाग्वानीडीन की गोलियाँ दी जानी चाहिए।

5. रोगी को पीने के लिए लवणयुक्त जल देना चाहिए और यदि उसकी स्थिति अधिक नाजुक हो जो सेलाईन इंजेक्शन भी दिया जा सकता है।

कीड़ों द्वारा रोग फैलना

मच्छर, मक्खी, जुओं, खटमलों के काटने से रोग उत्पन्न हो जाते हैं। ये कीड़े काट कर रक्त चूसते हैं। कीटाणु शरीर में विष प्रवेश करा देते हैं तथा व्यक्ति बीमार पड़ जाता है। इन सब कीड़ों में से मक्खी सबसे खतरनाक है। इससे तरह-तरह के रोग फैलते हैं।

कीड़ों द्वारा फैलने वाले रोग

1. पीला ज्वर (Yellow Fever) 2. मलेरिया (Malaria)
3. फाइलेरिया (Fileria) 4. प्लेग (Plague)
5. काला अजार (Kala Azar) 6. डेंगू (Dengue Fever)

पीला ज्वर

यह एडीज आरजेन्टियस नामक मच्छर के काटने से होता है। इसे पीत ज्वर भी कहते हैं।

संप्रान्ति काल

यह मच्छर 3 दिन में ही रोगी का समस्त खून चूस लेता है और कम से कम 12 दिन बाद दूसरे व्यक्ति को काटता है। 12 दिन में मच्छर का अपना विकासक्रम पूरा हो जाता है।

बचने के उपाय

1. सोते समय मच्छरदानी प्रयोग की जाए।
2. मच्छर को मारने का प्रबन्ध किया जाए।
3. रोग-निरोधक ठीका लगाना चाहिए।

मलेरिया

प्राय: मलेरिया से सभी लोग परिचित हैं। यह संक्रामक रोग है जो कि मादा एनोफेलीज़ (Anopheles) मच्छरों के काटने से होता है। ये मच्छर अपने शरीर में पराश्रयी (Parasite) जीवाणुओं का विकास तथा वृद्धि करते हैं। जब मच्छर व्यक्ति को काट जाते हैं तो पराश्रयी जीवाणु उसके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। ये जीवाणु शरीर के अन्दर जाकर अमैथुनी चक्र (Asexual Cycle) आरम्भ कर देते हैं। इसके द्वारा पराश्रियों की संख्या बढ़ जाती है तथा मलेरिया ज्वर हो जाता है।

पराश्रयी जीवाणु गड्ढों में, गन्दी जलवायु में तथा गन्दे स्थान पर होते हैं और विकास तथा वृद्धि करते हैं।

संप्रान्ति काल

इसका संप्रान्ति काल 7 से 12 दिन होता है।

रोग के लक्षण–सिर दर्द, सर्दी का लगना, उसके बाद तेज ज्वर का आना।

कालाज़ार

यह मलेरिया तथा फाइलेरिया की तरह होता है और बालू मक्खी द्वारा प्रसारित होता है। यह रोग महामारी के रूप में फैलता है। यह रोग कब फैलता है, इसका निश्चय पहले

तो नहीं किया जा सकता परन्तु यह निश्चित है कि यह रोग जिस व्यक्ति को होता है उसका रंग काला पड़ जाता है।

इस रोग के कीटाणु खटमल, जूँ तथा कुत्ते द्वारा फैलते हैं।

लक्षण

1. व्यक्ति को ज्वर आता है।
2. चेहरा काला दिखाई देता है।
3. रोगी में खून की कमी हो जाती है।

बचने के उपाय

1. योग्य डॉक्टर से परामर्श लेना चाहिए।
2. यूरिया-स्टीवेमाइन दवाई लेनी चाहिए या इस दवाई का टीका लगवाना चाहिए।

वायु, सम्पर्क तथा भोजन एवं जल के अलावा भी अनेक माध्यम से रोग शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। इन माध्यमों में त्वचा और संसर्ग प्रमुख हैं। हमारे शरीर की रक्षा करने वाली त्वचा है। यह शरीर का एक वस्त्र है। कुछ कीटाणु ऐसे होते हैं जो त्वचा को काटने से शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। इस माध्यम से फैलने वाले रोगों में टिटनेस, एन्थ्रेक्स, खुजली और दाद का प्रमुख स्थान है।

वहीं सुजाक और आतशक (गर्मी) जैसे भयंकर रोग यौन संबंध एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक फैलते हैं।

कुछ व्यक्ति छूत के रोगों से प्रभावित होते हुए भी स्वस्थ दिखाई देते हैं। इन व्यक्तियों को छूत का रोग होता है परन्तु रोग के लक्षण दिखाई नहीं देते। इसलिए ऐसे व्यक्तियों को **रोग संवाहक** कहते हैं। खूनी पेचिश, मोतीझरा, डिप्थीरिया ऐसे व्यक्तियों के सम्पर्क में आने से फैलते हैं।

डिप्थीरिया

यह भयानक, प्राणघातक तथा तीव्र संक्रामक रोग है। यह रोग 2 से 5 वर्ष के बच्चों पर विशेषतया आक्रमण करता है।

फैलने के ढंग

1. इस रोग के कीटाणु वायु द्वारा, बोलते समय, खाँसते या नाक साफ करते समय हवा में फैल जाते हैं तथा शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।
2. कई बार बच्चों के सम्पर्क में आने वाली वस्तुएँ जैसे पैंसिल आदि मुँह में डालने से यह रोग फैल जाता है।
3. इस रोग के कीटाणु नाक और गले की नली पर अधिक प्रभाव डालते है।

संप्रान्ति काल

यह रोग 2 से 3 दिन तक फैल जाता है।

लक्षण

1. गला सूज जाता है, गलसुए तथा तालू पर भूरी श्वेत झिल्ली पड़ जाती है।
2. गर्दन में स्थित लसिका ग्रन्थियाँ बढ़ जाती हैं।
3. सूजन से व्यक्ति साँस लेने में कठिनाई अनुभव करता है।
4. नाक बहती है, सूज जाती है तथा लाल हो जाती है।
5. कभी-कभी माँसपेशियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं और रोगी की मृत्यु भी हो जाती है।

बचने के उपाय

1. रोग-निरोधक इन्जेक्शन (Anti Diptheria Injection) रोग के 2 या 3 दिन के भीतर ही लग जाने चाहिए।
2. यदि ज्वर तेज हो जाए तो माथे पर बर्फ की पट्टी रखनी चाहिए।
3. हृदय गति साधारण से तेज प्रतीत होने पर बर्फ की पट्टी से ठंडक पहुँचानी चाहिए।
4. रोगी को साधारण तथा हल्का भोजन दिया जाए।

स्कूल द्वारा संक्रामक रोगों की रोकथाम के लिए उठाए जाने वाले कदम

1. रोगी को चिकित्सक का पता देना—यदि अध्यापक को पता चल जाए कि कोई विद्यार्थी संक्रामक रोग से ग्रस्त है जो उसे तत्काल स्कूल से मेडिकल अफसर अथवा डॉक्टर अथवा घर के सदस्यों को पता दे देना चाहिए।

2. पीने के पानी को शुद्ध करना—स्कूल में पीने योग्य पानी को क्लोरीन अथवा लाल दवाई द्वारा शुद्ध किया जाए।

3. वातावरण की सफाई—संक्रामक रोगों की रोकथाम के लिए अथवा इन्हें फैलने के कम से कम अवसर देने के लिए स्कूल का वातावरण और भवन साफ होने चाहिए।

4. खाने-पीने की वस्तुओं की जाँच—अध्यापकों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि विद्यार्थियों को खाने-पीने वाली वस्तुएँ जो दुकानदारों से प्राप्त होती हैं, कहीं संक्रामक रोग फैलानी वाली तो नहीं। मिलावट वाली वस्तुएँ स्कूल में न बेची जाएँ।

5. टीके लगवाना– विद्यार्थियों को संक्रामक रोगों से बचने के लिए ठीक समय पर टीके लगवाना चाहिए।

6. रोगग्रस्त बालक को अलग रखना–यदि कोई विद्यार्थी किसी संक्रामक रोग का शिकार है तो उसे बाकी विद्यार्थियों से अलग रखा जाए।

7. रोगी की वस्तुओं को शुद्ध करना अथवा जलाना–यदि कोई विद्यार्थी किसी संक्रामक रोग का शिकार हो तो उसके कपड़ों अथवा अन्य वस्तुओं को दवाई से शुद्ध किया जाए अथवा जला दिया जाए।

❑❑❑

5

धावक पथ और मैदानी खेल

ट्रैक इवैंट्स

ट्रैक इवैंट्स में 100, 200, 400, 800 मीटर तक की दौड़ें आती हैं।

200 मीटर के ट्रेक की रचना–200 मीटर के ट्रेक की लम्बाई 94 मीटर तथा चौड़ाई 53 मीटर होती है। इसकी रचना का विवरण–

ट्रेक की कुल दूरी	=	200 मीटर
दिशाओं की लम्बाई	=	40 मीटर
दिशाओं द्वारा रोकी गई दूरी	=	40 × 2 =80 मीटर
कोनो में रोकी जाने वाली दूरी	=	120 मीटर
व्यास	=	120 मीटर ÷ 2π
	=	19.09 मीटर
दौड़ने वाली दूरी का व्यास	=	19.09 मीटर
मार्किंग व्यासार्द्ध	=	18.79 मीटर

1.22 मीटर (4 फुट) चौड़ी लेन (वीथि) के लिए स्टैगर्ज

पहली लेन	=	0.00 मीटर
दूसरी लेन	=	3.52 मीटर
तीसरी लेन	=	7.35 मीटर
चौथी लेन	=	11.19 मीटर
पाँचवी लेन	=	15.02 मीटर
छठी लेन	=	18.86 मीटर
सातवीं लेन	=	22.69 मीटर
आठवीं लेन	=	26.52 मीटर

400 मीटर ट्रेक की रचना–

कम से कम माप	=	170.40 × 90.40 मीटर
ट्रेक की कुल दूरी	=	400 मीटर
सीधी लम्बाई	=	80 मीटर
दोनों दिशाओं की दूरी	=	80 × 2 =160 मीटर
वक्रें (Curves) की दूरी	=	240 मीटर
व्यास	=	240 मीटर ÷ 2π
	=	38.18 मीटर
दौड़ने वाली दूरी का व्यासार्द्ध	=	38.18 मीटर
मार्किंग व्यास	=	37.88 मीटर

400 मीटर लेन चौड़ाई 1.22 मीटर (4 फुट) के लिए

पहली लेन	=	0.00 मीटर
दूसरी लेन	=	3.52 मीटर
तीसरी लेन	=	14.71 मीटर
चौथी लेन	=	22.38 मीटर
पाँचवी लेन	=	30.05 मीटर
छठी लेन	=	37.72 मीटर
सातवीं लेन	=	45.39 मीटर
आठवीं लेन	=	53.66 मीटर

साधारण नियम

(1) एथलीट नंगे पाँव या जूते पहनकर खेल में भाग ले सकते हैं। जूते इस प्रकार के नहीं होने चाहिए जो खिलाड़ी की खेल/में सहायता करें।

(2) जो खिलाड़ी अन्य खिलाड़ियों की प्रगति के मार्ग में बाधा प्रस्तुत करता है। उसे अयोग्य ठहराया जा सकता है।

(3) प्रत्येक खिलाड़ी अपने आगे तथा पीछे बड़े स्पष्ट रूप में नम्बर धारण करेगा।

(4) लेन्ज (विधि) में दौड़ी जाने वाली दौड़ों में खिलाड़ी आरम्भ से लेकर अन्त तक अपनी लेन (विधि) में ही रहेगी।

(5) यदि कोई खिलाड़ी जान-बूझकर अपनी लेन से बाहर दौड़ता है तो उसे अयोग्य घोषित किया जाएगा।

(6) अपनी इच्छा से ट्रेक छोड़ने वाला खिलाड़ी दोबारा दौड़ जारी नहीं कर सकता।

(7) ट्रेक तथा फील्ड़ दोनों इवैट्स एक साथ आरम्भ होने की दशा में जज उसे भिन्न ढंग से भाग लेने की आज्ञा दे सकता है।

(8) फील्ड़ इवैंट्स में किसी खिलाड़ी के अनावश्यक देर करने पर उसके विरुद्ध एक दोष अंकित किया जाता है और उसे ट्रायल में भाग नहीं लेने दिया जाएगा। यदि वह पुनः ऐसा करता है तो उसे और ट्रायल में भाग लेने की आज्ञा नहीं दी जाएगी परन्तु उसका पहले का प्रदर्शन मान्य होगा।

(9) फील्ड इवैंट्स में 2 मिनट और पोल वाल्ट में 3 मिनट का समय दिया जाता है।

(10) नशीली वस्तुओं तथा दवाइयों का प्रयोग वर्जित है।

(11) 800 मीटर दौड़ में स्टार्टर अपनी भाषा में कहेगा, On your marks set और जब खिलाड़ी तैयार हो जाए तो पिस्तौल चला दिया जाता है और खिलाड़ी दौड़ पड़ते हैं। 800 मीटर से अधिक दौड़ों के लिए केवल On your marks शब्द कहे जाएँगे और तैयार होने पर पिस्तौल चला दिया जाएगा।

(12) खिलाड़ी को On his marks की स्थिति में अपने सामने वाली भूमि को या आरम्भ रेखा (Start Line) को हाथों या पाँवों द्वारा छूना नहीं चाहिए।

(13) यदि कोई खिलाड़ी पिस्तौल के शॉट से पहले आरम्भ रेखा को पार करता है तो उसका आरम्भ फाउल माना जाएगा।

(14) खिलाड़ियों की स्थिति का निर्णय अन्तिम रेखा पर होता है। जिस खिलाड़ी के शरीर का कोई भी भाग अन्तिम रेखा को पहले स्पर्श कर जाए तो उसे पहले पहुँचा हुआ माना जाता है।

(15) हरडल दौड़ में जो खिलाड़ी अपने हाथों या टाँगों से अन्य खिलाड़ियों के लिए बाधा डालता है अथवा उनकी विधि में स्थित हरडल को पार करता है तो वह अयोग्य माना जाता है।

हरडल दौड़ें

(क) 110 मीटर हरडल–इसमें 10 हरडल होती है। पहली हरडल दौड़ आरम्भ होने वाले स्थान से 13.72 मीटर दूर होती है। बाकी हरडल के मध्य 9.11 मीटर की दूरी होती है। अन्तिम हरडल 14.02 मीटर होती है।

(ख) 200 मीटर हरडल–यह ट्रेक के विंग से शुरु होती है। इसमें 10 हरडल होती है। स्टारिंग रेखा से पहली हरडल की दूरी 18.29 मीटर तथा अन्तिम हरडल की दूरी 17.10 मीटर होती है।

(ग) 400 मीटर हरडल–इसमें ट्रेक 100 मीटर का पूर्ण सर्कल के करव (विंग) और दो सीधे करव दिये जाते हैं। इसमें भी 10 हरडल होते हैं। पहली हरडल स्टारिंग रेखा से 45 मीटर की दूरी पर और बांकी हरडलों की परस्पर दूरी 35 मीटर और अन्तिम हरडल की दूरी 45 मीटर होती है।

स्टीपल चेज

इसमें 300 मीटर की दूरी पार की जाती है। इसमें 28 हरडल जम्प और 7 वाटर जम्प होते हैं। इस दौड़ को शुरू करते समय इस बात को सामने रखा जाता है कि चतुर्थ वाटर जम्प आना चाहिए। जब दौड़ शुरु की जाती है तो 27 मीटर की दूरी बिना जम्प के तय होनी चाहिए। इसमें 390 का ट्रेक लेते हैं। इसमें हरडल 2 फुट 11.867 इंच से कम तथा 3 फुट 0.102 इंच से अधिक ऊँची नहीं होनी चाहिए तथा 13 फुट से कम चौड़ी नहीं होनी चाहिए। प्रत्येक हरडल का भार 80 किलोग्राम से 100 किलोग्राम तक होना चाहिए। स्पीटल चेज का जो गड्ढ़ा बनाया जाता है। वह 12 फुट चौड़ा होना चाहिए। स्टीपल चेज में हम हर एक हरडल को उसके ऊपर पाँव रख कर क्रास कर सकते हैं। गड्ढ़े में भरे हुए पानी की गहराई क्रास बार के साथ 2 फुट 3½ इंच होती है। इसके आगे उसकी गहराई कम होती जाती है और अन्त में भूमि के समान तक पहुँच जाती है।

रिले दौड़

रिले दौड़ों के विषय में निम्नलिखित बातों की जानकारी आवश्यक है–

(1) प्रत्येक समूह में समान आकार तथा समान संख्या में भाग लेने वाले सम्मिलित हो।

(2) समूह में स्थान पर्ची द्वारा निश्चित् किए जाते हैं।

(3) दौड़ का डण्डा खोखला होता है। इसकी लम्बाई एक फुट से अधिक नहीं होती है। इसकी परिधि 4½ इंच से कम तथा इसका भार 1¾ औंस से कम नहीं होता।

(4) 400 गज तक की दौड़ गोल मार्ग पर दौड़ी जाती है। यदि हो सके तो प्रत्येक समूह के लिए पृथक्-पृथक् विधि हो।

(5) पहला धावक (रनर) बाएँ हाथ से डण्डा पकड़कर प्रतीक्षा कर रहे धावक को दाएँ हाथ में देता है। शीघ्र ही वह इसे अपने बाएँ हाथ में पकड़ लेता है। आगे भी इसी प्रकार डण्डा बदला जाता है।

रिले दौड़ की विधि–आरम्भिक रेखा पर अपनी लेन (विधि) के सिरे पर भाग लेने वाले अपने नायक के पीछे खड़े हो जाते हैं। अनुमति मिलने पर प्रत्येक टोली का पहला छात्र अन्तिम रेखा तक जाता है और वापस में अगले खिलाड़ी को स्पर्श करके। अपने समूह के पीछे खड़ा हो जाता है। जिसे वह हाथ लगाता है। वह अन्तिम रेखा तक जाता है और लौट कर अगले खिलाड़ी को स्पर्श करता है। इस प्रकार दौड़ चलती रहती है। जब तक कि सभी खिलाड़ी भाग न ले। जिस समूह का खिलाड़ी वापस आकर आरम्भिक रेखा पर सर्वप्रथम पहुँच जाता है। वह समूह विजेता होता है।

कुदान प्रतियोगिताएँ

कुदान प्रतियोगिताओं में निम्नलिखित प्रतियोगिताएँ आती हैं–

(1) ऊँची कुदान

(2) लम्बी कुदान

(3) तिहरी कुदान

(4) पोल कुदान

प्रतियोगिता के नियम–

(1) छलाँग लगाने वाले को हाथ में भार नहीं होना चाहिए।

(2) टेक ऑफ ग्राउण्ड एक स्तर में हो।

(3) तीन बार असफल रहने वाले को चौथा चाँस नहीं मिलता।

(4) रिकार्ड टूटने की दशा में जज दूरी और ऊँचाई ध्यान से देखें।

(5) प्रतियोगिता से पूर्व बता दिया जाए कि ऊँचाई कैसे बढ़ाई जाती है।

(6) ऊँची कुदान में अपने टेक ऑफ या उसका और जहाँ बार क्रास करनी हो वहाँ निशान या रुमाल का प्रयोग किया जाएगा।

ऊँची कुदान और पोल कुदान

(1) ऊँची कुदान में सदा Take off एक पाँव से लिया जाता है।

(2) यदि शरीर किसी Upright या बार की सहायता या क्रास बार

के नीचे जो रेखा होती है। उसको छू जाए तो यह असफता समझी जाएगी।

(3) टेक ऑफ पोल वाल्ट लकड़ी का बना हुआ हो और ऊपर से समतल हो।

(4) प्रत्येक प्रतियोगी अपने पोल का प्रयोग कर सकता है। लेकिन पहले जजों द्वारा किया जाता है।

(5) छलांग लगाते समय यदि पोल टूट जाए तो प्रतियोगी को और अवसर प्रदान किया जाता है।

(6) खिलाड़ी जब क्रास बार को पार करने जाए परन्तु बाद में पोल क्रास बार को छू जाए तो यह असफलता समझी जाएगी।

(7) प्रतियोगी रनिंग स्थिति में ग्राउण्ड छोड़ जाए तो लोअर हैड या अपर हैड उसको नहीं बदल सकता।

(8) प्रतियोगी यदि नियम अनुसार अवसर लेता है और जो बाक्स लगाकर छोड़ जाए तो यह उसकी असफलता गिनी जाएगी।

नियम–

(1) ऊँची कुदान के लिए प्रत्येक स्तम्भ 12 फुट लम्बा होना चाहिए और दोनों स्तम्भों का अन्तर 13 फुट 2½ इंच होना चाहिए,

(2) निर्णय देने वाले प्रत्येक कुदान से पहले ऊँचाई की घोषणा करते रहेंगे।

(3) प्रतियोगी किसी ऊँची कुदान में भाग ले सकता है। परन्तु यह ऊँचाई कम-से-कम निश्चित ऊँचाई से भिन्न होनी चाहिए। यदि प्रतियोगी तीन बार लगातार असफल रहेगा तो उसको दोबारा भाग लेने की आज्ञा नहीं दी जाएगी।

(4) कुदान से पहले और बाद में जब कोई प्रतियोगी उसे पार कर ले तो ऊँचाई को ठीक से माप लेना चाहिए।

(5) यदि प्रतियोगी 6 फुट की छंलाग लगाता है और सफल नहीं होता तो वह इस उच्चता को छोड़कर 5 फुट 2 इंच की छलांग लगाए। यदि वह दो छलांगें लगाकर असफल हो जाए तो उसे किसी भी छलांग में भाग लेने की अनुमति नहीं दी जाएगी।

ऊँची कुदान
(High Jump)

(1) प्रत्येक स्तम्भ के साथ सहारा लगा होना चाहिए जिसकी चौड़ाई $1\frac{1}{2}$ इंच और लम्बाई $2\frac{3}{8}$ इंच हो।

(2) स्तम्भ (पोल) मजबूत होने चाहिए।

(3) क्रास बार तिरछी लकड़ी या धातु की बनी होनी चाहिए। यह अधिक से अधिक 13 फुट $1\frac{1}{2}$ इंच लम्बी होनी चाहिए। इसका अधिकतम वजन 4 पौंड $6\frac{3}{8}$ औंस होना चाहिए।

(4) सहारे के सिरे और स्तम्भ के बीच 3/8 इंच का अन्तर सदा बना रहेगा।

(5) कुदान एक पाँव पद दबाव लगाकर लगानी चाहिए। यदि कुदान लगाते समय क्रास बार गिर पड़े या प्रतियोगी के शरीर का अंग स्तम्भ को पार करने के बाद पैर लगने से पहले भूमि को लग जाए तो कुदान असफल समझी जाती है।

(6) प्रतियोगिता समाप्त होने से पहले स्तम्भों के स्थान पर परिवर्तन नहीं किया जा सकता परन्तु यदि किसी कारणवश कुदान लगाना असम्भव हो जाए तो इन्हें इधर-उधर हटाया जा सकता है।

लम्बी कुदान और पोल कुदान
(Long Jump and Pole Vault)

लम्बी कुदान

(1) कुदान लकड़ी के पट्टे से लगाई जाती है। जिसकी लम्बाई 4 फुट, चौड़ाई 8 इंच और मोटाई 4 इंच होगी।

(2) कुदान लगाने का गड्डा कम-से-कम 9 फुट चौड़ा होगा।

(3) कुदान लगाने के फट्टे का अन्तर गड्डे से कम-से-कम $3\frac{3}{4}$ फुट हो।

(4) कुदान लगाने वाले स्थान गड्डे के अन्त का आन्तरिक कोने का अन्तर $29\frac{1}{2}$ फुट होना चाहिए।

(5) कुदान का माप कुदान लगाने के फट्टे के अगले भाग से गड्डे के उस स्थान तक जहाँ प्रतियोगी के शरीर के किसी अंग ने स्पर्श किया हो लिया जाएगा।

(6) यदि कोई प्रतियोगी कुदान लगाने के स्थान से आगे बढ़ जाता है, या उसके शरीर का कोई भाग उस स्थान को स्पर्श कर लेता है। तो उसका प्रयास असफल गिना जाएगा।

(7) ऊँचाई वाली रेखा से लेकर अखाड़े के अन्तिम सिरे तक कम-से-कम 9 मीटर की दूरी होगी।

पोल वाल्ट की छलांग

(1) लकड़ी की संदूक की लम्बाई 3½ फुट चौड़ाई 2 फुट परन्तु सिरे फैलावदार होते हुए अगले सिरे पर इसकी चौड़ाई 6 फुट होनी चाहिए। इसकी गहराई 8 फुट होनी चाहिए। इसके निचले फट्टे पर 1½ इंच मोटी लोहे या किसी अन्य धातु की चादर चढ़ी होनी चाहिए।

(2) गड्ढ़े की लम्बाई 13 फुट 1½ इंच तथा चौड़ाई 16½ फुट होनी चाहिए।

(3) स्तम्भ तथा सहारे का आकार वही होता है। जिसका विवरण लम्बी छलांग में दिया गया है।

(4) पोल के सिरे पर किसी धातु की पत्ती लगी हो। उसके ऊपर दो तह वाला कपड़ा लपेटा जा सकता है।

(5) कुदान सन्दूक से लगाई जाएगी।

(6) प्रयास करते समय पोल के टूट जाने पर प्रतियोगी की असफलता नहीं मानी जाएगी बशर्ते कि कुदान नियमानुसार हो।

(7) प्रतियोगी मिनी पोल का प्रयोग कर सकता है।

(8) लैडिंग क्षेत्र का तल टेक ऑफ लाईन के बराबर होना चाहिए।

(9) लैडिंग क्षेत्र की चौड़ाई कम-से-कम 2.75 मीटर होनी चाहिए।

(10) टेक ऑफ से लेकर लैडिंग क्षेत्र के किनारे तक की दूरी 10 मीटर होनी चाहिए।

(11) टेक ऑफ बोर्ड से लैडिंग क्षेत्र के आरम्भ तक की दूरी 2 मीटर होनी चाहिए।

प्रतियोगी असफल माना जाएगा यदि–

(1) क्रास बार गिर जाए।

(2) भूमि छोड़ने के उपरान्त पोल जिस हाथ से पकड़ा जाता है या उसके

दूसरे हाथ की पकड़ के ऊपर ले जाता है या ऊपर वाले हाथ को पोल पर अधिक ऊपर ले जाता है।

(3) अपने शरीर के किसी अंग से भूमि को सन्दूक द्वारा प्रयुक्त भूमि के अतिरिक्त किसी स्थान का स्पर्श करता है।

ट्रिपल जम्प
(Triple Jump)

(1) टेक ऑफ बोर्ड लैडिंग क्षेत्र के आरम्भ तक 11 मीटर हो;

(2) पहला जम्प जिस पर टेक ऑफ लिया जाता है। उसी पैर पर फिर जम्प किया जाता है। लैंड करते समय दूसरे पैर का प्रयोग किया जाता है।

(3) जो खिलाड़ी कुदान करता है। उसकी स्लीपिंग लैग का पैर भूमि से नहीं छूना चाहिए।

क्षेपण प्रतियोगिताएँ (थ्रो इवैंट्स)

थ्रो इवैंट्स में निम्नलिखित चार प्रतियोगिताएँ आती हैं–

(1) भाला क्षेपण (जैवलिन थ्रो)

(2) डिस्कस क्षेपण (डिस्कस थ्रो)

(3) धन क्षेपण (शाट पुट)

(4) गोला क्षेपण (हेयर थ्रो)

प्रतियोगिता के नियम–

(1) जहाँ खिलाड़ियों की संख्या 8 से अधिक हो वहाँ प्रत्येक खिलाड़ी को तीन बारियाँ मिलेगी।

(2) सर्वोत्तम 8 खिलाड़ियों को तीन ट्रायल अधिक दिए जाएँगे। आठवीं स्थिति के लिए टाई वाले खिलाड़ी को भी तीन ट्रायल दिये जाएँगे। जहाँ खिलाड़ियों की संख्या 8 या इससे भी कम हो वहाँ प्रत्येक खिलाड़ी को 6 ट्रायल दिए जाते हैं।

(3) थ्रो प्रारम्भ होने पर यदि प्रतियोगी अपने शरीर के किसी भाग से चक्र या स्टॉप बोर्ड के ऊपरी सिरे को या बाहर की जमीन को स्पर्श करता है, तो यह फाउल होगा।

(4) यदि वृत से थ्रो की जा रही हो तो खिलाड़ी को आरम्भ के समय स्थिर स्थिति में होना चाहिए।

(5) जब तक उसके गोले डिस्कस या अन्य वस्तु ने भूमि का स्पर्श न कर लिया हो। खिलाड़ी वृत से बाहर नहीं निकल सकता।

(6) प्रत्येक थ्रो का माप गिरी हुई वस्तु को निकटतम दूरी से वृत्त के अन्दर से सीधी रेखा द्वारा लिया जाता है।

(7) शाट, हैमर या डिस्कस थ्रो के समय आवश्यक है कि ये वस्तुएँ 45 के सैक्टर में गिरे।

(8) माप के समय किसी अन्य विधि अथवा उँगलियों का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

(1) हैमर थ्रो

हैमर का भार 7.26 क़िलोग्राम 16 पौंड होता है। इसका सिर (Head) लोहे तथा पीतल से मजबूत किसी अन्य धातु का बना होता है। जिससे सीसा या कोयले का पदार्थ भरा होता है। यह अण्डाकार होता है। इसका हैण्डल इसके सिर (Head) के साथ एक छल्ले द्वारा जुड़ा होता है। इसके सिर की परिधि 4 इंच से लेकर 4½ इंच तक होती होती है।

नियम (Rule) –

(1) सभी नियम थ्रो एक वृत्त से फैंकी जाती है। जिसका व्यास 7 फुट (2.135 मीटर) होता है।

(2) यदि प्रतियोगी के हैमर को घुमाने से शुरू का सिर जमीन को छू जाए तो उसे फाउल नहीं समझा जाएगा।

(3) हैमर फैंकते समय हाथों की सुरक्षा के लिए दस्तानें भी प्रयोग किए जा सकते हैं।

(4) यदि हैमर फैंकते समय हवा में टूट जाए तो इसे थ्रो में नहीं गिना जाएगा बशर्ते कि थ्रो नियमानुसार की गई हो।

(2) शाट पुट

(1) शाट लोहे या पीतल का बना होता है।

(2) इसका भार लड़कों के लिए 12 पौंड और लड़कियों के लिए 8 पौंड होता है। जूनियर लड़कों के लिए इसका भार 4 किलोग्राम होता है।

(3) यह 2.135 मीटर (7 फुट) के चक्र से फैंका जाता है।

(4) शाट कन्धे के ऊपर एक हाथ से ही किया जाएगा।

(3) डिस्कस थ्रो

(1) डिस्कस लकड़ी की बनी होती है। लकड़ी के ऊपर डिस्कस की साइड पर लोहे की किनारी लगी होती है।

(2) डिस्कस का भार लड़कों के लिए 1½ किलोग्राम और लड़कियों के लिए एक किलोग्राम होता है।

(3) डिस्कस के वृत्त का व्यास 8 फुट 2½ इंच होता है। जिसका कोण 45° का होता है। उपकरण हमेशा मार्किंग क्षेत्र के अन्दर उतरना चाहिए।

(4) डिस्कस एक हाथ से फेंकी जाएगी।

(4) जैवलिन थ्रो

(1) जैवलिन थ्रो का रनवे कम-से-कम 30 मीटर और अधिक-से-अधिक 36.5 मीटर होता है।

(2) जैवलिन 8 मीटर अर्द्धव्यास के क्षेत्र में फैंकनी चाहिए।

(3) जैवलिन को ग्रिप वाले स्थान से पकड़ो।

(4) ठीक थ्रो के लिए जैवलिन का धातु वाला सिरा (टिप ऑफ दी मैटल) पहले भूमि पर लगना चाहिए।

(5) थ्रो प्रारम्भ होने पर खिलाड़ी को चाप की ओर पीठ नहीं मोड़नी चाहिए जब तक थ्रो का काम पूरा न हो जाए।

(6) ग्राउंड पर अंकित सैक्टर के अन्दर ही इसको गिराना चाहिए।

(7) जैवलिन को कन्धों के ऊपर से फैंकना चाहिए।

(8) यदि जैवलिन वायु में ही टूट जाती है और यदि वह नियम के अनुसार है तो थ्रो करने वाले प्रतियोगी को एक और बारी दी जाएगी। यह ट्रायल में शामिल नहीं किया जाएगा।

(9) लड़कों के लिए जैवलिन (भाला) का भार 600 किलोग्राम तथा इसकी लम्बाई 7 फुट 6½ इंच होती है। लड़कियों के लिए जैवलिन (भाला) का भार 5½ औंस तथा लम्बाई 7 फुट 2½ इंच होती है।

ऐथलैटिक्स प्रतियोगिताओं में अन्य इवैंट्स

लड़के

दौड़–100 मीटर, 200 मीटर, 400 मीटर, 800 मीटर, 1500 मीटर 120 मीटर हरडल (बाधा दौड़)

कुदान–ऊँची, लम्बी, ट्रिपल तथा पोल वाल्ट

क्षेपण (थ्रो)–शाट पुट, डिस्कस, जैवलिन तथा हैमर

रिले दौड़–4 × 100 मीटर

लड़कियाँ

दौड़–100 मीटर, 200 मीटर, 400 मीटर, 800 मीटर
100 मीटर हरडल (बाधा दौड़)

कुदान–ऊँची, लम्बी

क्षेपण (थ्रो)–शाट पुट, डिस्कस, जैवलिन

रिले दौड़–4 × 100 मीटर

❑❑❑

6

बालक का स्वास्थ्य और विद्यालय

हमारे सम्पूर्ण क्रिया-कलापों का आधार हमारा शरीर है। इसलिए शरीर का स्वस्थ रहना बहुत आवश्यक है। अच्छे व संतुलित आहार-विहार से शरीर को स्वस्थ रखा जा सकता है। इसलिए शरीर को प्रकृति का अंग मानकर प्रकृति के अनुकूल जीवन जीना ही व्यक्ति को स्वस्थ परम्पराओं से जोड़ सकता है।

हम जिस प्रदेश में रहते हैं उसी के पर्यावरण के अनुसार भोजन अपनाने से हम अपने शरीर को ठीक प्रकार से स्वस्थ रख सकते हैं, क्योंकि उत्तम आहार स्वास्थ्य की प्रथम और महत्त्वपूर्ण शर्त है। स्वास्थ्य की दृष्टि से जितना महत्त्व भोजन सामग्री का है, उतना ही महत्त्व समय पर भोजन करने का भी है जिससे कि कैलोरी का विभाजन दिन भर में समान रूप से हो सके। कैलोरी नियंत्रण और आहार संयम एक ही बात है। यह स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है।

स्वास्थ्य का महत्त्वपूर्ण सूत्र :

स्वास्थ्य का महत्त्वपूर्ण सूत्र यह है कि शरीर में इकट्ठा हुए विजातीय द्रव्य का निर्गमन समय-समय पर ठीक प्रकार से होता रहे। शरीर में मलों का जितना जमाव होता है, उतने ही उसमें रोग पैदा हो जाते हैं। और इनका जितना सही प्रकार से निर्गमन होता है, शरीर उतना ही आरोग्य रहता है। शरीर से मलों का ठीक प्रकार से निर्गमन न होना स्वास्थ्य में बहुत बड़ी बाधा है। यह भोजन से भी अधिक आवश्यक है। अतः स्वास्थ्य की दृष्टि से मलों का समुचित निस्तारण होना बहुत जरूरी है।

स्वास्थ्य का सम्बन्ध किसी चिकित्सकीय पद्धति से नहीं है, इसका सम्बन्ध तो शारीरिक अवस्था से है। आयुर्विज्ञान में रसायन (हार्मोन्स) का जो महत्त्व है, वही महत्त्व त्रिदोष-वात, पित्त और कफ का है। वात या वायु का प्रकोप होने पर शरीर में चिन्ता, उच्च रक्तचाप, भय आदि की अवस्थाएँ बनती हैं।

इसी प्रकार पित्त का प्रकोप होने पर शरीर में क्रोध, अनिद्रा व एलर्जी आदि की अवस्थाएँ बनती हैं तथा कफ का प्रकोप होने पर शरीर में- अति निद्रा, आसक्ति व अति लोभ आदि की अवस्थाएँ बनती हैं।

इन सारी बातों का प्रभाव हमारे शारीरिक, मानसिक और भावात्मक स्वास्थ्य पर पड़ता है। जिस व्यक्ति के त्रिदोष सम हैं, अग्नि और धातु सम हैं, मल और क्रिया सम है, जिसकी आत्मा, इन्द्रियाँ और मन प्रसन्न व निर्मल है, वह व्यक्ति स्वस्थ है।

इसी प्रकार व्यायाम, विश्राम, पूरी नींद, कम से कम मानसिक तनाव आदि के फार्मूले मिलकर व्यक्ति को स्वस्थ रखते हैं। परन्तु इन सब में से स्वस्थ आहार व्यक्ति के स्वास्थ्य की मूल आवश्यकता माना जाता है।

स्वास्थ्य के चार स्तम्भ

स्वास्थ्य के चार स्तम्भ इस प्रकार हैं-

(1) भोजन,

(2) निद्रा,

(3) ब्रह्मचर्य एवं

(4) व्यायाम

1. भोजन :- शरीर को स्वस्थ रखने के लिए संतुलित भोजन आवश्यक है। जिस भोजन के बाद मन प्रसन्न हो, चेतना आए, भावों में शुद्धि आए, शरीर में क्रियाशीलता आए, तो मान लेना चाहिए कि भोजन (आहार) स्वास्थ्यकारक है, अन्यथा नहीं।

2. निद्रा :- निद्रा मस्तिष्क और शरीर का आवश्यक भोजन है। यह विश्राम का एक श्रेष्ठ रूप है। 8 घंटे की गहरी व संतुलित नींद पर्याप्त होती है। अच्छी नींद जीवन को नई स्फूर्ति और हर परिस्थिति का सहजता से सामना करने की शक्ति देती है तथा दिमाग को शांत रखकर हर कठिनाई का हल निकालना आसान करती है।

3. ब्रह्मचर्य :- ब्रह्मचर्य का पालन करना, वीर्य रक्षा तथा मन, वचन व कर्म से हर समय और हर स्थान पर सम्पूर्ण इन्द्रियों का संयम रखना, शक्ति और पराक्रम का मूल स्रोत है।

4. व्यायाम :- जीवित रहने के लिए शरीर में जितना महत्त्व भोजन का है, उतना ही महत्त्व स्वास्थ्य के लिए व्यायाम का है। इसका वैज्ञानिक आधार यह है कि व्यायाम करते समय रक्त का परिसंचरण तेज गति से होता है तथा रक्त दूषित

नहीं रह पाता। श्वास-प्रश्वास की गति में भी वृद्धि होती है। इसके अलावा पसीने के रूप में शरीर का मैल (गंदगी) भी निकल जाता है व भोजन का पाचन भली प्रकार से होता है।

चरक संहिता में कहा गया है कि- ''शरीर की जो चेष्टा, मन को अभीष्ट होते हुए स्थिरता, दृढ़ता तथा बल बढ़ाने के लिए की जाती है, उस चेष्टा का नाम व्यायाम है। इसे उचित मात्रा में करना चाहिए।''

स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले तत्त्व

स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्त्व इस प्रकार हैं-

(1) शरीर एवं पर्यावरण की स्वच्छता,
(2) संतुलित एवं सात्विक आहार,
(3) गहरी संतुलित नींद,
(4) शारीरिक व्यायाम
(5) मन की शांति,
(6) सकारात्मक विचार,
(7) हँसना,
(8) उपवास एवं
(9) व्यसन।

1. शरीर एवं पर्यावरण की स्वच्छता :- शरीर एवं पर्यावरण की स्वच्छता के लिए प्रतिदिन स्नान करना, शौच क्रिया के बाद हाथों को साबुन से अवश्य धोना, पीने में स्वच्छ पानी का उपयोग करना, रास्ते में बिकने वाली चीजें न खाना, घर में पर्याप्त मात्रा में हवा व प्रकाश का आना, दाँतों की सफाई व कसरत करना, आँखों को स्वच्छ पानी से धोना, अच्छी रोशनी में पढ़ना एवं आँतों में मल न जमने देना आदि बातें आवश्यक हैं अर्थात् व्यक्ति का आहार-विहार ठीक व स्वच्छ हो।

2. संतुलित एवं सात्विक आहार :- संतुलित एवं सात्विक आहार की दृष्टि से आवश्यक है कि आहार (भोजन) शक्ति प्रदान करने वाला हो। वह हरी सब्जियों से युक्त शरीर बनाने वाला हो। शान्त मन से स्नेहपूर्वक बनाया हुआ भोजन मन को शांति देता है तथा स्वास्थ्यवर्धक होता है।

3. गहरी संतुलित नींद :- गहरी व संतुलित निद्रा व्यक्ति को आवश्यक आराम देती है। इससे व्यक्ति आगे का कार्य स्फूर्ति से कर सकता है। इसलिए व्यक्ति को चिन्ताओं को छोड़कर शांति से विश्राम करना चाहिए।

4. शारीरिक व्यायाम :– शारीरिक व्यायाम करना शरीर के स्वास्थ्य को ठीक बनाए रखने के लिए आवश्यक है। यदि व्यक्ति प्रतिदिन आधा घण्टा भी व्यायाम कर ले या प्रतिदिन प्रातःकाल कम से कम तीन किलोमीटर सैर कर ले तो इससे उसका शरीर व मन दोनों स्वस्थ रहते हैं।

5. मन की शान्ति :– तनाव रहित जीवन जीने के लिए शिथिलीकरण, औषधि का काम करता है। योगाभ्यास, ईश्वर-आराधना, ध्यान आदि व्यक्ति को तनावमुक्त रखते हैं। इस प्रकार की क्रिया करने वाला व्यक्ति सच्चे अर्थ में सुख, शान्ति एवं अच्छे स्वास्थ्य को प्राप्त कर सकता है।

6. सकारात्मक विचार :– हमारी मन की स्थिति का आधार हमारे विचार होते हैं। भय, हताशा, ईर्ष्या, क्रोध आदि नकारात्मक विचार मन में तनाव पैदा करते हैं, जबकि शांति, आशा, सच्चा व आत्मिक स्नेह मन में सकारात्मक विचार लाते हैं। इस प्रकार के सकारात्मक विचार स्वास्थ्य की वृद्धि करते हैं।

7. हँसना :– व्यक्ति जीवन में जितना अधिक हँसता है, उतना ही अधिक प्रसन्न, स्वस्थ व सुखी रहता है। प्रसन्न रहना या मुस्कुराना प्रकृति की अनुपम, अनोखी व जीवनोपयोगी औषधि है जो व्यक्ति के स्वास्थ्य को सुदृढ़ व मन को आनंदित करती है।

एक अरेबियन कहावत है–

"He who has health, has hope, and who has hope, has every thing."

8. उपवास :– स्वस्थ रहना शरीर का स्वाभाविक कार्य है। उपवास से उसे सहायता मिलती है। केवल पानी या नीबू-पानी पर आश्रित रहकर पूरे दिन का उपवास करना बहुत लाभदायक है। उपवास को अपनी सुविधा के दिन किया जा सकता है। हिन्दू लोग व्रत और उपवास करते हैं। मुसलमान 'रोजा' रखते हैं। ईसाई 'चालीसा' (लेंट) करते हैं। बौद्ध लोग भर-पेट भोजन नहीं करते तथा जैन मतावलम्बी कठोर लम्बे उपवास करते हैं।

9. व्यसन मुक्ति :– तम्बाकू, शराब आदि के व्यसन व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक हानि पहुँचाते हैं। इनसे शरीर में कई प्रकार की व्याधियाँ हो जाती हैं तथा परिवार में कलह रहती है। शराबी व्यक्ति दुर्घटनाग्रस्त भी हो जाते हैं। अतः व्यक्ति को व्यसनों से मुक्त रहना चाहिए।

विद्यालयों में स्वास्थ्य-शिक्षा कार्यक्रम

स्वस्थ बालकों से ही स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण होता है। बालक का बाल्यकाल में जिस प्रकार का शारीरिक तथा मानसिक विकास होता है, उसी पर उसका भविष्य का व्यक्तित्व निर्भर रहता है।

बालक के स्वास्थ्य का उत्तरदायित्व मुख्य रूप से परिवार और परिवार की स्थिति पर निर्भर करता है किन्तु बाल्यावस्था में वह करीब 6-7 घंटे विद्यालय में भी व्यतीत करता है।

इस प्रकार उसके भविष्य के निर्माण में विद्यालय का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। अत: बालक के स्वास्थ्य-हित में विद्यालय में नियमित रूप से योजनाबद्ध कार्यक्रम किए जाने चाहिए जिससे इन कार्यक्रमों के द्वारा बालक के ज्ञान, कौशल, आचरण व दृष्टिकोण में वांछित परिवर्तन आ सकें और वह भविष्य में एक योग्य एवं स्वस्थ नागरिक के रूप में विकसित हो सके।

विद्यालय के स्वास्थ्य-शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत इस कार्यक्रम के तीन पक्ष होते हैं-

- विद्यालयीय स्वास्थ्य-
- स्वस्थ विद्यालयीय वातावरण-
- स्वास्थ्य-निर्देशन-

विद्यालयीय स्वास्थ्य :- शारीरिक एवं नैतिक रूप से उपयोगी वातावरण हो। विद्यालय ठीक समय आना, वापिस ठीक समय घर जाना। वह किसके साथ आता या जाता है, क्या पढ़ता है, किस प्रकार की क्रिया में भाग लेता है, कैसे बच्चों का साथ अधिक है, इस पर नजर रहे। स्वच्छ आदतें (आँख, कान, दाँत, कान, वस्त्र आदि), उसकी जिज्ञासा जानें। बैठने, लिखने का ढंग ठीक हो ताकि नेत्रों पर जोर न पड़े तथा रीढ़ की हड्डी के घुमाव में विकृति न आए। यदि भारी बस्त है तो वजन इस प्रकार उठाए कि कंधों का आकार न बिगड़े (ढालू कंधे Slopping Shoulders)। जितनी देर विद्यालय में रहे, प्रसन्नचित्त रहे, हर काम को आनन्द से करे। मित्रतापूर्ण व्यवहार करना सीखकर एक अच्छा हितैषी सिद्ध हो।

अध्यापक एवं बालक का सम्बन्ध स्नेहपूर्ण, सहानुभूतिपूर्ण एवं सम्मानजनक हो। बड़ों की एवं गुरु की आज्ञा का पालन करना सीखे। शिक्षकों का स्वास्थ्य, पहनावा, खानपान, ज्ञान एवं आचरण बालकों के लिए आदर्श बनें।

विद्यालय समय, कालांश की संख्या, विश्राम तथा अन्य गतिविधियों जैसे संगीत, चित्रकला, नृत्य एवं बागवानी में रुचि से भाग ले सके।

विद्यालय भवन शोर रहित स्थान पर हो। कक्षा-कक्ष में उचित बैठक व्यवस्था, प्रकाश एवं हवा की व्यवस्था हो। एक बालक के लिए 10 फुट X 10 फुट अर्थात् 100 वर्गफुट स्थान हो ताकि क्रियाएँ सुचारु रूप से हो सकें। सहायक शिक्षण सामग्री, चार्ट्स, खेल के उपकरण सुन्दर आकर्षक एवं प्रेरणादायक हों। शौचालय, पीने का

पानी की उचित व्यवस्था हो, साफ-सफाई हो। विद्यालय में बिताए गए 6-7 घण्टे उसके जीवन पर एक अमिट छाप छोड़ें।

स्वस्थ विद्यालयीय वातावरण :–

- विद्यालय भवन, आस-पास का क्षेत्र, कक्षा-कक्ष एवं खेल मैदानों का वतावरण बालक के मन को प्रभावित करने वाला, सुरक्षित एवं प्रेरणादायक हो।
- शिक्षण वातावरण तनाव तथा भयमुक्त हो। किसी प्रकार का दबाव न हो।
- समय-समय पर परीक्षण तथा इसका अनुवर्ती कार्यक्रम अवश्य हो।
- छोटी-छोटी घटनाओं के उपचार हेतु प्राथमिक चिकित्सा एवं इसकी जानकारी हो।
- विद्यालय के सदस्यों का बैठक कक्ष सुव्यवस्थित हो, उनकी सेवाएँ सुरक्षित एवं वृद्धावस्था में जीविका एवं सुरक्षा का प्रावधान हो।
- **मध्य जलपान योजना** :- बालक कुपोषण से प्रभावित न हों। बालक जो भी घर लाए, उसे सही ढंग से पूरी तरह अध्यापक की देख-रेख में सेवन करे। अल्पाहार व्यवस्था (Tuck Shop) की प्रबन्ध समिति में बालकों का भी योगदान हो। पौष्टिक, ताजे एवं स्वच्छ खाद्य पदार्थ उपलब्ध हों। जलपान गृह का सही लेखा-जोखा रखा जाए। बालकों में शान्ति, स्वच्छता, अनुशासन तथा शिष्टाचार के नियम का संचार किया जावे।

स्वास्थ्य-निर्देशन :–

- बालक केवल पुस्तकीय कीट न हों। उसे शरीर-रचना, क्रिया, व्यक्तिगत स्वास्थ्य, स्वच्छता, संतुलित आहार, रोग से परिचय और उसके उपचार की जानकारी हो।
- पाठ्य-पुस्तक में दिये गये चित्र बालकों में जिज्ञासा उत्पन्न करते हैं, उनकी जिज्ञासा का समाधान किया जावे।
- वाद-विवाद के माध्यम से बहुत-सी जिज्ञासाओं को तृप्त किया जा सकता है।
- किसी स्वस्थ बालक को छात्रों के सामने प्रस्तुत करके, उसके पूर्ण स्वस्थ रहने के कारण बताकर प्रेरित किया जा सकता है।
- बालकों को बताया जा सकता है कि किसी महान् व्यक्ति के जीवन में स्वास्थ्य सम्बन्धी आदतों ने उसके व्यक्तित्व के विकास में क्या योग दिया।

- स्वास्थ्य-निर्देशन एवं खेलों में भाग द्वारा बालकों को स्वस्थ शरीर, स्वस्थ व्यवहार एवं उसके प्रति उचित दृष्टिकोण अपनाने हेतु प्रेरित किया जाए।
- बालक को आयु के अनुसार ऊँचाई एवं वजन का ज्ञान करायें, जिससे वह अपने आप को उसके अनुकूल रखने का प्रयत्न करें।

लम्बाई के अनुसार वजन-तालिका–1

लम्बाई (फुट इंच में)	वजन (किग्रा.)	लम्बाई (फुट इंच में)	वजन (किग्रा.)
4.1	43.55	5.0	44.57
5.1	44.58	5.2	51.64
5.3	52.65	5.4	53.66
5.5	54.67	5.6	57.71
5.7	58.73	5.8	59.74
5.9	60.75	6.0	66.82
6.1	69.86	6.2	71.88
6.3	73.90	6.4	75.93

तालिका-2

25 वर्ष से अधिक महिलाएँ		25 वर्ष से अधिक पुरुष	
ऊँचाई (से.मी.)	वजन (किग्रा.)	ऊँचाई (से.मी.)	वजन (किग्रा.)
147.3	43.5-48.5	157.5	53.5-58.5
149.9	44.5-49.9	160.0	52.9-60.3
152.4	45.8-51.3	162.6	56.2-61.7
154.9	47.2-52.6	165.1	57.6-63.0
157.5	48.5-54.0	167.6	59.9-64.9
160.0	51.3-57.2	170.2	60.8-66.7
165.1	52.6-59.0	172.7	62.6-68.9
167.6	54.4-61.2	175.3	64.4-70.8
170.2	56.2-63.0	177.8	66.2-72.6

172.7	58.1-64.9	180.3	68.0-74.8
175.3	59.9-66.7	182.9	69.9-71.1
177.8	61.7-68.5	185.4	71.7-79.4
180.3	63.5-70.3	188.0	73.5-81.6
182.9	65.3-72.0		

(डॉक्टरों के स्रोत से)

मादक पदार्थ

युवाओं में विभिन्न मादक पदार्थों (ड्रग्स) का प्रचलन दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। अब यह केवल विश्वविद्यालयों तक ही सीमित न रहकर विद्यालयों के छात्र/छात्राओं में अपनी सेंध लगाकर प्रवेश कर गया है। युवा पीढ़ी खोखली होकर पतन एवं विनाश के गर्त में धँसती जा रही है।

हाल ही के एक सर्वेक्षण में यह तथ्य उजागर हुआ है कि लड़कों की तुलना में मादक पदार्थों के सेवन करने में लड़कियाँ कहीं आगे हैं। किशोरियाँ और युवतियाँ इस उम्र में आसानी से पथभ्रष्ट हो सकती हैं। इस लत की पकड़ में हर धर्म, जाति, आयु का हर तबका आ गया है। बच्चों और किशोरों में इनका प्रयोग तेजी से बढ़ रहा है।

मादक पदार्थ क्या हैं? :– यह ऐसे रासायनिक पदार्थ हैं, जिनका उपयोग दवा या प्राकृतिक रूप में शरीर की वर्तमान कार्यप्रणाली या स्थिति में शारीरिक, मानसिक एवं जैव रासायनिक परिवर्तन लाने के लिए किया जाता है या थोड़े शब्दों में कहें तो, वे रसायन, जो किसी व्यक्ति की शारीरिक या मानसिक कार्यप्रणाली में परिवर्तन कर दें, मादक पदार्थ कहे जा सकते हैं।

सही उपयोग :– जब मादक पदार्थों का उपयोग किसी बीमारी के इलाज, उसकी रोकथाम या स्वास्थ्य में सुधार लाने के लिए किया जाता है, तो इसे मादक पदार्थों का 'सही उपयोग' कहा जाता है।

दुरुपयोग :– जब मादक पदार्थों का इस्तेमाल दवा के तौर पर न करके किसी अन्य रूप में किया जाए और इसकी मात्रा, शक्ति, आवृत्तियाँ और इसे लेने का तरीका ऐसा हो कि इससे लेने वाले की शारीरिक या मानसिक कार्यप्रणाली को नुकसान पहुँचे, तो इसे मादक पदार्थों का दुरुपयोग कहा जाता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ.) की परिभाषा के अनुसार "अधिक मात्रा में लगातार या अनियमित रूप से अथवा चिकित्सक के परामर्श के बिना नशीले पदार्थों को लेना मादक पदार्थों का दुरुपयोग कहा जा सकता है।" इसी प्रकार गैर

कानूनी मादक पदार्थों (जैसे– ब्राउन शुगर, गाँजा, स्मेक आदि) को लेने का मतलब भी मादक पदार्थों का दुरुपयोग है और ऐसा शुरू से ही होता आया है। इन नशीले पदार्थों का आसानी से उपलब्ध होना भी इस के दुरुपयोग में बढ़ोत्तरी का एक प्रमुख कारण है।

प्रमुख मादक पदार्थ :– (इनका दुरुपयोग भी किया जाता है।)

उत्तेजक (स्टीम्युलेन्ट) :– वे पदार्थ जो मस्तिष्क (केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र) की सक्रियता बढ़ा देते हैं, जैसे– बैंजेड्रिन, डेक्सेड्रिन, मैथेड्रिन, कोकीन, निकोटिन आदि।

निश्चेतक (सिडिटेव) और दर्दनिवारक नारकोटिक/एनालजैसिक :– अफीम से बने या अफीम जैसा असर पैदा करने वाले संश्लिष्ट पदार्थ। जैसे– मेंड्रेक्स, डोरिडेन जैसी नींद लाने वाली दवाएँ, मार्फीन, कोकीन, हेरोइन, ब्राउन शुगर, मेथाजेन, पेथीडीन, मेप्राडीन आदि।

उपशामक (डिप्रेसेंट) :– वे पदार्थ जो मस्तिष्क की सक्रियता को कम कर देते हैं। जैसे– एल्कोहल, बारबीट्युरेट (जैसे सिकोनाल, नेमब्यूटाल, गोर्डनाल) और वेलियम, लिब्रियम जैसे वेदना नाशक।

भाँग से बने पदार्थ :– भाँग, गाँजा, चरस, एल.एस.डी. (लाइसर्जिक एसिड डाई-इथाइल-एमाइड), पी.सी.पी. (फैन्सीक्लिडीन, मेस्कालीन, सिलोसिबीन) आदि।

मतिभ्रम पैदा करने वाले पदार्थ :– वे मादक पदार्थ जो हमारे देखने, सुनने और महसूस करने की क्षमता पर असर डालते हैं।

मादक पदार्थों का इस्तेमाल क्यों किया जाता है?

प्रयोगात्मक एवं जिज्ञासावश :– मित्रों द्वारा नशे के आनन्द को बढ़ा-चढ़ा कर बताना, संगति, स्वाद देखने के लिए, सम्पन्न परिवार के बच्चों में नशा शान का सूचक समझना, नशा बेचने वालों के सम्पर्क में आने से जिज्ञासावश शुरू किए इस सेवन से कालान्तर में किशोर/किशोरियाँ नशे के रोगी बन जाते हैं।

बोरियत, खालीपन, उदासी एवं हताशा :– कुछ लोग नीरसता, निराशा और थकान से छुटकारा पाने, के लिए जीवन से हताश, असफल प्रेम सम्बन्ध, परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने, नौकरी के साक्षात्कार में बार-बार असफल होने पर, जुए में हारने व अन्य हीन भावना के वशीभूत होकर या सुख की अनुभूति प्राप्त करने के लिए नशे की लत को अपना लेते हैं।

भावनात्मक सहारे की कमी :– प्रतिस्पर्धा का जीवन, अपनों से या विश्वासपात्रों से स्नेह और हमदर्दी न मिलना, माँ-बाप की उपेक्षा, अकेलापन महसूस करना आदि। ऐसा भी देखा गया है कि छात्रावास में रहने वाले छात्र/छात्राएँ इस प्रवृत्ति की ओर

तेजी से अग्रसर हो जाते हैं।

पारिवारिक दबाव :– संयुक्त परिवारों के बिखरने बिखर रहे हैं और एकल परिवार के जन्म के साथ किशोरों एवं युवाओं पर दबाव। कई बार अभिभावक अपने बच्चे से अत्यधिक एवं अनावश्यक आशाएँ रखने लगते हैं, जिससे उसका सामान्य विकास प्रभावित होने लगता है और वह विद्रोही हो जाता है। इसी विद्रोह का परिणाम उसे नशे का रोगी बना देता है।

आनुवांशिक कारण :– आनुवांशिकी के क्षेत्र में हुए व्यापक अनुसंधान बताते हैं कि कुछ ऐसे जीन्स होते हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी नशे को जिन्दा रखते हैं। यह लक्षण प्रायः दबे रहते हैं और व्यक्ति जब नशे के नजदीक पहुँचता है, तो जल्द ही उसे ग्रहण कर लेता है।

सामाजिक परिवेश :– किशोरों/किशोरियों/छात्रों में नशीले पदार्थों के बढ़ते प्रचलन के लिए हमारा सामाजिक परिवेश भी उत्तरदायी है। विभिन्न अवसरों (जन्मदिन, शादी) पर नशा करना शिष्टाचार एवं आधुनिकता का परिचायक बन गया है। जो नशा नहीं करते, उन्हें समाज के लोग हेय दृष्टि से देखते हैं।

फ़िल्में :– इन पदार्थों के सेवन पर फिल्मों का भी गहरा प्रभाव पड़ा है। फिल्मों में नशे को इस प्रकार प्रदर्शित किया जाता है मानो उस से सारे गम दूर हो रहे हों।

नशे की लत पड़ने के लक्षण :–

- घर से छोटी एवं बहुमूल्य वस्तुओं का गुम होना अथवा चोरी चले जाना।
- कुछ अजीब-सी चीजें जैसे सिगरेट का खाली पैकिट, खाली माचिस, मोमबत्ती आदि का बच्चे के कमरे अथवा शौचालय में मिलना।
- बच्चे के व्यवहार में परिवर्तन, जैसे–स्कूल में अरुचि अथवा अनुपस्थिति, खेलकूद में अरुचि, अधिक गुस्सा या झगड़ालू स्वभाव, झूठ बोलना, उधार लेना, यकायक बच्चे के जेब खर्च में बढ़ोतरी, भूख/वजन में कमी।
- अनजान लड़कों का घर पर आना और आँख बचाकर खिसक जाना।
- लड़खड़ाकर चलना, अलसाया रहना, बोलने में हकलाहट, बेढंगे तरीके से उठना-बैठना, कँपकँपी होना।
- सुबह के समय बच्चे की आँखों, व नाक से पानी आना, ठीक से दिखाई न देना।
- कपड़ों में खून के धब्बे और शरीर में कई/ताजे इंजेक्शन के निशान मिलना।
- चक्कर और उल्टी आना तथा शरीर में दर्द रहना।

- नींद न आना, गहरी चिन्ता, निराशा और बहुत ज्यादा पसीना आना।
- याददाश्त, एकाग्रता और आत्म-संयम में कमी होना।

हानियाँ या दुष्प्रभाव :–

अल्पकालीन दुष्प्रभाव :– नशीला पदार्थ लेने के कुछ मिनटों बाद ही उसके दुष्प्रभाव नजर आने लगते हैं। सुख की सी अनुभूति होने लगती है, नींद भी आने लगती है।

दीर्घकालीन दुष्प्रभाव :– नशीले पदार्थों को अधिक मात्रा में लगातार लेते रहने से अनेक शारीरिक और मानसिक बीमारियाँ हो जाती हैं। व्यक्ति इन पदार्थों का गुलाम हो जाता है।

- व्यक्ति का नैतिक पतन, पैसे की बर्बादी, बच्चों पर बुरा प्रभाव, शरीर और स्वास्थ्य का नष्ट होना, परिवार को आर्थिक कठिनाई में डालना।
- असमय ही शक्ति क्षीण हो जाती है। अधिक नशे से मृत्यु भी हो जाती है।
- नशा अचानक बंद करने से दवा के लिए अलग-अलग तरह के लक्षण उत्पन्न होते हैं। बैचेनी के साथ हल्की कँपकँपी से लेकर शरीर में ऐंठन, घबराहट और दौरा पड़ना आदि हो जाते हैं।

धूम्रपान :– जिन्दगी को धुएँ में न उड़ाएँ, ''जिन्दगी मौत की अमानत है, इसे सम्भाल कर रखिए।'' धूम्रपान में निकोटिन और कार्बन-मोनो ऑक्साइड की वजह से हृदय, फेफड़े तथा प्रजनन क्षमता बुरी तरह प्रभावित होते हैं। अनुसंधानकर्त्ता बताते हैं कि धूम्रपान से व्यक्ति की सेक्स लाइफ भी समाप्त हो सकती है।

पान मसाला :– बच्चे, महिलाओं एवं प्रौढ़ों में इसका चलन काफी हो गया है। पान मसालों में सुपारी, कत्था, चूना, इलायची और दूसरे सुगन्धित पिसे हुए पदार्थ शामिल हैं। इन पदार्थों में से सुपारी और चूना मुँह के कैंसर को जन्म देते हैं। ये कोशिका के डी.एन.ए. को नुकसान पहुँचाते हैं तथा जेनेटोटाक्सिक पदार्थ हैं। यह लगभग सिद्ध हो गया है कि तम्बाकू, सुपारी और पान मसाला, कैंसर के मृत्युदूत को लाकर मौत को दावत देने वाले हैं।

मदिरापान :– मदिरा, व्हिस्की या रम का सेवन नुकसानदायक है और लीवर के रोग, अग्नाश्य (पैंक्रियाज़) की बीमारी, दिल का दौरा, अवसाद, स्नायुरोग, फोबिया, शंका रोग, शीघ्र स्खलन, आमाशय, मस्तिष्क एवं तंत्रिका तंत्र की हानि तथा पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं को बुलावा देना है।

नशामुक्ति :– यदि बच्चा व्यसन के चंगुल में आ गया है तो उसे तत्काल इलाज की जरूरत है। अभिभावक बच्चे से संवादहीनता को समाप्त कर एक स्वस्थ एवं विश्वसनीय संवाद कायम करें ताकि बच्चा यह जान ले कि नशा एक रोग है और इसका निदान जरूरी है। बच्चे को विश्वास में लेना अत्यन्त आवश्यक है, कोसें नहीं, सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाएँ। ऐसा करने से रोग का उपचार अपेक्षाकृत आसान हो जाता है। इसमें औषधियों, मनोचिकित्सक एवं परिवारजनों का सहयोग चिकित्सा को सफल बनाता है।

स्थिति :–

- सुखासन या किसी भी अन्य आसन का चुनाव करें, जिसमें आप लम्बे समय तक सुखपूर्वक बैठ सकें।
- मेरुदण्ड व गर्दन सीधी रहे।
- शरीर को तनावमुक्त करें।
- आँखें कोमलता से बन्द करें।

विधि :–

- कायोत्सर्ग का अभ्यास कर शरीर को शिथिल करें।
- चित्त को अप्रमाद केन्द्र (कान का भाग) पर केन्द्रित करें। वहाँ पर हरे रंग का ध्यान करें।
- अनुभव करें कि आपके चारों ओर हरे रंग के परमाणु फैले हुए हैं। पन्ने की भाँति चमकता हुआ रंग।
- चित्त को कान के भीतरी, मध्य एवं बाहरी भाग पर केन्द्रित करें एवं हरे रंग का ध्यान रखें।
- दायें एवं बायें कान पर बारी-बारी से चित्त को केन्द्रित कर हरे रंग का ध्यान करें। प्रत्येक कान पर कम से कम 10 मिनट तक ध्यान करें।
- दो-तीन दीर्घ श्वास के साथ प्रयोग सम्पन्न करें।

लाभ :–

- व्यसन (नशा) की आदत छूट जाती है।
- आलस्य दूर होता है।
- जागरूकता बढ़ती है।
- स्मरणशक्ति एवं बुद्धि का विकास होता है।

7

विद्यालयों में विभिन्न प्रकार के व्यायाम

विद्यालयों में बालकों के लिए व्यायाम की व्यवस्था करना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। विद्यालयों में प्रचलित व्यायाम तीन प्रकार के होते हैं–

(1) बालकों के शारीरिक विकास के लिए व्यायाम,

(2) विशेष अवसरों पर प्रदर्शन के लिए कराए जाने वाले व्यायाम एवं

(3) किसी भी खेल को खेलने के लिए प्रयुक्त होने वाले अंगों के व्यायाम।

विद्यालयों में प्रचलित व्यायाम एक प्रकार की ऐसी प्रक्रिया है जिससे शरीर के विभिन्न अंगों का सर्वांगीण विकास किया जाता है। विभिन्न प्रकार के उपकरणों द्वारा या बिना उपकरणों के शारीरिक स्वास्थ्य, शारीरिक सौष्ठव तथा प्रत्येक अंग का सही और संतुलित विकास किया जाता है।

उत्तम स्वास्थ्य प्रत्येक व्यक्ति की अमूल्य सम्पदा माना गया है। इस स्वास्थ्य रूपी सम्पदा को सुरक्षित रखना और उसके विकास में सहयोग देना विद्यालयों में प्रचलित व्यायामों का मुख्य उद्देश्य है। प्रचलित व्यायाम की आवश्यकता को देखते हुए प्रत्येक विद्यालय में इसको महत्त्वपूर्ण स्थान मिलना आवश्यक है, ताकि बालकों का तन व मन पूर्ण रूप से स्वस्थ रहे, साथ ही चित्त की एकाग्रता भी बनी रहे। इस व्यायाम की प्रक्रिया को अपनाने की दृष्टि से इसके समर्थन में सैद्धांतिक पक्ष इस प्रकार हैं–

1. आंतरिक अवयवों की दृष्टि से

इस प्रकार के व्यायाम करने से हमारे शरीर के आंतरिक अवयवों (जिनमें विशेष कर रक्त संचार, श्वसनक्रिया एवं नाड़ी तंत्र हैं) की कार्यक्षमता बनी रहती है।

2. माँसपेशियों व जोड़ों की दृष्टि से

इस प्रकार के व्यायामों को करने से माँसपेशियों की कार्यक्षमता तथा शरीर के विभिन्न जोड़ों की गति सुचारु रूप से चलती रहती है।

3. शारीरिक आकृति की दृष्टि से

इन व्यायामों के करने से शरीर की आकृति आकर्षक एवं प्रभावशाली बनती है।

बहुत से व्यायाम ऐसे हैं जो सुन्दर, सरल, सशक्त व सस्ते हैं। ये व्यायाम हमारे शारीरिक स्वास्थ्य, शारीरिक गति, शरीर में लचीलापन तथा शारीरिक नियंत्रण के लिए बहुत उपयोगी हैं। इस प्रकार के व्यायाम विद्यालयों में बालकों को प्रार्थना स्थल पर सामूहिक रूप से करवाए जा सकते हैं। यदि इस प्रकार के व्यायामों का प्रदर्शन के लिए अभ्यास करना है, जैसे– 15 अगस्त, 26 जनवरी व खेल दिवस आदि के लिए, तो कक्षा स्तर पर छात्र-छात्राओं की विभिन्न टोलियाँ बनाकर शाला समय के बाद अतिरिक्त समय में एक ताल व लय में सीटी, ढोल, धुन अथवा बैंड आदि के साथ प्रभावशाली ढंग से करवाए जा सकते हैं।

विशेष शारीरिक कार्यक्रम

व्यक्ति चाहे किसी भी जाति, धर्म व समाज का हो, उसका शारीरिक रूप से स्वस्थ होना नितान्त आवश्यक है। हमने विज्ञान व तकनीकी क्षेत्र में चाहे कितनी ही उन्नति कर ली हो, लेकिन इन सबके मूल में शरीर को स्वस्थ रखने के लिए अच्छे शारीरिक स्वास्थ्य का होना नितान्त आवश्यक है। शारीरिक स्वास्थ्य के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए हमारे देश की सरकार ने 1982 में एशियाई खेलों के समय 'भारतीयम्' के नाम से स्वास्थ्य कार्यक्रम का श्री गणेश किया था।

भारतीयम्

'भारतीयम्' का अर्थ है– 'यह भारत है।' यह भारतवासियों के लिए सामूहिक खेलकूद एवं शारीरिक स्वास्थ्य की क्रियाओं से सम्बन्धित कार्यक्रम है, जिससे कि हमारे देश के भावी नागरिक इसमें अधिक से अधिक भाग लेकर शारीरिक कुशलता प्राप्त कर सकें।

यह कार्यक्रम प्रतिस्पर्द्धात्मक न होकर समुदाय के लिए आनंददायक, लय युक्त, आकर्षक, लुभाने वाला तथा रंगीन है व एकता और आत्मीयता का प्रतीक है।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत जो क्रियाएँ हैं, वे इस प्रकार हैं–

(1) मुक्त हस्त व्यायाम,

(2) कला प्रदर्शन,

(3) विभिन्न करतब,

(4) बाँस ड्रिल,

(5) लेजिम,

(6) लययुक्त व्यायाम,

(7) आकृतियाँ,

(8) मल्ल खम्भ,

(9) अन्य व्यायाम एवं

(10) योग।

झंडा ड्रिल

झंडियों का आकार–1 फुट X 8 इंच जो 1¼ फुट डण्डे पर लगी हो।

स्थिति

दोनों झंडियाँ हाथों में पकड़ें, कोहनी सामने खड़ी मुड़ी हुई तथा भुजा शरीर से लगी हुई और सावधान स्थिति में हों।

व्यायाम एक

(1) बाँयीं भुजा सामने फैलाना और बायाँ पैर आगे लाना।

(2) बाँयीं भुजा इसी स्थिति से बाँयीं दिशा में लाना और बायाँ पैर भी बाँयीं ओर लाना।

(3) फिर नं. 1 को दोहराना।

(4) अन्त में पुनः शुरू की स्थिति में आना। फिर यही कार्य दायीं भुजा और दायीं टाँग के द्वारा करना। गिनती आठ, दो बार करना।

व्यायाम दो

(1) दोनों भुजा सामने फैलाना।

(2) दोनों भुजा कन्धों की सीध में ले जाना एवं पंजे के ऊपर खड़ा होना

(3) दोनों भुजा सामने तथा एड़ी नीचे लाना।

(4) शुरू की स्थिति में आना। कुल कार्य 16 की गिनती में करेंगे।

व्यायाम तीन

(1) बाँयीं भुजा सामने फैलाना।

(2) बाँयीं टाँग को घुटने से मोड़कर ऊपर उठाना तथा बांयी भुजा सिर के ऊपर ले जाना।

(3) फिर टाँग नीचे रखना और बाँयी भुजा सामने लाना।

(4) फिर शुरू की स्थिति में आना। यही कार्य दाँयी भुजा और दाँयी टाँग से भी करना।

व्यायाम चार

(1) दोनों भुजा सामने फैलाना।

(2) दोनों भुजा सिर के ऊपर करके पंजे के ऊपर खड़े होना।

(3) दोनों भुजा सामने लाकर एड़ी नीचे लाना।

(4) फिर शुरू की स्थिति में आना। गिनती चार से कुल 16 बार करना।

व्यायाम पाँच

(1) दोनों भुजा क्रॉस करके सिर के ऊपर लाना, चेहरा बीच में हो तथा दांयी टाँग बांयी और क्रॉस करके रखना।

(2) फिर शुरू की स्थिति में आना।

(3) फिर बांयी भुजा अन्दर और दांयी बाहर क्रॉस करके सिर के ऊपर लाना तथा बांयी टाँग दांयी ओर क्रॉस करके रखना।

(4) फिर शुरू की स्थिति में आना। कुल 16 बार गिनती से करना।

व्यायाम छह

(1) बाँयी भुजा बाँयी दिशा की ओर करके दाँयी भुजा मोड़कर झण्डी को बायें कन्धे के सामने लाना तथा बांया पैर बांयी ओर खोलते हुए उसी को मुड़कर देखना।

(2) फिर शुरू की स्थिति में आना।

(3) फिर दांयी भुजा दांयी दिशा की ओर करके बांयी भुजा मोड़कर झण्डी दायें कन्धे के सामने लाया। दायाँ पैर दायीं ओर खोलना और उसी ओर मुड़ते देखना।

(4) शुरू की स्थिति में आना। कुल 16 की गिनती से करना।

व्यायाम सात

(1) एक साथ कूद कर दोनों पैर खोलते हुए दोनों भुजाएँ दोनों दिशाओं में फैलाना।

(2) बांयी भुजा बायें पैर के ऊपर तथा बायीं ओर लंज करते हुए मोड़ना और दांयी भुजा नीचे दांयी ओर बांयी भुजा की सीध में फैलाना।

(3) फिर नं. 1 की स्थिति में आना।

(4) दांयी भुजा दायें पैर के ऊपर तथा बांयी और लंज करते हुए मोड़ना और बांयी भुजा नीचे बांयी ओर दांयी भुजा की सीध में फैलाना। बांयी व दांयी ओर कुल 16 बार करना।

व्यायाम आठ

(1) कूदकर बायें मुड़ना एवं पैर खोलना और दोनों भुजा सिर के ऊपर 'V' बनाते हुए झण्डे उठाते हुए खोलना।

(2) भुजा सामने तथा पैर कूदकर मिलाना।

(3) फिर दायीं ओर कूद कर पैर खोलते हुए मुड़ना और सिर के ऊपर 'V' बनाते हुए वही क्रिया करना।

(4) नं. 2 की स्थिति में आना। बांयी व दांयी ओर 16 की गिनती में पूरा करेंगे।

हूप ड्रिल

गोल व्यास-1½ फुट से 2½ फुट तक।

स्थिति

सावधानीपूर्वक दोनों भुजाओं से जाँघ के सामने हूप पकड़ना।

व्यायाम एक

(1) हूप चेहरे के सामने ऊपर लाना।

(2) बांयी ओर बांयी भुजा फैलाते हुए हूप पकड़ना। बांयी टाँग बांयी ओर, दांयी भुजा कोहनी से मुड़ी हुई। सीने के सामने लाना व हथेली नीचे की ओर हों।

(3) नं. 1 की स्थिति में वापस आना।

(4) दांयी ओर दांयी भुजा फैलाते हुए हूप पकड़ना। दायीं टाँग दायीं ओर, बांयी भुजा कोहनी से मुड़ी हुई सीने के सामने लाना, हथेली नीचे की ओर हों। बांयी व दांयी ओर कुल 16 की गिनती से करना।

व्यायाम दो

(1) हूप चेहरे के सामने ऊपर लाना।

(2) दोनों हाथों से हूप को पकड़कर तथा बांया पैर बांयी ओर मोड़ते हुए रखना।

(3) नं. 1 की स्थिति में आना।

(4) दोनों हाथों से हूप को पकड़कर दांया पैर दांयी ओर मोड़ते हुए रखना। बायें व दायें कुल 16 की गिनती से करना।

व्यायाम तीन

(1) भुजा सामने फैलाते हुए हूप सामने लाना।

(2) ऐड़ी उठाते हुए हूप सिर के ऊपर ले जाना।

(3) ऐड़ी नीचे लाना एवं हूप सामने लाना।

(4) यही क्रम कुल 16 की गिनती से करना।

व्यायाम चार

(1) हूप सीधे सिर से ऊपर ले जाना।

(2) हूप गले में डालते हुए घुटने मोड़ना।

(3) हूप सिर के ऊपर लाते हुए घुटने सीधे करना।

(4) यही क्रम कुल 16 की गिनती से करना।

व्यायाम पाँच

(1) कूद कर पैर खोलना एवं हूप सामने लाना।

(2) कमर सामने नीचे झुकाते हुए हूप नीचे लाना।

(3) कमर सीधे करते हुए हूप सामने लाना।

(4) कूदकर शुरू की स्थिति में आना। यही क्रम कुल 16 की गिनती से करना।

व्यायाम छह

(1) कूद कर हूप सिर के ऊपर ले लाना और पैर खोलना।

(2) बांयी ओर कमर मोड़ते हुए बांयी टाँग लंज करना।

(3) दांयी ओर कमर मोड़ते हुए दांयी टाँग लंज करना।

(4) कूद कर पैर मिलाना बांयी व दांयी ओर कुल 16 की गिनती से करना।

लेजिम

स्थिति

सावधान! लेजिम को दायें कूल्हे की हड्डी के सामने लाना एवं बड़ा डण्डा ऊपर बायें हाथ में तथा छोटी गुल्ली दायें हाथ में लम्बाकार बड़े डण्डे से लगाना।

व्यायाम नं. 1 (आठ आवाज)

(1) दायें से झोला देते हुए तथा नीचे झुकते हुये बायें पैर की तली के सामने छोटी गुल्ली नीचे बजाना; निगाहें सामने रहें।

(2) कमर सीधी करते हुए बायें कूल्हे की हड्डी के सामने लेजिम लाना, फिर गुल्ली और डण्डा इकट्ठा करना।

(3) नं. 1 का कार्य दांयी ओर करना।

(4) दांयी ओर कूल्हे की हड्डी के सामने शुरू की स्थिति में आना।
(5) सिर के ऊपर लेजिम लाना और घुमाते हुए छोटी गुल्ली सामने खोलना।
(6) सिर के ऊपर ही लेजिम बजाना।
(7) नीचे दांयी ओर नं. 3 की स्थिति लाना।
(8) शुरू की स्थिति में आना तथा कुल 16 की गिनती से करना।

व्यायाम नं. 2

(1) दांयी टाँग घुमाते हुए पीछे खोलना तथा कमर नीचे झुकाते हुए दांयी टाँग के पास लेजिम बजाना तथा गुल्ली नीचे हो।
(2) पैर नहीं हिलेंगे। कमर सीधी करते हुए छोटी गुल्ली डंडे से लगाना।
(3) फिर बांयी टाँग के पास कमर झुकाते हुए लेजिम बजाना।
(4) कमर सीधी करते हुए लेजिम मिलाना।
(5) दांयी टाँग घुमाते हुए सामने रखना और लेजिम सिर के ऊपर खोलना तथा गुल्ली सामने हो।
(6) इसी स्थिति से लेजिम सिर के ऊपर बजाना।
(7) दांयी टाँग बांयी टाँग से मिलाना तथा लेजिम नीचे कमर झुकाते बजाना।
(8) शुरू की स्थिति में आना। कुल 16 की गिनती से करना।

व्यायाम नं. 3 (सलामी)

(1) बांया पैर आगे रखना और लेजिम खोलते और मिलाते हुए कमर में ऊपर-नीचे लचका देते हुए दो, तीन, चार की गिनती पूरी करना।
(2) दांयी टाँग मोड़ कर बांयी टाँग के सामने रखना और लेजिम चेहरे के सामने खोलना लेकिन डंडा सीधा खड़ा हो और गुल्ली दांयी ओर कमर से ऊपर हो। इसी स्थिति में लेजिम बजाते और खोलते तथा शरीर को ऊपर से नीचे झोला देते हुए पूरा करना। फिर यही काम बांयी टाँग आगे लाते हुए ऊपर की स्थिति को दोहराना अर्थात् 16 की गिनती सामने। फिर 16 की गिनती बायें, फिर 16 की गिनती से दायें मुड़ते हुए शुरू के बिन्दु पर आना। नं. 1 वाली क्रिया अर्थात् 8 आवाज 16 की गिनती से करते हुए कार्य पूर्ण करना।

अन्य प्रचलित महत्त्वपूर्ण व्यायाम

स्थिति : सावधान

व्यायाम प्रथम

(1) बांयी भुजा सामने, दांयी भुजा दांयी ओर ले जाना।
(2) भुजाएँ कोहनी से मुड़ी हों तथा हाथों की हथेली नीचे करते हुए अँगूठा सीने की तरफ लाते हुए आमने-सामने मिलाना।

(3) दांयी भुजा सामने और बांयी भुजा बांयी ओर उठाना।

(4) नं. 2 की स्थिति में आना।

(5) दांयी भुजा सामने, बांयी भुजा बांयी ओर ले जाना।

(6) फिर नं. 2 की स्थिति में आना।

(7) बांयी एवं दांयी दिशा में भुजाओं को फैलाना।

(8) फिर सावधान स्थिति में आना। कुल 16 की गिनती में करना।

व्यायाम द्वितीय

(1) भुजा सामने उठाना तथा हथेली आमने-सामने हो।

(2) भुजा को हथेली की दिशा में नीचे लाना और घुटने मोड़ना।

(3) भुजा सामने और टाँगें सीधे करना।

(4) शुरू की स्थिति में आना।

(5) भुजा सामने लाना।

(6) भुजा सिर के ऊपर, हथेली आमने-सामने तथा घुटने मोड़ना।

(7) शुरू की स्थिति में आना। 1-16 की गिनती करना।

व्यायाम तृतीय

(1) बायें मुड़ते हुए बांयी टाँग ऊपर मोड़ना तथा बांयी भुजा बायीं ओर लाना। हथेली ऊपर करना और दायीं भुजा पीछे लेना व दांयी ओर हथेली नीचे करते हुए उठाना और बायीं ओर देखना।

(2) शुरू की स्थिति में आना।

(3) यही कार्य दांयी ओर टाँग मोड़ते हुए और दोनों भुजा फैलाकर करना।

(4) शुरू की स्थिति में आना। 1-16 की गिनती करना।

व्यायाम चतुर्थ

(1) व्यायाम नं. 3 की 16 गिनती खत्म होते ही कूद कर पैर खोलना और दोनों हाथ कमर पर रखना।

(2) दोनों भुजाओं को सामने लाना एवं नीचे कमर झुकाते हुए बायें पैर के पंजे को छूना।

(3) शुरू की स्थिति में आना।

(4) दोनों भुजाओं से, कमर झुकाते हुए दायें पैर के पंजे को छूना।

(5) शुरू की स्थिति में आना। 1 से 16 तक गिनती करना।

व्यायाम पंचम

(1) व्यायाम नं. 4 की स्थिति से दायें हाथ से बायें पैर के पंजे को छूना और बांयी भुजा ऊपर उठाना तथा हथेली अन्दर की ओर हो और निगाहें हथेली की तरफ।

(2) शुरू की स्थिति में आना।

(3) नं. 1 का कार्य विपरीत हाथ-पैर को छूते हुए करना।

(4) शुरू की स्थिति में आना। 1-16 की गिनती करना।

व्यायाम षष्टम

(1) उपर्युक्त स्थिति में बांयी ओर लंज करते हुए बांयी भुजा नीचे करते हुए निगाहें सामने रखना।

(2) शुरू की स्थिति में आना।

(3) नं. 1 का कार्य विपरीत हाथ-पैर को छूते हुए करना।

(4) शुरू की स्थिति में आना। 1-16 गिनती करना।

व्यायाम सप्तम

(1) सावधान स्थिति से बांयी टाँग बांयी ओर ऊपर उठाना; बांयी भुजा इसके समानान्तर नीचे की ओर करना व दांयी भुजा दांयी ओर ऊपर की ओर बांयी भुजा की सीध में लाना।

(2) शुरू की स्थिति में आना।

(3) नं. 1 का कार्य विपरीत टाँग तथा भुजा द्वारा करना।

(4) शुरू की स्थिति में आना तथा 1-16 की गिनती करना।

व्यायाम अष्टम

(1) दोनों भुजा सामने लेते हुए पंजे पर खड़े होना।

(2) घुटने मोड़कर पंजों पर नीचे बैठना और भुजा कोहनी से मोड़कर कन्धे की ओर लाना।

(3) नं. 1 की स्थिति में आना।

स्फूर्तिदायक व्यायाम

हाथ ऊपर की ओर हों व पैर मिले हुए हों। (सभी व्यायाम कूदकर होंगे।)

व्यायाम प्रथम

(1) कूदकर बांयी टाँग बांयी ओर फैलाना, दांयी टाँग अपनी जगह रखना। घुटना सामने मुड़ा हुआ हो।

(2) कूदकर सावधान।

(3) कूदकर दांयी टाँग दांयी ओर फैलाना और बांयी टाँग अपनी जगह रखना और घुटना मुड़ा हुआ हो।

(4) कूदकर शुरू की स्थिति में आना। 1–16 गिनती करना।

व्यायाम द्वितीय

(1) कूदकर दांयी टाँग को बांयी के सामने से बांयी ओर पंजे पर टिकाना।

(2) कूदकर, सावधान।

(3) बांयी टाँग को दांयी के सामने से दांयी ओर पंजे पर टिकाना।

(4) दोनों ओर कुल 1–16 की गिनती करना।

व्यायाम तृतीय

(1) कूदकर बांयी टाँग आगे और दांयी पीछे रखना तथा कूदकर मिलाना।

(2) कूदकर दांयी टाँग आगे और बांयी पीछे रखना तथा कूदकर मिलाना।

(3) दोनों ओर कुल 1–16 की गिनती तक करना।

व्यायाम चतुर्थ

(1) कूदकर बांयी टाँग आगे, दांयी अपनी जगह और दोनों पैरों पर ऊपर उछलते हुए दो-तीन की गिनती पूरी करना।

(2) कूदते हुए दोनों पैर मिलाना।

(3) दांयी टाँग आगे करना व बांयी अपनी जगह रखना एवं ऊपर उठाना, 6–7 गिनती तक दोनों पैरों पर उछलते हुए करना और 8 पर दोनों पैर कूदकर मिलाना, 16 की गिनती करना।

व्यायाम पंचम

(1) कूदकर पैर खोलना और दोनों भुजा दोनों दिशा में फैलाना।

(2) कूदकर दोनों पैर मिलाना। भुजा सिर के ऊपर लाना।

(3) कूदकर नं. 1 की स्थिति में आना।

(4) यही क्रम 1–16 की गिनती तक करना।

व्यायाम षष्टम

(1) कूदकर बांयी टाँग लंज करना; दांयी पीछे होना और साथ ही बांयी भुजा ऊपर उठाना दांयी पीछे फैलाना।

(2) शुरू की सामान्य स्थिति में कूदकर आना।

(3) विपरीत भुजा और टाँग कूदकर रखना।

(4) शुरू की स्थिति में आना व व्यायाम 1-16 की गिनती तक करना।

व्यायाम सप्तम

(1) कूदकर दोनों भुजा ऊपर लेना बांयी टाँग आगे लंज करना (घुटना मोड़ना) और दांयी पीछे फैलाना।

(2) शुरू की स्थिति में कूदकर आना।

(3) दोनों भुजा ऊपर करना कूदकर, दांयी टाँग आगे लंज करना तथा बांयी पीछे फैलाना।

(4) शुरू की स्थिति में आना व 16 की गिनती करना।

व्यायाम अष्टम

(1) कूदकर दांयी टाँग बांयी के सामने से बांयी ओर रखना तथा बायें हाथ पर दांया हाथ रखते हुए ताली बजाना।

(2) कूदकर पैर मिलाना तथा दोनों हाथों को कोहनी पर मोड़कर चुटकी बजाना।

(3) कूदकर बांयीं टाँग दायीं के सामने से दायीं ओर रखना, दायें हाथ पर बायें हाथ से ताली बजाना।

(4) नं. 2 वाली क्रिया करना। कुल 1-16 की गिनती से करना।

मेपोल

एक 10-12 फुट लम्बा बाँस जिसके एक सिरे पर बैयरिंग फिट किया हुआ लकड़ी में लगेगा। इस लकड़ी के गोल घेरे के साथ 10 या 12 लम्बे रंग-बिरंगे रिबन बँधे होंगे; लम्बाई 12 से 15 फुट, प्रत्येक बालक एक-एक रिबन को पकड़ेगा। एक सा घेरा बनाते हुए चारों ओर घूमते हुए व्यायाम करेंगे।

लेजिम

प्रत्येक बच्चे के पास एक घंटी या देशी लेजिम होगी, क्रियाएँ गीत-संगीत के साथ करनी है।

बाँस ड्रिल

बाँस की लम्बाई 10 से 12 फुट, व्यास 2 से 3 इन्च; दोनों सिरों पर घुँघरु बँधे 5 या 6 बालकों में दो बाँस 1 बालक बीच में और सभी बालक एक सी ऊँचाई के हों तथा बाँस दोनों तरफ पकड़े हुए।

लाठी व्यायाम

एक पतली गोल लाठी कम से कम तीन फुट लम्बी हो। दोनों तरफ घुँघरु बँधें हों, प्रत्येक बालक के पास एक-एक लाठी होगी एवं ताल व लय के साथ व्यायाम करेंगे।

स्कार्फ या रुमाल ड्रिल

रंग-बिरंगे या एक ही रंग के ऐसे कपड़े जो हवा में लहराए जा सकें। जिनकी माप कम से कम 2X2 फुट हो। प्रत्येक बालक दोनों हाथों में एक-एक रूमाल पकड़ेगा तथा ताल व लय के साथ व्यायाम करेगा।

फूल सहित व्यायाम

रबड़ के बने गुलाब के फूल कम से कम एक फुट लम्बे लोहे के तार पर लगे हों। प्रत्येक बालक के पास दो-दो फूल एक-एक हाथ में रहेंगे। 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' गीत के साथ ताल और लय से व्यायाम करेंगे।

जिम्नास्टिक्स, करतब एवं पिरामिड्स

जिम्नास्टिक्स

जिम्नास्टिक्स वे कसरते हैं जो अखाड़ों अथवा मुलायम फर्श पर की जाती है। जिम्नास्टिक की सफलता शरीर के लचीलेपन पर आधारित है। इसमें शरीर के समस्त अंगों का व्यायाम होता है। जिम्नास्टिक को समस्त खेलों की जननी कहा जाता है। इससे बालकों व युवकों की माँसपेशियों में चुस्ती, दृढ़ता व स्फूर्ति आती है तथा शरीर में लचीलापन व अच्छा संतुलन बन जाता है। इसके द्वारा अच्छे स्वास्थ्य की दृष्टि से शरीर के प्रत्येक अंग का व्यायाम होने से शरीर गतिशील, पुष्ट तथा स्फूर्तिवान बन जाता है।

शारीरिक शिक्षा के विभिन्न कार्यक्रमों में जिम्नास्टिक की क्रियाएँ प्रदर्शन की दृष्टि से आकर्षक होती हैं। इनका प्रदर्शन विभिन्न उपकरणों द्वारा विभिन्न क्रियाओं से किया जाता है। जिम्नास्टिक के उपकरण पुरुष व महिला वर्ग के लिए अलग-अलग होते हैं। कुछ उपकरण स्थायी रूप से गड़े होते हैं। जिम्नास्टिक प्राय: जिम्नेजियम में किया जाता है।

जिम्नास्टिक का इतिहास

आधुनिक ओलम्पिक खेलों में जिम्नास्टिक को उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में शामिल किया गया। खेल के रूप में जिम्नास्टिक का उपयोग चीन में रोगोपचार, ग्रीस में शारीरिक विकास तथा हमारे देश भारत में श्वसन संस्थान के विकास के लिए किया जाता रहा है। भारत में इस खेल की प्रारम्भिक पहचान योग साधना,

नटविद्या तथा मिलिट्री ट्रेनिंग के रूप में रही है। इसका आधुनिक रूप 20वीं शताब्दी में सामने आया है। 1951 में 'भारतीय जिम्नास्टिक संघ' की स्थापना हुई तथा कलात्मक जिम्नास्टिक की प्रतियोगिताएँ होने लगीं।

1976 के ओलम्पिक खेलों में रुमानिया की 14 वर्षीय नदिया ने मोनविच में पहली बार 'बीम' में शत-प्रतिशत अंक प्राप्त किए थे। भारत के गोपाल जी, खुशीराम, श्यामलाल, विन्द्र कौर, मंजुला व कल्पना देवनाथ के नाम इस क्षेत्र में विशेष उल्लेखनीय हैं। राजस्थान की माध्यमिक शिक्षा के खेल पंचांग में भी इस खेल को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

जिम्नास्टिक का महत्त्व

इसके महत्त्व को इन बिन्दुओं के अनुसार स्पष्ट किया जा सकता है-

(1) जिम्नास्टिक के खेल को सीखने वाला बालक अन्य दूसरे खेलों को अच्छी तरह से सीख सकता है तथा दक्ष भी हो सकता है।

(2) जिम्नास्टिक सारे खेलों की 'माँ' (Mother) है।

(3) महान् शिक्षाशास्त्री व दार्शनिक 'प्लेटो' के अनुसार जिम्नास्टिक व संगीत के बिना शिक्षा का महत्त्व नहीं है।

(4) जिम्नास्टिक क्रियाओं को करने से बुद्धिमान व कार्यशील व्यक्ति तैयार किये जा सकते हैं। ("Man of wisdom and man of action can be produced by doing gymnastics activities.")

(5) इस खेल से बालकों में विविध शारीरिक गामक कौशल (Motor activities) जैसे गति (Speed), शक्ति (Strength), लचीलापन (flexibility) व तत्काल दिशा बदलना आदि का विकास होता है।

जिम्नास्टिक खेल आयोजन

इस खेल में एक टीम में छह खिलाड़ी भाग लेते हैं। टीम प्रतियोगिता में 5 श्रेष्ठ जिम्नास्ट के अंकों को जोड़कर टीम प्रतियोगिता का परिणाम घोषित किया जाता है।

प्रतियोगिता दो प्रकार की होती है-

1. दलीय प्रतियोगिता (Team Competition) :- इस प्रतियोगिता में सभी उपकरणों पर ऐच्छिक व अनिवार्य व्यायाम होते हैं। प्रत्येक बालक के लिए 120 व बालिका के लिए 80 अंक प्रति उपकरण होते हैं। इसमें व्यक्तिगत प्रतियोगी भी भाग ले सकते हैं।

2. व्यक्तिगत समग्र प्रतियोगिता (Individual allround final) :– इस प्रतियोगिता में सभी उपकरणों पर ऐच्छिक व्यायाम किए जाते हैं। प्रतियोगिता में श्रेष्ठ 36 जिम्नास्ट, जो दलीय प्रतियोगिता के आधार पर चुने जाते हैं, भाग लेते हैं।

लिंगानुसार विभाजन

पुरुष (छात्र वर्ग) :– फर्श के व्यायाम, वाल्टिंग हॉर्स, पैरेलल बार, हॉरीजेन्टल बार, रोमन रिंग एवं पामल्स हॉर्स आदि 6 उपकरण।

महिला (छात्र वर्ग) :– फर्श के व्यायाम, वाल्टिंग हॉर्स, बैलेन्सिंग बीम एवं अन ईवन बार कुल चार उपकरण।

इन उपकरणों में वाल्टिंग हॉर्स एकमात्र ऐसा उपकरण है जिस पर जिम्नास्ट एक क्रिया का व्यायाम करता है एवं अन्य सभी उपकरणों पर कई क्रियाओं का तालमेल किया जाता है।

प्रतियोगिता के वर्ग

सभी उपकरणों पर प्रतियोगिता के समय दो वर्गों में प्रदर्शन किया जाता है :

1. अनिवार्य :– प्रतियोगिताओं की आयोजन समिति इस वर्ग की क्रियाओं के तालमेल का निर्धारण करती है, जो सामान्यतः हर 4 वर्ष पश्चात् परिवर्तित होते रहते हैं। विद्यालयों में यह 'स्कूल गेम्स फैडरेशन ऑफ इण्डिया' के निर्देशानुसार अपनाया हुआ है।

2. ऐच्छिक :– इस वर्ग में क्रियाओं के तालमेल का निर्धारण जिम्नास्ट स्वयं करता है। इसके लिए फैडरेशन द्वारा व्यायाम की कठिनता के स्तर के अनुसार व्यायाम समूहों के वर्ग निश्चित किये जाते हैं। वर्तमान में इनके 5 वर्ग-ए, बी, सी, डी हैं। इनमें से जिम्नास्ट अपने प्रदर्शन हेतु व्यायाम क्रियाओं का कॉम्बीनेशन तय करता है।

खेल के नियम आदि 'जिम्नास्टिक फैडरेशन ऑफ इण्डिया' द्वारा नियंत्रित होते हैं। शिक्षा विभाग ने अपनी सीमान्तर्गत नियमों को स्वीकार कर रखा है। उसके अनुसार ही आयोजन होते हैं। समय-समय पर नियमों में होने वाले परिवर्तन के लिए इन संस्थाओं के निर्देशों का पालन करना अनिवार्य है।

जिम्नास्टिक्स के प्रकार :

विभिन्न तरह की प्रक्रियाओं एवं उनकी प्रस्तुति तकनीक के आधार पर मुख्यतया जिम्नास्टिक्स तीन भागों में विभाजित है :

1. आधारभूत जिम्नास्टिक्स (Basic Gymnastics) :– इनको भी दो भागों में विभाजित किया गया है :

1. बच्चों के लिए (for children)
2. स्वास्थ्य व स्वच्छता के लिए (for hygenic)

2. सहायक जिम्नास्टिक्स **(Sportive gymnastics)** :– इनको 5 भागों में विभाजित किया गया है :

1. कलात्मक (artistic)
2. लयात्मक (rhythamic)
3. करतब (acrobatics)
4. ट्रम्पोलिन (trampoline)
5. एरोबिक्स (acrobics)

विशिष्ट जिम्नास्टिक्स **(Auxillary gymnastics)** :– इनको तीन भागों में विभाजित किया गया है :

1 कामगारों के लिए (hor workers)
2. विशिष्ट सहायक (Sportive auxillary)
3. उपचारात्मक (Remedial)

जिम्नास्टिक्स खेल में होने वाले व्यायाम

जिम्नास्टिक्स खेल में फर्श के ऊपर करने वाले व्यायाम एवं उपकरणों पर किये जाने वाले अनेक व्यायाम होते हैं।

उपकरणों के साथ व्यायाम :

कुछ व्यायाम ऐसे हैं, जो उपकरण की सहायता से ही किये जा सकते हैं, जिनका विस्तृत उल्लेख आगे किया जा रहा है।

पैरेलल बार (केवल बालकों के लिए) :– जिम्नास्टिक में पैरेलल बार पर बड़े मनोरंजक तथा आकर्षक करतब दिखाये जाते हैं और कई प्रकार के व्यायाम किये जाते हैं। इसमें एक स्टैण्ड होता है जिसमें दो समानान्तर लकड़ी या लोहे के गोल डंडे लगे होते हैं।

इसमें डिप्स, पुश, सिट अप्स, लैग लिट्स, सिट इन हैंड सोल्डर स्टैण्ड, ट्रक, स्पेच, फ्रंट हैड स्पोर्ट, स्विंग टू शोल्डर, बेन्ट हिप, अपर आर्म, स्पोर्ट, स्विंग इन हैंड स्पोर्ट आदि कई व्यायाम किये जाते हैं। इनमें से कुछ व्यायाम इस प्रकार हैं :

(क) पैरेलल बार के एक सिरे के पास खड़े हो जाएँ, हाथों से दोनों छड़ों को कोहनियाँ मोड़ कर पकड़ें। पैरों को जमीन पर सीधे रखें। फिर कमर से झटका देते हुए कोहनियों को सीधा करें। अब आपका शरीर

दोनों छड़ों के बीच झूलता रहे। फ़िर एक हाथ पर वजन डालते हुए दूसरा हाथ उठा कर उसी छड़ पर थोड़ा आगे रखें। इसी प्रकार दूसरे हाथ को उसी छड़ पर आगे बढ़ायें। इस प्रकार दूसरे छोर तक बढ़ते चले जाएँ। अन्त में स्विंग कर (झूलकर) गद्दे पर कूद जाएँ। यह पैरेलल बार पर चलना कहलाता है।

(ख) पहले बताये गये 'क' व्यायाम के अनुसार दोनों हाथों पर झूलें तथा स्विंग के साथ दोनों पैरों को अपने हाथों के आगे दोनों छड़ों पर फैला दें। घुटने एवं पंजे खिंचे हुए रहने चाहिये। इसके पश्चात् हाथों को आगे स्थापित करें। यही क्रिया दोहराते हुए दूसरे छोर तक पहुँचें। अन्त में टाँगों का स्विंग कराते हुए गद्दे पर कूद जाएँ (लैंड करें)। यह पैरेलल बार पर चढ़ना कहलाता है।

(ग) पैरेलेल बार की छड़ों के बीच से थोड़ा पीछे पकड़ कर हाथों के बल (दोनों हाथों पर वजन डालते हुए) झूल जाएँ। टाँगों से स्विंग लेकर दोनों पैर फैला कर, हाथों को आगे दोनों छड़ों पर स्थापित करें। फिर धीरे-धीरे सिर को आगे छड़ों के बीच झुकाएँ तथा कंधों को छड़ों पर टिकाएँ। सिर को अन्दर की तरफ करते जाएँ, कमर को आगे करते हुए रोल करें। टाँगों को पुनः फैलाकर हाथों को आगे लावें। यही क्रिया दूसरी बार करें। अन्त में स्विंग के साथ उछलकर गद्दे पर कूदें। इसे सामने का रोल (Roll) कहते हैं।

कुछ अन्य क्रियाएँ होती हैं :

1. स्विंग ऑन दी बार
2. माउन्ट ऑन दी वार
3. हैंड स्टैंड ऑन दी बार
4. फॉरवर्ड रोल ऑन दी बार
5. डिप्स ऑन दी बार
6. डिस माउन्ट

उपरोक्त समस्त क्रियाएँ शिक्षक के निर्देशन में करें।

हॉरीजेन्टल बार

(केवल बालिकाओं के लिए)

हॉरीजेन्टल बार 3 मीटर लम्बी लोहे की एक छड़ होती है। यह दो स्टेण्डों पर जमीन से 2.50 मीटर ऊँचाई पर लगा दी जाती है। इस उपकरण पर विभिन्न

व्यायामों को संयुक्त कर प्रदर्शित किया जाता है। चित्र में दर्शाये अनुसार हॉरीजेन्टल बार उपकरण पर शनैः शनैः अभ्यास करना सीखा जाता है। इसमें सर्वप्रथम दोनों हाथों से बार को उछल कर पकड़ा जाता है। फिर आगे-पीछे झूलकर संतुलन बनाया जाता है तथा आगे से पीछे, पीछे से आगे आया जाता है और झूलते हुए बार के ठीक ऊपर भी पहुँचा जाता है।

बार पर उछल कर चढ़कर दण्ड की पकड़, पुल अप, पाँव को हवा में लटकाना, लैग लिफ्स, नितम्ब को बार के नीचे से ऊपर उठाना, जम्प टू फ्रण्ट स्पोर्ट, बार-बार गोल मुद्रा में लटकाना आदि अनेक व्यायाम किये जाते हैं।

वॉल्टिंग हॉर्स

(बालक व बालिकाओं दोनों वर्गों के लिए)

वॉल्टिंग हॉर्स का दूसरा नाम वाल्टिंग बॉक्स है। जिम्नास्टिक के व्यायाम वॉल्टिंग बाऊक्स (हॉर्स) पर भी किये जाते हैं। वॉल्टिंग हॉर्स एक उपकरण होता है। यह दो सहारों पर टिका रहता है। यह काफी मोटाई वाला होता है। इसके दूसरी ओर रबर का गद्दा (मैटिंग) लगा रहता है। इसकी लम्बाई 1.63 मीटर, चौड़ाई 85 मि.मीटर तथा ऊँचाई 1.35 मीटर (छात्राओं हेतु ऊँचाई 1.20 मीटर) होती है।

वॉल्टिंग क्रिया करने के लिए आवश्यक है कि दौड़ लगानी चाहिए। दौड़ते हुए टेक ऑफ बोर्ड (स्प्रिंग बोर्ड) पर आकर रुकना चाहिए तथा यहाँ से उछाल भरनी चाहिए। वॉल्टिंग बॉक्स (हॉर्स) के ऊपर हाथों का सहारा लेकर दूसरी तरफ जम्प ले लेना चाहिए। शुरू से साधारण जम्प एवं हल्की उछाल का अभ्यास करना चाहिए।

इस प्रकार वॉल्टिंग हॉर्स पर स्पिलट वॉल्ट, थ्रो वॉल्ट, स्ट्रेडल वॉल्ट आदि क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं। क्रिया करने के लिए शिक्षक का निर्देशन आवश्यक होता है।

जब हमें अच्छा अभ्यास हो जाए तो हम वॉल्टिंग बॉक्स के सहारे कई तरह की मुद्राएँ बना सकते हैं। कई तरह से उछाल ले सकते हैं, जैसे :

1. किसी भी दिशा में गोते लगाना
2. पक्षियों की तरह उड़ान भरना
3. बॉक्स पर उछाल लेकर हाथों के सहारे पूरे शरीर को गोलाकार घुमाना
4. हाथों के सहारे पैर को विभिन्न कोणों में रखने का अभ्यास करना इत्यादि।

वॉल्टिंग हॉर्स की क्रियाओं को चार भागों में बाँटा जा सकता है :

(अ) दौड़ना (ब) कूदने (जम्प) की पूर्व तैयारी (स) कूदना (द) अन्त

पोमेल हॉर्स

(केवल बालक वर्ग हेतु)

बार पर लगी दोनों रिंगों को उछल कर पकड़ा जाता है, फिर शरीर का भार हाथों के बल ऊपर धीरे-धीरे उठाते हुए हाथों को सीधा करना पड़ता है, ताकि शरीर का भार सीधे हाथों पर पड़ जाता है। इसे ही रिंग पकड़ कर खड़ा होना कहते हैं। फिर रिंग को पकड़े हुए आगे पीछे झूलते हुए दोनों पैरों को दोनों हाथों के बीच से निकाला जाता है। यह क्रिया कभी पीछे से आगे की ओर, कभी आगे से पीछे की ओर की जाती है। इस व्यायाम में दोनों हाथों के बाहर से क्रमशः एक-एक पाँव भी निकाला जाता है।

इस पर की जाने वाली प्रमुख क्रियाएँ निम्नानुसार हैं :

1. माउण्ट ऑन दी पोमेल हॉर्स
2. अण्डर कट (एक ठाँग से घूमना)
3. दोनों टाँगों से घूमना
4. सीजर्स बैकवार्ड एवं फॉरवर्ड

इन क्रियाओं को करने के लिए पोमेल हॉर्स पर स्थित दोनों रिंगों की पकड़, हाथ बदलने, झूलने, टाँगों सहित शरीर को उछालने के साथ एक टाँग से घूमना, दोनों टाँगों से घूमना व सीजर्स क्रिया की जाए। ये क्रियाएँ शिक्षक के निर्देशन में की जावें।

बैलेंसिंग बीम

(बालिका वर्ग हेतु)

बीम किसी लकड़ी या धातु का बना होता है। यह वर्गाकार इमारती लकड़ी होती है। इसके दोनों सिरों को लोहे की फ्रेमों का सहारा मिला हुआ होता है। इस वर्गाकार इमारती लकड़ी की लम्बाई 5 मीटर अर्थात् 16 फीट 3 इंच होती है। यह वर्गाकार लकड़ी अपनी चौड़ाई में 10 वर्ग से.मी. या 4 वर्ग इंच होती है। इसको सहारा देने वाले लोहे के फ्रेम पृथ्वी से 3 फीट 11 इंच अर्थात् 120 से.मी. की ऊँचाई पर सीधे रहते हैं।

बीम के व्यायाम केवल छात्राओं के लिए ही होते हैं। देखने में तो बीम का व्यायाम बड़ा सरल लगता है, परन्तु वास्तव में यह उतना सरल नहीं होता, क्योंकि इसमें शारीरिक संतुलन के साथ ही मानसिक एकाग्रता की आवश्यकता होती है। बीम पर किये जाने वाले सभी व्यायाम व्यायामी के शरीर के संतुलन का प्रदर्शन

करते हैं। शरीर के संतुलन के अतिरिक्त अच्छी मुद्रा, समन्वय और सौन्दर्य का भी प्रदर्शन किया जा सकता है।

बीम के व्यायामों के लिए पहले बीम पर चढ़ने या बीम से उतरने का अभ्यास आवश्यक होता है।

1. बीम पर चढ़ना :– बीम पर चढ़ने के लिए दौड़ लगानी होती है और उछलकर बीम पर दोनों हाथ टिका कर दोनों टाँगों को चौड़ा करके चढ़ा जाता है। कुछ छात्राएँ टाँगों को उकडू बनाकर भी चढ़ती हैं।

2. बीम पर से उतरना :– बीम पर से उछलना होता है और उछलने के लिए उछलने-कूदने का अभ्यास होना आवश्यक है।

3. बीम पर आगे-पीछे चलना :– बीम पर चलने के लिए निम्नलिखित व्यायाम-क्रियाएँ की जाती हैं :

(अ) बीम पर चढ़कर एक सिरे पर सीधे तनकर खड़ा होना,

(ब) दोनों हाथ दोनों ओर (पार्श्व में) कंधों की ऊँचाई तक जमीन के समानान्तर फैलाना।

(स) हथेलियाँ जमीन की ओर रखना।

(द) पैर पूरे टिकाते हुए धीरे-धीरे व जल्दी-जल्दी दूसरे सिरे तक चलना। यह क्रिया पंजों के बल चलकर भी की जा सकती है।

इस प्रकार बीम के दूसरे सिरे पर पहुँचा जाता है, परन्तु इसी क्रिया को फिर से करने के लिए या तो बीम से उतरना पड़ता है या बीम पर ही घूमना पड़ता है। बीम पर से बार-बार उतरने में व्यायामी की निरंतरता में बाधा उत्पन्न होती है। अत: बीम पर घूमने या बीम पर पीछे चलने का अभ्यास आवश्यक हो जाता है।

4. बीम पर घूमना :– बीम पर चलते-चलते कभी बीच से या कभी दूसरे सिरे से घूमना पड़ता है। जब एक सिरे से चलते हुए बीम के दूसरे सिरे पर पहुँच जाते हैं, तब अपने पैरों के पंजों के बल पर बायीं ओर से घूमते हुए पीछे की ओर मुड़ा जाता है। इसमें संतुलन बनाये रखने का विशेष ध्यान रखा जाता है और संतुलन के लिए हाथों को पार्श्व (साइड) में कंधों के बराबर खोल कर रखना पड़ता है।

5. बीम पर लुढ़कना :– बीम पर लुढ़कने के लिए बीम पर सीधा खड़ा होना पड़ता है। फिर झुककर बीम को दोनों ओर से हथेलियों से पकड़ें तथा बायाँ घुटना मोड़कर आगे की ओर बीम पर रखें। दाहिना घुटना पीछे सीधा रहे। अब गर्दन को अन्दर मोड़ते हुए सिर के पिछले भाग को बीम पर टिकाएँ तथा कंधों और पीठ व कमर के बल पर बीम पर पलट जाएँ। दोनों पैर बीम के दोनों ओर लटका दें ताकि

टाँगें सवारी करने की मुद्रा में झूलती रहें। इस क्रिया में अर्थात् बीम पर लुढ़कने में बीम को मजबूती से पकड़े रखना चाहिए, अन्यथा नीचे गिरने की आशंका रहती है।

6. बीम पर पुल बनाना (पैरों का संतुलन) :– बीम पर पुल बनाने के लिए निम्नलिखित क्रियाएँ करनी पड़ती हैं :

(अ) दोनों पैर मिलाकर बीम के एक स्थान पर खड़े होना। यह स्थान बीम के ऐसे स्थान पर हो कि व्यायाम करने वाले की पीठ की ओर लगभग 2 मीटर बीम का भाग बचा रहे।

(ब) हाथों को ऊपर ले जाते हुए कमर को पीछे की ओर झुकाना।

(स) कमर पीछे की ओर झुकाते हुए हाथों को हथेली के बल पर बीम पर टिकाना। इस प्रकार की बीम पर शरीर की स्थिति पुल के समान हो जाती है।

रोमन रिंग

(केवल छात्र वर्ग हेतु)

इसमें उछलकर रिंगों को दोनों हाथों से पकड़ा जाता है, और फिर झूला जाता है। झूलने में सारे शरीर को एक झटका सा देना पड़ता है। जिससे झूलने की गति में तेजी आती है। इसमें दोनों हाथों के बीच से पैर निकाल कर उल्टा झुका जाता है और बाद में दोनों हाथों पर शरीर का संतुलन बनाकर पैरों से समकोण बनाया जाता है।

अन ईवन बार

(केवल छात्रा वर्ग हेतु)

इसमें उपकरण पर विभिन्न व्यायामों को संयुक्त कर प्रदर्शित किया जाता है। इस पर कुछ व्यायाम निम्नानुसार किये जा सकते हैं :

1. पकड़ करना एवं चढ़ना-उतरना
2. पकड़ना, चढ़ना एवं संतुलन बनाना
3. छात्रों की हॉरीजेन्टल बार की क्रियानुसार 'बैक हिप' सर्किल बनाना।

फर्श पर किये जाने वाले व्यायाम

(बिना उपकरण के व्यायाम)

जिम्नास्टिक में सबसे सरल व्यायाम फर्श के व्यायाम होते हैं। इन्हें उठते बैठते कभी भी हाथ-पैरों की सहायता से किया जा सकता है। फर्श पर केवल गद्दा बिछाने की जरूरत होती है। प्रारम्भिक अवस्था में फर्श के व्यायाम ही किये जाने चाहिए।

इन्हें करने के लिए किसी उपकरण की आवश्यकता नहीं होती।

1. आगे लुढ़कना :– यह व्यायाम रबर के गद्दे पर किया जाना चाहिए। सबसे पहले गद्दे के एक ओर खड़े होकर हाथों को फर्श के समानान्तर करें। फिर हथेलियों को घुटनों के बल झुकाते हुए गद्दे पर टिका दें। अब अपनी गर्दन को दोनों हाथों के अन्दर की ओर मोड़कर कोहनियों को मोड़ते हुए कमर के सहारे आगे लुढ़क जाएँ। लुढ़कते समय घुटनों को मिलाकर एवं मोड़कर अपने सीने के पास रखें जिससे कि लुढ़कने में कठिनाई न हो।

2. पीछे लुढ़कना :– यह व्यायाम भी मोटे गद्दे पर किया जाता है। व्यायाम करने से पूर्व गद्दे के एक ओर खड़े हो जाएँ। इसके बाद कमर तथा गर्दन को पीछे की ओर झुकाते हुए फर्श पर बैठ जाएँ। पैरों को आगे की ओर अर्द्ध वृत्ताकार रूप में सिर की तरफ घुमाएँ। अब हथेलियों को जमीन पर टिकाते हुए पीछे की ओर लुढ़क जाएँ। पीछे लुढ़कते समय पंजों में खिंचाव हो और टाँगें घुमाने से नहीं मुड़ें।

3. आगे-पीछे लुढ़कना :– इसके लिए चटाई के ऊपर पीठ के बल लेट जाना चाहिए तथा टाँगों को घुटनों से मोड़ कर पेट दबाना चाहिए। दोनों हाथों की घुटनों पर मजबूत पकड़ होनी चाहिए। इस मुद्रा में ही ऊपर-नीचे लुढ़कना चाहिए। प्रारम्भ में यह क्रिया बीस बार की जा सकती है तथा धीरे-धीरे अभ्यास से यह और भी बढ़ाई जा सकती है।

4. कार्ट व्हील (Cart Wheel) :– कार्ट व्हील से तात्पर्य है, 'गाड़ी का पहिया'। जिस प्रकार गाड़ी का पहिया गोल-गोल घूमता है, उसी प्रकार शरीर को भी हाथों के बल पर पहिये की आकृति अनुसार गोल घुमा दिया जाता है। इस व्यायाम में बालक अपने दोनों हाथों से मजबूती के साथ दोनों पैरों को पकड़ कर गाड़ी के पहिये की तरह बन कर लुढ़कता है। इसमें सिर दोनों टाँगों के बीच में रहता है। कार्ट व्हील व्यायाम एक अन्य रीति से भी किया जाता है, जिसमें बायें पैर के घुटने को मोड़ते हुए थोड़ा ऊपर उठाते हैं तथा हाथों को पार्श्व में फैला देते हैं। तत्पश्चात् स्विंग लेते हुए बांये पैर को बांयी तरफ थोड़ी दूरी पर टिकाते हैं, साथ ही कमर की स्विंग लेकर पहले बांयी हथेली, फिर दाहिनी हथेली, फिर दाहिना पैर, फिर बांया पैर धरती पर टिकाते हुए सीधे खड़े हो जाते हैं। इस प्रकार एक पूरा चक्कर हो जाता है।

5. सिर के बल कलाबाजी (कलामुण्डली) :– गद्दे से तीन-चार कदम दूर से दौड़ते हुए गद्दे के समीप आकर दोनों हथेलियाँ गद्दे पर रखकर दोनों हाथों के बीच में सिर टिका कर कमर से झटका मारकर पलटी खाई जाती है।

6. उल्टे खड़े होना :– इसमें हथेलियों को सीधे जमीन पर टिका कर हाथों को सीधे रखते हुए व पावों को ऊपर लाते हुए सीधे ऊपर की ओर करते हुए शरीर का सारा बोझ हाथों पर डालकर हाथों के बल खड़ा होना पड़ता है। इसमें हथेलियाँ जमीन और पगतलियाँ आकाश की ओर रहती हैं। कुछ लोग पहले शीर्षासन कर अर्थात् सिर के बल जमीन पर सीधे खड़े होकर फिर सिर को ऊँचा करते हुए हाथों को सिर के स्थान पर रखकर भी इस व्यायाम का अभ्यास करते हैं।

7. हैंड स्प्रिंग :– सीने की कसरत के लिए हैंड स्प्रिंग को खींचना अच्छा है। यह एक स्प्रिंग होती है, जिसमें दोनों ओर हत्थे लगे होते हैं। दोनों हाथों से पकड़कर स्प्रिंग को सीने के पास ले जाकर खींच कर बढ़ाया जाता है। इससे सीना भी तनता है और हाथों में भी मजबूती आती है।

8. रस्सी कूदना :– रस्सी कूदना भी फर्श व्यायाम का एक अंग है। इस व्यायाम में एक रस्सी की आवश्यकता होती है। रस्सी कूदने से पहले हल्के व्यायाम या जॉगिंग से शरीर को गर्म कर लेना चाहिए। रस्सी कूदते समय अपने शरीर को सीधा रखें। यह व्यायाम शुरू करने से पूर्व रस्सी के दोनों सिरों को अपने दोनों हाथों से पकड़ते हैं। रस्सी के बीच का हिस्सा अपने शरीर के पीछे पिंडलियों के पास रखते हैं और दोनों पैर मिले हुए रखने पड़ते हैं। अब कंधे, कोहनी तथा कलाई को पीछे से घुमाते हुए रस्सी को सिर के ऊपर से आगे की ओर लाते हैं तथा दोनों पैरों से जम्प लेकर रस्सी को दोनों पैरों के नीचे से निकाल कर पीछे ले जाते हैं। इस प्रकार इस क्रिया को 60 बार दोहराएँ। इससे भी शरीर के सभी अंग एवं माँसपेशियाँ गतिशील होते हैं। इससे कलाई, कोहनी, पैर, टखनों व कंधों का अच्छा व्यायाम होता है। वे मजबूत होते हैं और शारीरिक बल भी बढ़ता है। इसे शुद्ध वायु के खुले वातावरण में करें। अपनी उम्र और शारीरिक क्षमतानुसार ही करना चाहिए। इससे रक्तसंचार तीव्र होता है। इस व्यायाम से मोटापा कम होता है।

करतब

करतब की क्रियाएँ युवाओं में दम-खम, साहस, आत्मविश्वास एवं कौशल का विकास करती हैं। ये महत्त्वपूर्ण शारीरिक क्रियाएँ हैं। करतब की क्रियाएँ विशेष रूप से किशोर एवं युवाओं में रुचिकर एवं आकर्षक होती हैं।

करतब की शारीरिक क्रियाओं में दो या दो से अधिक प्रतियोगियों का एक दूसरे से सम्पर्क होता है। अत: सावधानी पूर्वक ही इन क्रियाओं में भाग लेना चाहिए, वरना प्रतियोगी को चोट लग सकती है। अत: इन क्रियाओं को सम्बन्धित विशेषज्ञों के निर्देशन में ही करें। कोई भी प्रक्रिया करने से पूर्व शरीर को पर्याप्त वार्मअप करें, प्रक्रिया के अनुरूप ही सुरक्षात्मक साधनों का प्रयोग करें तथा इसी के अनुरूप पोशाक

पहनी जावे। प्रक्रियाएँ समान लिंग, आयु एवं वजन के प्रतियोगियों के मध्य की जावें। साथ ही पर्याप्त मात्रा में दरी, गद्दे, सुरक्षा गार्ड आदि काम में लिये जावें। करतब के अन्तर्गत निम्न खेल सम्मिलित किये जा सकते हैं :

1. छड़ छीनना **(Stick wrest)** :– दोनों प्रतियोगी एक-दूसरे के सामने खड़े होते हैं तथा एक मजबूत लकड़ी या छड़ जो कि एक से डेढ़ फुट लम्बी हो सकती है, को दोनों हाथों से एक के बाद एक पकड़ लेते हैं। व्हीशल या अन्य संकेत पर दोनों प्रतियोगी छड़ को एक-दूसरे से छुड़ाने का प्रयास करते हैं। इसमें पैरों का जमीन से उठना तथा हाथों का बदलना निषेध है। जो प्रतियोगी विपक्षी से छड़ या लकड़ी छुड़ा लेगा, वही विजयी होगा। इसके 3 से 5 राउण्ड कराये जा सकते हैं।

2. कंगारू मार्च **(Kangaroo March)** :– एक प्रतियोगी दोनों हाथ जमीन पर टिका कर, दोनों टांगे अन्य प्रतियोगी की जाँघों के साथ सटाकर उसकी कमर के पीछे, दोनों पैरों के टखनों की कैंची बनाकर झूल जाता है तथा आगे का धड़ उठाकर रखता है। वजन उठाने वाला प्रतियोगी कमर के पीछे दोनों हाथों से उसके टखनों को पकड़ लेता है। इस स्थिति में वजन उठाने वाला प्रतियोगी 3 मीटर आगे व पीछे जाता है। फिर बारी बदलकर अन्य प्रतियोगी भी यही करता है। जो प्रतियोगी कम समय लेगा, वही विजयी होगा। इसके 2-3 राउण्ड कराये जा सकते हैं।

3. लँगड़ी संतुलन लड़ाई **(Hopping tug oh war)** :– दोनों प्रतियोगी एक दूसरे के सामने खड़े होकर एक-दूसरे के विपरीत हथेलियों को मजबूती से पकड़ लेते हैं तथा दूसरे हाथ से स्वयं की टाँग पीछे मोड़कर पकड़ लेते हैं। व्हीशल या संकेत पर एक-दूसरे को खींच कर या धकेल कर संतुलन बिगाड़ने का प्रयास किया जाता है। जिसका संतुलन बिगड़ जाये, वह हारा माना जायेगा। इसके 3 से 5 राउण्ड कराये जा सकते हैं।

4. फायर मेन्स **(Hire man's lift)** :– प्रतियोगी अपने प्रतिद्वन्द्वी के विपरीत हाथ की दूसरी कलाई पकड़ते हुए, नीचे झुककर हाथ उसकी टाँगों के बीच में डालकर उसे गर्दन के पीछे कंधों पर उठा लेता है। कलाई छोड़कर टाँगों के बीच के हाथ से उसी हाथ की कलाई पकड़ लेता है। यह बेहोश या जले हुए व्यक्ति को उठाकर चलने की आरामदायक स्थिति है।

5. 'मेडिसिन बाल' टाँगों से फेंकना **(Medicine Ball through hrom the heet)** :– एक प्रतियोगी समतल स्थान पर पीठ के बल लेट जाता है। उसके पैरों के पास मेडीसिन बॉल होती है। व्हीशल या संकेत पर पैरों से बॉल

उठाकर दो मीटर दूरी पर खड़े प्रतिद्वन्द्वी की ओर फेंकता है। ऐसा लगातार 3 से 5 बार तक किया जा सकता है। फिर प्रतिद्वन्द्वी खिलाड़ी लेटकर यही क्रिया दोहराता है। उसे भी 3 से 5 बार अवसर दिये जाते हैं। जो प्रतियोगी कम समय में करेगा, वह विजयी होगा।

6. बाधा विरोधी (Obstimate mute) :– एक प्रतियोगी समतल स्थल पर दरी या गद्दे पर घुटनों के बल बैठ जाता है तथा बाजू सीधी रखते हुए जमीन पर टिका देता है। गर्दन सीधी रखता है। विपक्षी प्रतियोगी उसके सामने खड़ा होकर उसकी गर्दन में दोनों हथेलियों की पकड़ डाल देता है। व्हीशल या संकेत पर गर्दन को खींचता है, जिस पर वह दृढ़ रहता है। आधे मिनट तक दृढ़ रहने पर विजयी होगा। रोल बदलकर दूसरे प्रतियोगी भी करें। इसके 3 से 5 राउण्ड तक कराये जा सकते हैं।

पिरामिड्स

पिरामिड का व्यायाम सामूहिक अभ्यास का व्यायाम है। इसमें कई छात्रों की आवश्यकता होती है। पिरामिड व्यायाम में एकाग्रता, तालमेल एवं पारस्परिक समझ की बहुत आवश्यकता होती है। इस व्यायाम का नाम पिरामिड इस कारण रखा गया है क्योंकि इसमें पिरामिड की तरह की मुद्राएँ बनाई जाती हैं। यह रूप मिश्र में पाये जाने वाले पिरामिड का आकार होता है। पिरामिड में बालकों को सामूहिक रूप में भिन्न-भिन्न प्रकार की शारीरिक क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। कभी हाथों और घुटनों के बल झुक कर दूसरे बालकों को पीठ पर खड़ा करना पड़ता है और कभी उनको कंधों पर खड़ा करना पड़ता है, कभी उनको हाथों के सहारे लटकना पड़ता है। अत: पिरामिड के लिए बालकों के कंधों, हाथों तथा पैरों का मजबूत होना आवश्यक है। पिरामिड के खिलाड़ी का शरीर मजबूत, लचीला एवं फुर्तीला होना चाहिए।

पिरामिड की शारीरिक विभिन्न मुद्राएँ :

(अ) तीन का पिरामिड

1. एक कतार में तीन बालक खड़े होंगे।
2. दोनों पार्श्व के बालक कतार में आमने-सामने मुँह करके एक घुटने के बल बैठेंगे। आगे वाले घुटने उठे रहेंगे।
3. तीसरा बालक दोनों बैठे हुए बालकों के उठे हुए घुटनों पर बायाँ और दायाँ पैर रखकर खड़ा होगा। हाथ पार्श्व में खुलेंगे।
4. पार्श्व में बैठे हुए बालक की कमर को दोनों हाथों से पकड़ कर संतुलन बनाने में सहायता देंगे।

(ब) पाँच का पिरामिड

1. चार बालक एक कतार में खड़े होंगे।
2. बीच के दो बालक घुटनों के बल बैठ जायेंगे।
3. उनके दोनों हाथ घुटनों के बगल में जमीन पर सीधे रहेंगे।
4. पाँचवाँ बालक बैठे हुए बालकों के बायें व दायें कन्धे पर पैर रखकर खड़ा हो जायेगा।
5. कतार का तीसरा व चौथा बालक दोनों ही अपने स्थान पर हाथ संतुलित करके व्यायाम करेंगे।
6. पाँचवाँ बालक तीसरे व चौथे बालकों के पैरों को दोनों हाथों से अलग-अलग पकड़ेगा।

(स) सात बालकों का पिरामिड

इसमें सात बालक होंगे। पहली पंक्ति में पाँच बालक होंगे। इन पाँच बालकों में से बीच के तीन बालक घुटने और हाथों के बल बैठेंगे। पीछे से कमर को ऊँचा करेंगे व घुटने जमीन पर टिके रहेंगे। पीछे की कतार के दो बालक बैठे हुए बालकों की कमर पर पैर रखकर खड़े हो जायेंगे। वे अपने बायें व दायें हाथे को पकड़ कर संतुलन बनायेंगे। इसके पश्चात् छठा व सातवाँ बालक जो दोनों पार्श्व में बैठे होंगे, ऊपर खड़े हुए बालक उनके पैरों को पकड़ कर संतुलन साधेंगे। इस प्रकार पिरामिड त्रिशंकु की स्थिति में बनेगा। इसमें विभिन्न प्रकार की मुद्राएँ बनाई जा सकती हैं। इस व्यायाम में छात्रों में संतुलन बनाये रखने की क्षमता, शरीर की मजबूती व आत्मविश्वास होना चाहिए।

(द) नौ बालकों का पिरामिड

चार छात्र घुटनों एवं हथेलियों के बल जमीन पर समानान्तर घोड़े की तरह बैठ जाते हैं। उनके ऊपर तीन हल्के साथी पीठ पर एक-दूसरे का हाथ पकड़कर खड़े होंगे। दो छात्र बायें और दायें हाथों के सन्तुलन की स्थिति बनायेंगे। पीठ पर खड़े साथी एक हाथ से उनका संतुलन पैरों को पकड़ते हुए साधेंगे।

(य) ग्यारह बालकों का पिरामिड

इस पिरामिड में ग्यारह बालक होंगे। यह पिरामिड कई प्रकार से बनाया जा सकता है। इसमें चार बालक घुटने एवं हथेलियों के बल जमीन पर समानान्तर घोड़े की तरह बैठ जाते हैं। उनके ऊपर तीन हल्के साथी पीठ पर एक-दूसरे का हाथ पकड़े खड़े होंगे। अब दो छात्र पार्श्व में इस प्रकार खड़े होते हैं कि उनमें से एक बालक दूसरे की जाँघ पर खड़ा होकर अपने दोनों हाथों से पीठ पर खड़े बालक का

एक हाथ पकड़ कर उसका संतुलन साधेंगे।

(ख) पन्द्रह बालकों का पिरामिड

पन्द्रह छात्रों का पिरामिड बनाने के लिए छह छात्रों को घुटनों व हथेलियों के बल जमीन पर गोल घेरे में घोड़े की तरह बैठा देते हैं। पुनः उनके ऊपर छह छात्र इस प्रकार बिठाये जाते हैं कि वे नीचे के दो छात्रों की मिली हुई कमर (पीठ) पर घुटनों के बल बैठ जाएँ और ये छात्र अपने दायें-बायें हाथों को छात्रों के कंधों पर रखकर सहारा लिए हुए होंगे। अब तीन छात्र दूसरे घेरे में बैठे ऊपर के छह छात्रों की कमर पर एक-एक पैर रखकर बीच में खड़े हो जाएँगे तथा परस्पर दायें व बायें हाथों की बगल के छात्र के साथ मुट्ठी बनाकर मजबूती से पकड़े रखेंगे या कंधों पर हाथ रख कर संतुलन कायम रखेंगे।

पन्द्रह छात्रों के पिरामिड अन्य प्रकार से भी बनाये जा सकते हैं।

ध्यातव्य :– पिरामिड की विभिन्न मुद्राएँ सदैव खेल शिक्षक के निर्देशन में ही करनी चाहिए, क्योंकि तनिक सी 'असावधानी' या असंतुलन के कारण किसी भी दुर्घटना के घटित होने की स्थिति बन सकती है।

मल्लखंभ व्यायाम

मल्लखंभ लकड़ी का एक खम्बा (लट्ठा) होता है। इसका कुछ हिस्सा जमीन में गड़ा होता है। यह नीचे की ओर अपेक्षाकृत मोटा (15 से.मी. या 6 इंच) तथा ऊपर की ओर अपेक्षाकृत पतला (10 से.मी.) होता है। यह करीब 8-10 फीट ऊँचा होता है। यह खम्भा क्रिया करने से पूर्व काफी चिकना कर लिया जाता है। इसके लिए इसकी तेल से मालिश की जाती है।

भारत में मल्लखम्भ एक लोकप्रिय खेल है। साथ ही यह खेल विशुद्ध भारतीय खेल है। इसका प्रारम्भ महाराष्ट्र से हुआ था। पेशवा बाजीराव द्वितीय के व्यायाम शिक्षक बाल भट्ट देवधर पुणे ने बंदरों को वृक्ष की शाखाओं पर उछलते-कूदते और विभिन्न मुद्राओं को करते देखकर इस खेल की रचना की।

मल्लखम्भ का शाब्दिक अर्थ है- 'खम्भ के साथ मल्ल युद्ध करना'। यह खेल अपेक्षाकृत कम समय, स्थान एवं खर्च में, शरीर को लोच, स्फूर्ति, शक्ति संतुलन एवं माँसपेशियों को मजबूती प्रदान करने वाला आनन्ददायी खेल है। इसका योगासन एवं जिम्नास्टिक से गहरा सम्बन्ध है।

मल्लखम्भ करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए :

1. शुरू में मल्लखम्भ के निचले हिस्से पर ही अभ्यास करना चाहिए।
2. क्रियाएँ करने से पूर्व शरीर की मालिश करनी चाहिए।

3. क्रियाएँ करते समय लँगोट का प्रयोग करना चाहिए।
4. क्रियाएँ करने से पूर्व कुछ कसरत अवश्य कर लेनी चाहिए।
5. अभ्यास करते समय मल्लखम्भ के चारों ओर रबर के गद्दे लगवाने चाहिए।
6. मल्लखम्भ करने से पूर्व भोजन नहीं करना चाहिए तथा पौष्टिक आहार लेना चाहिये।

मल्लखम्भ पर की जाने वाली मुद्राएँ

वैसे तो मुद्राएँ कई प्रकार की होती हैं, जैसे– साधारण, लटकती हुई, आधार एवं आधार रहित। परन्तु विद्यालयों में जिस मल्लखम्भ व्यायाम का शिक्षण दिया जाता है, वह साधारण मल्लखम्भ होता है।

मल्लखम्भ पर व्यायाम करने से पूर्व मल्लखम्भ की पकड़ सीखनी होती है, जो कई प्रकार की होती है। मल्लखम्भ की प्रारम्भिक अवस्था में खड़े होकर सादी, उड़ी, बगल खड़ी, दशरंग आदि व्यायाम किये जाते हैं। कुछ मुद्राएँ निम्न हैं :

1. **चढ़ने-उतरने का अभ्यास** :– प्रारम्भ में केवल चढ़ने-उतरने का अभ्यास किया जाता है। यह दो प्रकार का होता है :

(अ) बंदर की तरह चढ़ना-उतरना,

(ब) लपेट लगाकर ऊपर चढ़ना-उतरना, ऊपर के सिरे पर पहुँचकर पैरों की कैंची लगाकर हाथ जोड़ने का अभ्यास किया जाता है।

2. **मल्लखम्भ बगल लपेट** :– मल्लखम्भ के पास खड़े होकर नीचे झुकते हुए, मजबूत हाथ की लपेट से मल्लखम्भ को पकड़ते हैं तथा बगल सटा देते हैं। दोनों टाँगों को पीछे से ऊपर उछाल कर मल्लखम्भ को पैरों के टखनों की कैंची लगाकर पकड़ लेते हैं। पैरों की कैंची लगाकर हाथ छोड़ने का अभ्यास करते हैं।

3. **मल्लखम्भ कंधा पकड़** :– मल्लखम्भ के पास खड़े होकर मजबूत हाथ के बाजू की लपेट से मल्लखम्भ को पकड़ते हैं और कंधा सटा देते हैं। दोनों टाँगों को आगे ऊपर उछालकर मल्लखम्भ को पैरों के टखनों की कैंची लगाकर पकड़ लेते हैं। पैरों की कैंची लगाकर हाथ छोड़ने का अभ्यास करते हैं।

4. **मल्लखम्भ क्रॉस पकड़** :– मल्लखम्भ के पास हैंड स्टैंड कर, पैरों को मल्लखम्भ के पास निकालकर लटके को दोनों जाँघों की कैंची लगाकर पकड़ लेते हैं। शरीर को हवा में झुला देते हैं। शनैः शनैः शरीर मल्लखम्भ पर व्यायाम हेतु सधने लगता है।

5. **संतुलन एवं आसन क्रियाएँ** :– मल्लखम्भ पर अभ्यास के पश्चात् संतुलन के अनेक व्यायाम और आसन किये जाते हैं। इनमें कुछ प्रमुख निम्न हैं :

सीधे खड़े होना	पक्षी आसन
शीर्षासन	पश्चिमोत्तानासन
कुक्कुटासन	हलासन
वकासन	मयूरासन

कब्ज निवारक व्यायाम

कब्ज बहुत-सी बीमारियों का कारण माना जाता है, इसलिए स्वस्थ शरीर के लिए व्यक्ति को कब्ज से बचना चाहिए।

यहाँ कुछ ऐसे व्यायाम बताये जा रहे हैं, जिनसे कब्ज दूर करने में सहायता मिलती है, परन्तु यह न समझना चाहिए कि इसके अतिरिक्त अन्य कोई लाभ नहीं होता। साँस और ध्यान के कारण इन व्यायामों का प्रभाव सारे शरीर पर पड़ता है। कब्ज को दूर करने के लिए उदर की माँसपेशियाँ स्वस्थ होनी चाहिए। योग में ऐसे योगासन भी हैं, जिनसे पेट को बल मिलता है और पाचन-क्रिया ठीक होती है। दण्ड-बैठक आदि से ऐसा नहीं होता। दण्ड-बैठक और कुश्ती आदि व्यायाम करने वाले पहलवान व्यक्तियों का पेट वृद्धावस्था में ढलक जाता है और वे प्राय: रुग्ण रहते हैं, परन्तु योगासनों से वृद्धावस्था में भी शरीर सधा रहता है, पेट कभी बाहर नहीं निकलता और शौचादि क्रियाएँ स्वभावत: होती रहती हैं।

इन व्यायामों के सम्बन्ध में सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि ये खाली पेट और प्रात: या सायं ही किये जायें। अभ्यास धीरे-धीरे ही बढ़ाना चाहिए, एक दिन में कोई चमत्कार नहीं होने वाला, परन्तु इतना अवश्य है कि थोड़ा-थोड़ा लाभ तुरन्त प्रतीत होने लगेगा।

व्यायाम–1

सीधे खड़े हो जायें। दोनों हाथ जाँघों के पास रहें।

क्रिया :– नाक से धीरे-धीरे पेट में साँस भरें और जितना हो सके पेट को फुलाते जायें। थोड़ी देर साँस अन्दर रोके रहें। बाद में धीरे-धीरे पेट में से साँस बाहर निकालें और इस सीमा तक निकाल दें कि पेट गड्ढे के समान बन जाये। आरम्भ में चार-पाँच बार से अधिक अभ्यास न करें। इस क्रिया में साँस थोड़ी देर भीतर अवश्य रोकना चाहिए।

व्यायाम–2

सीधे खड़े हों। एड़ियाँ मिली रहें। ठोड़ी लगभग दो-तीन सेण्टीमीटर ऊँची रहनी चाहिए।

क्रिया :– नाक से जल्दी-जल्दी पेट में साँस भरें और निकालें। साँस भरते समय पेट फुलायें और निकालते समय पेट को सिकोड़ें। इस क्रिया में साँस जल्दी-जल्दी लें और जल्दी-जल्दी ही निकालें, परन्तु पेट पूरा फूलना चाहिए और सिकुड़ना भी पूरा चाहिए तथा श्वास की क्रिया नियमित होनी चाहिए।

व्यायाम–3

क्रिया :– सीधे खड़े हों। सीधे खड़े रहते हुए ही सिर को जितना पीछे को झुका सकें, झुकायें।

जल्दी-जल्दी साँस अन्दर भरें और निकालें। साथ ही पेट को फुलायें और सिकोड़ें। आरम्भ मे 20-25 बार से अधिक न करें।

व्यायाम–4

क्रिया :– सीधे खड़ें हों। अपनी दृष्टि एक-डेढ़ मीटर दूर धरती पर बने किसी निशान पर टिकायें। सीधे खड़े रहकर सामने देखते हुए तथा जल्दी-जल्दी साँस लेते और निकालते हुए पेट को फुलायें और सिकोड़ें।

पेट को सिकोड़ने और फुलाने से पेट का व्यायाम होता है।

व्यायाम–5

क्रिया :– सीधे खड़े हो जायें। हाथ नीचे की ओर सधे हुए रहें।

गालों को फुलाकर वायु अन्दर भरें। ठोढ़ी को आगे की ओर झुका लें, जिससे वह छाती की ऊपर की हड्डी को छूने लगे। सास अन्दर रोके रखें तथा आँखें बन्द रखें, उसके बाद धीरे-धीरे नाक से साँस को बाहर निकालें। साँस निकालने की ध्वनि नहीं होनी चाहिए।

यदि आपको एक-दो मिनट अन्दर साँस रोकना है, तो साँस बाहर निकालते समय जल्दबाजी न करें। जल्दी करने में हानि हो सकती है। आरम्भ में 4-5 बार ही अभ्यास करें।

व्यायाम–6

क्रिया :– कमर को सीधी रखते हुए खड़े हों। व्यायाम आरम्भ करते समय दोनों हाथ कमर (कटि-प्रदेश) पर दोनों ओर रखें, अँगूठे आगे को रहें। हाथ कमर पर रखकर शरीर के ऊपरी भाग को आगे को झुकायें। 60 डिग्री से अधिक न झुकें। अब नाक से साँस भीतर लें और निकालें। अधिक देर तक साँस रोकने की आवश्यकता नहीं।

साँस भीतर लेते समय पेट फुलायें और बाहर निकालते समय पेट सिकोड़ें।

व्यायाम–7

क्रिया :– इस क्रिया में और व्यायाम-6 में अन्तर इतना ही है कि आगे को नब्बे डिग्री तक झुकें। शेष क्रियाएँ व्यायाम-6 की तरह ही हैं। साँस भरना और निकालना जल्दी-जल्दी ही होना चाहिए। साँस भरते समय पेट को फुलायें और निकालते समय पेट को सिकोड़ें। साँस नाक से ही लें। आरम्भ में 20-25 बार से अधिक न करें। यदि थकावट हो, तो कम ही करें।

व्यायाम–8

क्रिया :– व्यायाम-6 के समान ही 60 डिग्री में आगे को झुककर खड़े हों तथा साँस बाहर निकाल दें। साँस को बाहर ही रोककर पेट को फुलाने और सिकोड़ने की कोशिश करें।

व्यायाम–9

क्रिया :– नब्बे डिग्री के कोण से व्यायाम-7 की तरह ही खड़े हों। शेष क्रिया व्यायाम-8 की तरह करें। यह क्रिया चार-पाँच बार ही करें।

व्यायाम–10

क्रिया :– इस क्रिया को नौली भी कहते हैं। सीधे खड़े हो जायें तथा नब्बे डिग्री तक झुककर दोनों हाथ दोनों घुटनों पर रखें।

अब साँस को पूरी तरह बाहर निकाल दें और पेट को अधिक-से-अधिक पीछे को सिकोड़ें। अब पेट के बीच के भाग को (सामने का थैली वाला भाग) दायें-बायें घुमाने का यत्न करें। दोनों हाथों को मजबूती से घुटनों पर टिकाये रखें, तभी यह नौली क्रिया सम्भव हो सकेगी।

यह व्यायाम पेट के भीतर के सामने वाले भाग, यानी बड़ी आँत से सम्बन्धित है। इन व्यायामों से अनेक लाभ हैं, परन्तु यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि आप पेट को अर्थात् बड़ी आँत को सम्पूर्णतया सिकोड़ने में कितने सफल होते हैं। इसके साथ ही पेट की नसों-नाड़ियों को कितनी गति दे सकते हैं और पेट में भरे साँस को किस सीमा तक बाहर निकाल सकते हैं।

सामान्य तौर पर हम ऐसी बहुत ही कम क्रियाएँ, काम या व्यायाम करते हैं, जिनका सीधा प्रभाव पेट की माँसपेशियों पर पड़ता हो। उसी का यह फल होता है कि पेट बढ़कर आगे को लटक जाता है। बढ़ा हुआ पेट शरीर को इतना भद्दा बना देता है कि आदमी बदन उघाड़ने से भी घबराने लगता है। पेट का बड़ा होना भद्दा तो लगता ही है, व्यक्ति की गतिशीलता पर भी प्रभाव डालता है, साथ ही अनेक रोगों को भी शरीर में आमन्त्रित करता है।

इन क्रियाओं से पेट, बड़ी आँत तथा अन्य सम्बद्ध नसों और नाड़ियों में रक्त के प्रवाह में तेज़ी आती है तथा उनकी गतिशीलता बढ़ती है। यही नसें व नाड़ियाँ पेट की पाचन ग्रन्थियों को शक्ति पहुँचाती हैं। इन क्रियाओं से पेट को ही नहीं, वरन् सारे शरीर को लाभ पहुँचता है। इनसे थायराइड, पैराथायराइड और पाचन ग्रन्थियों को भी शक्ति मिलती है। पेट की माँसपेशियों के निष्क्रिय रहने से वहाँ चरबी एकत्र होती रहती है, इसीलिए पेट बढ़ता है जो अनेक रोगों को आमन्त्रण देता है।

शरीर में अनेक नस-नाड़ियाँ ऐसी हैं, जो अधिक क्रियाशील नहीं रहतीं और कुछ ऐसी हैं जो क्रियाशील रहती हैं। यौगिक क्रियाएँ दोनों ही प्रकार की नाड़ियों को गतिशील रखकर, उन्हें स्वस्थ बनाकर अन्ततः शरीर को स्वस्थ रखती हैं।

मूलबन्ध

इस यौगिक क्रिया के अनेक लाभ हैं। इससे पेट की मल त्याग करने वाली आँतों व नसों-नाड़ियों को भी शक्ति मिलती है तथा गुर्दों को भी शक्ति मिलती है। इस क्रिया से शौच साफ़ होने लगता है और मूत्र-विकार नष्ट होते हैं। इससे शरीर में अपार शक्ति का संचार होता है।

मूलबन्ध के विषय में तो 'योगचूड़ामणिं' नामक योग की सुप्रसिद्ध पुस्तक में लिखा है-

अपानमूर्ध्वं आकृष्य मूलबन्धः विधीयते।
अपानप्राणयोरैक्यं क्षयान् मूत्रपुरीषयोः॥
युवा भवति वृद्धोऽपि सतत मूलबन्धनात्॥

मूलबन्ध द्वारा अपानवायु में प्राणवायु के मेल से मल-मूत्र का विमोचन आसानी से हो जाता है। आगे कहा है कि निरन्तर मूलबन्ध के अभ्यास से बूढ़ा व्यक्ति भी जवान हो जाता है।

क्रिया :– सीधे खड़े हो जाइये। पाँव आपस में मिले रहें। जाँघें भी जुड़ी रहें। गर्दन ढीली रहनी चाहिए। दोनों नितम्बों को आपस में मिलाकर गुदा को ऊपर सिकोड़ने का यत्न करें। यह यत्न ऐसा होना चाहिए कि जैसे आप गुदा द्वारा वायु को ऊपर खींच रहे हों। साँस साधारण रूप से ही चलनी चाहिए, परन्तु यह क्रिया (गुदाद्वार से वायु को ऊपर खींचना) इतनी श्रमसाध्य है कि इसे करते समय आपका सारा शरीर काँपने लगेगा। इस क्रिया से गुदाद्वार की नाड़ियों और गुर्दों की नाड़ियों को बल मिलता है, अर्थात् इस मूलबन्ध क्रिया से अपानवायु (जो वायु नीचे को जाती है) ऊपर खींचने पर प्राणवायु से मिल जाती है और इसका प्रभाव शरीर को अद्भुत शक्ति प्रदान करता है।

आरम्भ में यह क्रिया पाँच मिनट से अधिक नहीं करनी चाहिए।

इस क्रिया को कई बार दोहराना चाहिए। इस क्रिया के दूसरे स्वरूप में पैरों के बीच छह-सात सेण्टीमीटर का अन्तर होना चाहिए।

व्यायाम–11

क्रिया :– समतल भूमि या किसी तख्तापोश पर दरी अथवा कम्बल बिछाकर पीठ के बल लेट जाइये। घुटनों को समेट लें, जाँघें और पिण्डलियाँ आपस में मिला लें। एड़ियों को नितम्बों से सटा लें।

दोनों हाथ चित्र में दिखाये अनुसार पेट के साथ सटा लें और पेट को दबाते हुए साँस को बाहर निकाल दें। साँस अधिक देर न बाहर रोकें और न अधिक देर भीतर रोकें। साँस निकालने के बाद पुन: भीतर भरें और पेट को फुलायें।

आरम्भ में यह क्रिया दस-पन्द्रह बार ही करें।

व्यायाम–12

क्रिया :– कम्बल, क़ालीन या किसी मोटी दरी को समतल स्थान पर बिछा लें और उस पर व्यायाम-1 के समान लेट जायें। घुटनों को मोड़ें तथा एड़ियाँ नितम्बों के पास ले जायें। दोनों हाथों दायें-बायें शरीर से सटे रहें, दोनों हथेलियाँ धरती की ओर रहें। अब प्रयत्न करें कि अंगुलियाँ एड़ियों को छूती रहें।

अब शरीर के बीच के भाग को धीरे-धीरे ऊपर उठायें और धीरे-धीरे ही कन्धों, गर्दन और पैर के पंजों पर उसे टिका दें। इस प्रकार लगभग 45 डिग्री का कोण बनाते हुए शरीर को सीधा रखने का यत्न करें। साँस सामान्य रहना चाहिए, परन्तु यथासम्भव गहरा होना चाहिए। सरलतापूर्वक आप जितनी देर इस स्थिति में रह सकते हैं, रहें। थकने पर शरीर को धीरे-धीरे नीचे लायें। आरम्भ में चार-पाँच बार करना पर्याप्त रहेगा।

व्यायाम करने के बाद शवासन के रूप में दो-तीन मिनट लेटकर थकान उतार लें।

लाभ :– इन दोनों व्यायामों से पेट की मांसपेशियों में पैदा हुआ अकड़ाव समाप्त होता है। अकड़ाव आने से वे निष्क्रिय हो जाती हैं। इन व्यायामों से उनमें लचक पैदा होती है और वे पुन: क्रियाशील बन जाती हैं।

आंतों से मल-विसर्जन आसानी से होने लगता है। मल-विसर्जन की प्रक्रिया में सुधार होने से भूख लगती है और चेहरे पर रौनक आने लगती है।

इन दोनों व्यायामों के करने से हर्निया के रोगियों को भी बहुत लाभ होता है। इससे नीचे को ढलकने वाली आंतें ऊपर को अपने स्थान पर स्थिर होने लगती हैं।

व्यायाम–13

कब्ज से पीड़ित रोगियों को अथवा उन व्यक्तियों को, जिन्हें प्राय: कब्ज रहता है, प्रात:काल सोकर उठने के बाद कुल्ला करके थोड़ा-सा गरम पानी पीना चाहिए। इसके बाद आँगन या छत पर दो-चार मिनट टहलकर आगे चित्र में दिखाये अनुरूप व्यायाम करना चाहिए।

कई बार ऐसा होता है कि आप शौच तो जाते हैं, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि पेट साफ़ नहीं हुआ। ऐसी हालत में फिर एक-दो गिलास गुनगुना गरम पानी पी लें। इसमें शहद, नींबू का रस या थोड़ा-सा नमक मिला रहना चाहिए। उसके बाद व्यायाम करें। शौच तभी जायें, जब पर्याप्त ज़ोर पड़ने लगे।

क्रिया :– सीधे खड़े हो जायें। दोनों पैरों में लगभग 30 सेण्टीमीटर का फ़ासला होना चाहिए। अब घुटनों को मोड़ते हुए शरीर का ऐसा कोण बनाइये, मानो आप कुर्सी या कमोड पर बैठे हैं। दोनों हाथ घुटनों की ओर नीचे रहें और शरीर के ऊपर के भाग को घुटनों की ओर झुकायें। यह क्रिया धीरे-धीरे करें।

छाती को झुकाने के बाद धीरे-धीरे फिर सीधा कर लें। जब छाती को घुटनों की ओर लायेंगे तो पेट पर दबाव पड़ेगा। अधिक से अधिक दबाव पड़ने दीजिये।

इस क्रिया में दो मिनट से अधिक नहीं लगेंगे। इसे एक बार करके लम्बा साँस लेते हुए सीधे खड़े हो जायें। फिर साँस छोड़ते हुए इस व्यायाम को दोहरायें। इस प्रकार इस व्यायाम को 8-10 बार दोहरा सकते हैं। इस प्रकार करने से शौच खुलकर आयेगा।

यदि यह क्रिया प्रति सप्ताह अर्थात् छुट्टी के दिन लगातार दो-तीन महीने की जाये तो काफ़ी लम्बे समय के लिए कब्ज से छुटकारा मिल जाता है।

व्यायाम–14

इसे 'उदरासन' भी कह सकते हैं।

क्रिया :– शरीर की लम्बाई-चौड़ाई के अनुरूप एक तख़्ता लें। तख़्ते का एक सिरा कुर्सी आदि पर रखकर ऊँचा कर लें, दूसरा सिरा धरती पर रहने दें। इस बात का ध्यान रखें कि ढलाऊ होने के कारण तख़्ता सरक न जाये। लगभग 30 डिग्री का कोण बनेगा। अब इस तख़्ते पर लेट जायें। सिर नीचे की ओर व पाँव ऊँचे भाग की ओर रखें। शरीर सीधा रहना चाहिए। दोनों हाथ चित्र-5 के अनुसार पेट पर रहें। हथेलियाँ खुली रहें तथा ध्यान पेट के मध्य-भाग में नाभि पर टिकाने का यत्न करें।

बतायी गयी विधि के अनुरूप तख़्ते पर लेटकर साँस को बाहर निकाल दें और पेट की सारी नस-नाड़ियों को छाती की ओर खींचने का प्रयत्न करें। जब सांस लें, यानी साँस को अन्दर भरें, तो पेट को अधिकाधिक फुलाने का प्रयत्न करें।

इस प्रकार एक चक्र पूरा होने पर एक-आध मिनट सुस्ता लें और इसी प्रक्रिया को दोहरायें। 10-15 बार यह क्रिया दोहरायी जा सकती है।

यदि तख़्ता उपलब्ध न हो, तो इस प्रक्रिया को दीवार के पास धरती पर लेटकर भी कर सकते हैं।

दीवार के पास सरकते हुए पाँव किसी ऊँचे स्थान पर टिकाये जा सकते हैं।

लाभ :– इस व्यायाम का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यदि किसी भी ग़लत क्रिया से पेट या उसके आस-पास के भाग नीचे को उतर जाते हैं, तो वे स्वयं अपने स्थान पर आ जाते हैं।

बेतरतीब बढ़ा हुआ पेट ठीक होने लगता है और फिर कभी पेट के बढ़ने या पेट लटकने की शिकायत नहीं होती है।

आँतों को आराम मिलता है, जिससे उनकी सक्रियता बढ़ती है।

श्वास के रोगियों को आराम होता है।

थोड़ी देर में हाँफ जाने वाले व्यक्तियों को राहत मिलती है।

इससे क़ब्ज़ ही दूर नहीं होता वरन् पतले दस्त एवं अपच भी दूर होता है तथा भोजन में रुचि बढ़ती है।

हर्निया के रोगियों को बहुत लाभ होता है।

अण्डकोष बढ़ते नहीं, वीर्य ऊर्ध्वगामी होता है और सम्भोगशक्ति विकसित होती है।

इस व्यायाम को प्रतिदित थोड़ी देर कर सकते हैं अन्यथा सप्ताह में एक बार करने से भी काम चल सकता है।

सावधान :– हृदय के रोगियों को यह आसन नहीं करना चाहिए।

व्यायाम–15

इसे 'काग आसन' भी कहते हैं। इसमें अभ्यासी कौए की चाल के समान पाँव के पंजों पर चलने का यत्न करता है।

क्रिया :– जैसा चित्र-7 में दिखाया गया है, दोनों पांवों के पंजों को धरती पर टिकाकर, एड़ियों पर दोनों नितम्ब रखकर बैठ जायें। बैठने के बाद आगे चलें। आरम्भ में केवल पंजों के बल चलने में सम्भवत: कठिनाई हो, परन्तु लाभ इस प्रकार चलने में है। अभ्यास से आठ-दस मिनट तक चल सकते हैं।

लाभ :– इस व्यायाम के अभ्यास से पैरों को शक्ति मिलती है। पैरों के सभी जोड़ मज़बूत होते हैं तथा पेट पर दबाव पड़ने से क़ब्ज़ भी दूर होता है और भूख भी बढ़ती है।

व्यायाम–16

क्रिया :– चित्र-8 में दिखाये अनुसार लगभग साठ सेण्टीमीटर का फ़ासला रखकर खड़े हो जायें। हाथ अपने जाँघिये के सामने रखें। इसी प्रकार धीरे-धीरे बैठने का यत्न करें। नितम्बों को धरती पर न लगने दें, उन्हें घुटनों के समानान्तर रखें। हाथ सही मुद्रा में व ढीले रखें।

लाभ :– इस व्यायाम से क़ब्ज़ और अपच तो दूर होता ही है, साथ ही घुटने, पिण्डलियाँ और जाँघें भी दृढ़ होती हैं तथा पुरुषत्व शक्ति में भी वृद्धि होती है।

सावधान :– स्त्रियाँ गर्भकाल में यह व्यायाम न करें। हाँ, गर्भ से पूर्व करती रहेंगी तो प्रसव के समय कष्ट नहीं होगा।

व्यायाम, थकान एवं विश्राम

विद्यालय के दैनिक कार्यों में व्यायाम और विश्राम का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। दैनिक कार्य तैयार करते समय प्रधानाध्यापक का यह दायित्व है कि वह यह देखे कि कार्यक्रम स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव तो नहीं डालता। पठन-पाठन के कार्यक्रम को ही विद्यालय में रखना, दिन-रात पढ़ाना, रटाना, नितान्त अनुचित एवं स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालने वाला है। मानसिक और शारीरिक कार्य के बाद विश्राम जरूरी है। शरीर साथ नहीं देता तो मस्तिष्क किसी काम का नहीं रहेगा और विश्राम नहीं मिलेगा तो शारीरिक एवं मानसिक कार्य ठीक ढंग से नहीं होंगे। सामान्यतया विद्यालयों में खेल-कूद, व्यायाम आदि की सुविधा नहीं है। इसका प्रभाव बालकों के स्वास्थ्य एवं भविष्य पर पड़ेगा। शिक्षकों को दैनिक कार्यक्रमों में बालकों को व्यायाम, खेल-कूद, मनोरंजन एवं विश्राम देने के लिए प्रयत्न कराना चाहिए, क्योंकि अत्यधिक मानसिक कार्य करने के बाद व्यायाम, खेल-कूद एवं विश्राम की आवश्यकता स्वाभाविक है।

शारीरिक व्यायाम

व्यायाम के समय पेशियों में गति आती है। अत: श्वास-क्रिया के माध्यम से ऑक्सीजन का खिंचाव बढ़ जाता है और कार्बन डाइ ऑक्साइड शरीर के भीतर से अधिक निकलता है। शरीर के भीतर ऑक्सीजन की मात्रा अधिक बढ़ने से रक्त तेजी से शुद्ध होता है फिर यह शुद्ध रक्त तीव्र गति से शरीर का परिभ्रमण करने लगता

है। इस प्रकार शारीरिक अवयवों में तेजी से पौष्टिक पदार्थ प्रवेश करने लगते हैं। व्यायाम से शरीर क्रियाशील होता है, अतः अंग अशक्त नहीं होने पाते।

व्यायाम का प्रभाव

व्यायाम दो रूपों में बच्चों को प्रभावित करता है–

(1) शारीरिक प्रभाव

शारीरिक बनावट में सुधार करने का व्यायाम आमोद्य अस्त्र है। इससे निम्न लाभ हैं–

1. शरीर के अंग पुष्ट बनते हैं। व्यायाम से शरीर में गर्मी आती है। हृदय की गति बढ़ जाती है। ऑक्सीजन फेफड़े में तीव्र गति से जाता है। रक्त की शुद्धता की मात्रा बढ़ जाती है। शरीर से गंदगी पसीने के माध्यम से बाहर निकलने लगती है। माँसपेशियों में गति एवं विकास होने लगता है। इससे शरीर के विभिन्न अंगों में गतिशीलता आती है। पाचन-क्रिया तीव्र गति से होती है।
2. सुधारात्मक दृष्टिकोण से भी व्यायाम शरीर के लिए अति आवश्यक है। इसमें रम जाने पर गन्दी आदतों से बच्चे मुक्ति पा जाते हैं। शरीर की आकृति सुडौल हो जाती है।
3. व्यायाम से मनुष्य का सर्वांगीण विकास होता है। इससे शरीर भी सुधरता है, स्फूर्ति भी आती है तथा रुचियों में भी विकास होता है; साथ ही सामाजिक एवं नैतिक भावों का भी विकास होता है। ये एक सफल नागरिक के लिए आवश्यक गुण हैं।

(2) शिक्षात्मक प्रभाव

बालकों को सामूहिक व्यायाम में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। मान्टेसरी, किन्डरगार्डन आदि शिक्षण-पद्धतियाँ खेलों के माध्यम से शिक्षा देने पर बल इसीलिए देती हैं कि खेल-कूद से सिखाई गई चीज शाश्वत एवं स्थायी होती है। एक-दूसरे की सहायता वाले खेलों के माध्यम से बालकों में सहयोग, विचार-दृढ़ता, उत्साह, संयम, अनुशासन आदि सुन्दर भाव आते हैं, जो बच्चों के भविष्य और जीवन के लिए उपादेय हैं।

व्यायाम से विशेष लाभ

1. शारीरिक विकास होता है।
2. रक्त शुद्ध होता है।

3. श्वास-क्रिया का विधिवत् एवं सफल संचरण होता है।
4. आनन्द की प्रगति होती है।
5. कार्यों के प्रति रुचि का विकास होता है।
6. वृक्क प्रभावकारी ढंग से कार्य करने लगते हैं।
7. छाती के भीतर के अंगों में तीव्रता आ जाती है।
8. रोग से छुटकारा मिलता है।
9. शरीर में ताप का संचरण एवं विकास होता है।
10. पाचन-क्रिया ठीक हो जाती है।

शैक्षिक लाभ

1. आत्म-नियन्त्रण का भाव आता है।
2. आत्मविश्वास का भाव आता है।
3. अनुशासन का भाव आता है।
4. सहयोग एवं सौजन्य का भाव बढ़ता है।
5. तीव्र निर्णय की शक्ति आती है।
6. सहनशक्ति आती है।
7. निश्चयात्मक वृत्ति बढ़ती है।
8. आत्महीनता का भाव समाप्त होता है।
9. एक-दूसरे को समझने का अवसर मिलता है।
10. साहस का विकास होता है।
11. पटुता एवं कार्य-कुशलता बढ़ती है।
12. पढ़ने की ओर रुचि बढ़ती है।

परन्तु बालकों की क्षमता और अपेक्षा को देखकर ही व्यायाम कराना चाहिए। इनसे मानसिक कार्य भी लेना है, यह भी ध्यान रहना चाहिए। इस दृष्टिकोण से हल्के व्यायाम विशेष लाभदायक होंगे। इनसे ड्रिल, स्काउटिंग, गेंद के खेल तथा बुद्धिवर्द्धक खेल कराये जायें।

थकान

थकान एक ऐसी शारीरिक अवस्था है जो कार्य करने या परिश्रम करने के पश्चात् स्वाभाविक रूप से आ जाती है। अधिक कार्य करने के पश्चात् शक्तियाँ क्षीण होती हैं और किसी कार्य में मन नहीं लगता। इसलिए ऐसे समय जबरन कोई कार्य नहीं

कराना चाहिए। बच्चों की क्षमता प्रौढ़ों से कम होती है, अतः उनको ऐसे समय पर आराम आवश्यक हो जाता है। थकान क्षमता को समाप्त करती है, त्रुटियों को बढ़ाती है और रुचियों को समाप्त कर देती है।

थकान के कारण

(1) घर और विद्यालय का अस्वास्थ्यकर वातावरण थकान बढ़ाता है।

(2) हवा की कमी के कारण थकान आती है।

(3) प्रकाश की कमी के कारण थकान आती है।

(4) उचित फर्नीचर के अभाव में थकान बढ़ती है।

(5) नींद की कमी के कारण व्यक्ति थकान महसूस करता है।

(6) भोज्य पदार्थों के अभाव के कारण थकान जल्दी आती है।

(7) विद्यालय की मस्तिष्क-प्रधान समय-सारिणी के कारण भी थकान आती है।

(8) इन्द्रियों के दोषों के कारण थकान बढ़ती है।

(9) अरुचिकर कार्य को जबरन कराने से थकान होती है।

(10) मानसिक चिन्ता के कारण थकान आती है।

(11) आर्थिक चिन्ता के कारण थकान-सी लगती है।

(12) संवेगात्मक प्रभावों के कारण भी थकान होती है।

(13) शारीरिक दोषों के कारण जल्दी थकान आती है।

(14) विद्यालयों में गृहकार्य देने पर विशेष बल देने पर थकान होने लगती है।

(15) देर तक पढ़ना-लिखना भी थकान लाता है।

थकान के लक्षण

(1) कार्य करने में रुचि न लेना।

(2) सुस्ती का आना।

(3) शिथिलता का आना।

(4) चेहरे का उतर जाना।

(5) निर्जीवता।

(6) भूख कम लगना।

(7) शारीरिक दुर्बलता।

(8) पीला चेहरा।

(9) रात में नींद का न आना।

(10) जम्हाई लेना।

थकान के निराकरण

विद्यालय में निरन्तर कार्य करने से बालक थक जाते हैं, अनवरत पढ़ते रहना बच्चे पसन्द नहीं करते। किसी भी विषय पर बच्चे घण्टों एकाग्रचित्त नहीं हो सकते। मनोविदों का दावा है कि 6 वर्ष के बच्चे किसी वस्तु पर 15 मिनट तक ध्यान एकाग्र कर सकते हैं; 10 वर्ष तक के बच्चे 20 मिनट तक, 12 वर्ष के बच्चे 30 मिनट तक, 14 वर्ष के 35 मिनट तक और 16 वर्ष के बच्चे 40 मिनट तक ध्यान एकाग्र भर सकते हैं। इसके अतिरिक्त पाठ की लम्बाई, बैठने के उपकरण, प्रकाश, मनोरंजन का अभाव आदि के कारण बालक थके-से जान पड़ते हैं। अतः पाठ लम्बे न हों, बैठने की कुर्सी-मेज उपयुक्त हो, प्रकाश एवं हवा की सुन्दर व्यवस्था हो तथा पाठ को दिलचस्प ढंग से पढ़ाया जाये-

इसके अतिरिक्त थकान रोकने के लिए विद्यालय निम्न व्यवस्था करे-

1. प्रत्येक तीन घण्टे बाद 15 मिनट का अवकाश दें।
2. सप्ताह के गम्भीर कार्य सोमवार और मंगलवार को कराये जायें।
3. बुधवार को चार घण्टे ही पढ़ाई हो।
4. पाठ्यान्तर क्रियाओं को अधिक प्रश्रय दिया जाये।
5. खेल-कूद की पर्याप्त व्यवस्था हो।
6. भोजन के आधे घण्टे के पश्चात् ही मानसिक श्रम कराया जाये।
7. मध्यान्तर के भोजन के लिए 30 मिनट समय हो और उसके बाद 30 मिनट आराम का समय हो।
8. दो गम्भीर विषय के घण्टे लगातार न रहें।
9. पढ़ाते समय अध्यापक किस्से-कहानी भी सुनावें।
10. संगीत आदि का प्रबन्ध होना चाहिए।
11. हवा, प्रकाश, पानी आदि की पर्याप्त व्यवस्था हो।
12. बच्चों को प्रेरित करना चाहिए कि वे यथेष्ट मात्रा में नींद लें।
13. सफाई, स्नान आदि पर भी ध्यान देना चाहिए।

इन सब उपक्रमों से थकान दूर हो जायेगी, स्वास्थ्य ठीक हो जायेगा और बच्चों का अपेक्षित विकास होगा।

विश्राम

थकान दूर करने का सर्वोत्तम तरीका नींद एवं विश्राम है। इससे अधिक श्रम की हरारत दूर हो जाती है। मानसिक क्षमता पुन: प्राप्त हो जाती है और मनुष्य स्वस्थ रहता है। विश्राम नींद, खेल-कूद, मनोरंजन आदि कई तरीकों से प्राप्त होता है। विश्राम से क्लान्ति तथा अरुचि दूर हो जाती है। विश्राम मानसिक कार्य के पश्चात्, भोजन के पश्चात्, व्यायाम के पश्चात् आवश्यक हो जाता है। विद्यालयों में विश्राम का यथेष्ट समय मिलना चाहिए। इससे पाचन-क्रिया बढ़ती है, मस्तिष्क सुस्त नहीं रहता, लम्बाई एवं वजन भी बढ़ता है।

निद्रा

बच्चों के लिए निद्रा आवश्यक है। निद्रा के अभाव में बच्चे या प्रौढ़ अपना मानसिक संतुलन खो बैठते हैं। हल्की निद्रा से उद्विग्नता तथा चिड़चिड़ापन बढ़ता है। सोते समय हृदय, माँसपेशियों, श्वसन-संस्थान आदि को विश्राम मिलता है। सोते समय मुँह ढक कर नहीं सोना चाहिए। बिस्तर उपयुक्त एवं कोमल हो, वातावरण शान्त हो, सोने का नियमित समय हो। पहनने के कपड़े ढीले हों।

निद्रा की मात्रा–

आयु	मात्रा
4 से 8 वर्ष के बच्चे	12 घण्टे
4 से 12	11 घण्टे
12 से 14	10 घण्टे
14-20	9 घण्टे
प्रौढ़	8 घण्टे

प्रौढ़ व्यक्तियों को दिन में नहीं सोना चाहिए। अनिद्रा सम्बन्धी रोग हो जाये तो तत्काल विशेषज्ञों की सहायता लेनी चाहिए।

विद्यालय के कार्यक्रम में खेल-कूद, हस्त-कार्य, व्यायाम, मनोरंजन, विश्राम आदि का विधिवत् प्रबन्ध होना चाहिए। इससे उनका शारीरिक एवं शैक्षिक दोनों ही प्रकार का विकास होता है। स्वस्थ शरीर एवं स्वस्थ मस्तिष्क के लिए विश्राम आवश्यक है। विद्यालय में इसलिए आवश्यकता से अधिक कार्य नहीं कराना चाहिए। पिटाई-रटाई भी इस दृष्टिकोण से घातक है। बच्चों को ऊबते देखकर गम्भीर कार्य बन्द कर देना चाहिए। शारीरिक एवं मानसिक कार्यों के बीच संतुलन स्थापित होना चाहिए। विद्यालय में एक मनोरंजन एवं विश्राम-कक्ष होना चाहिए, जहाँ विभिन्न रुचियों के बच्चों के लिए विभिन्न प्रकार के खेल का प्रबन्ध होना चाहिए।

सूक्ष्म यौगिक व्यायाम

यहाँ कुछ ऐसे यौगिक व्यायाम दिये जा रहे हैं, जिन्हें कोई भी व्यक्ति कर सकता है–बूढ़े–से–बूढ़ा, कमज़ोर–से–कमज़ोर और महिलाएँ भी। इन व्यायामों से हानि तो किसी भी प्रकार की नहीं वरन् भारी लाभ होता है। यह इतने सरल हैं कि एक बार अच्छी तरह समझ लेने पर आराम से किये जा सकते हैं। छोटे–छोटे व्यायाम होने से इनका अपना महत्त्व है। जिस प्रकार जहाँ छोटी चीज़ काम आ सकती है, वहाँ भारी–भरकम चीज़ की क्या आवश्यकता है?

1. प्रभु स्मरण

आप प्रभु के जिस स्वरूप में भी आस्था रखते हों, इस व्यायाम में उसी का स्मरण करें।

शारीरिक स्थिति :– सीधे खड़े हों, दोनों पाँव आपस में मिले रहें। हाथ जोड़कर नमस्कार की मुद्रा में रहें और जुड़े हुए हाथों की अँगुलियों का अग्रभाग ठोड़ी से सटा रहे, उसे छुए। कोहनियाँ छाती से सटी रहें।

अभ्यास :– इस प्रकार खड़े होकर अपना सारा ध्यान प्रभु की ओर लगाएँ, धीरे–धीरे मन स्थिर होने लगेगा। ध्यान लग जाने पर हाथों की स्थिति ढीली कर दें। जब तक मन स्थिर न हो, सीधे खड़े रहने का अभ्यास करें।

इसी मुद्रा में बैठकर भी अभ्यास किया जा सकता है। इससे भी वही लाभ होगा जो खड़े रहकर करने से होगा।

लाभ :– इससे एक महत्त्वपूर्ण लाभ यह है कि मन से भोग–विलास सम्बन्धी विचार दूर होते हैं। साथ ही मन को ध्यानावस्थित करने की शक्ति बढ़ती है।

भगवान बुद्ध को इस आसन के द्वारा ही ज्ञान प्राप्त हुआ था। वह बोधि वृक्ष के नीचे इसी मुद्रा में बैठे थे।

2. स्मरणशक्तिवर्धक व्यायाम

शारीरिक स्थिति :– सीधे खड़े हों, हाथ जाँघों के समानान्तर रहें। दृष्टि को पाँव के अँगूठे से 150 सेण्टीमीटर की दूरी पर स्थिर करें।

अभ्यास :– सिर के ऊपरी भाग में ध्यान टिकायें, जिसे ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं। साँस को ज़ोर से अन्दर खींचें और क्रमशः बाहर निकालें।

लाभ :– मस्तिष्क की थकान दूर करने के लिए यह व्यायाम बहुत उपयोगी है। इससे स्मरणशक्ति का भी विकास होता है। दिमाग़ी काम करने वालों और स्नायुदौर्बल्य के रोगियों के लिए बहुत उपयोगी है।

3. प्रतिभा एवं चातुर्यवर्धक व्यायाम

ब्रह्मरन्ध्र के आभ्यन्तर भाग में–योग में जिसका स्वरूप एक हज़ार पंखुड़ियों वाले कमल के समान है–अन्दर की ओर एक प्रकार का अमृतरस टपकता है, जिसे अमृतरस कहा जाता है। योगीजन इस छिद्र को बन्द कर देते हैं, जिसके द्वारा यह रस गले के मार्ग से उनकी पाचक अग्नि तक पहुँचता है। इस रस में इतनी शक्ति होती है कि वे केवल इसी अमृतरस के सहारे बिना कुछ भी खाये–पीये महीनों जीवित रह सकते हैं।

योगीजन तो जिह्वा को उलटकर गले के अन्दर के छिद्र को बन्द कर लेते हैं। इस प्रकार वह रस जीभ पर टपकता है और जठराग्नि में गिरकर नष्ट नहीं हो पाता।

इस आसन में एक सरल विधि बतायी गयी है, जिससे ग्रीवा के मध्य का यह छिद्र अभ्यास के दौरान बन्द रहता है, जिसे जालन्धर बन्द कहते हैं।

शारीरिक स्थिति :– सीधे खड़े हों, हाथ जाँघों के सहारे सटे रहें, आँखें बन्द रखें और सिर को झुकाकर ठोड़ी को छाती के ऊपर, गले की हड्डी पर टिका लें।

अभ्यास :– गर्दन के पिछले भाग पर पूरा ध्यान टिकायें। इस स्थान को ढीला छोड़ देने के साथ इस स्थान पर ध्यान टिकाने से प्रतिभा का विकास होता है।

ध्यान टिकाकर गहरा साँस लें और फिर साँस को पूरे ज़ोर से बाहर निकालें। आरम्भ में 20–25 बार करें।

जालन्धर बन्ध के विषय में कहा है–

जालन्धरकृते बन्धे कण्डसंकोचलक्षणम्।
न पीयूष पतत्यग्नौ न च वायुः प्रधावति॥

जालन्धर बन्ध :– यानी ग्रीवा के अन्दर का छिद्र बन्द करने से अमृतरस जठराग्नि में नहीं गिरता। इस प्रकार इस अमृतरस पर नियन्त्रण से कुण्डलिनी जाग्रत होती है।

इस क्रिया से मस्तिष्क की ग्रन्थियों का पोषण होता है तथा वे सक्रिय होती हैं।

ऊपर जो व्यायाम बताये गये हैं, उनके करने से मस्तिष्क का विकास होता है, ज्ञानतन्तुओं में सक्रियता आती है और चेहरा कान्तिवान् बनता है।

4. नेत्रज्योतिवर्धक व्यायाम

शारीरिक स्थिति :– सीधे खड़े हो जायें, पाँव आपस में सटे रहें, हाथ सीधे रहें। कमर सीधी रखते हुए सिर को पीछे की ओर इतना झुकायें जितना झुकाया जा सके।

अभ्यास :– उक्त स्थिति में रहकर अपना ध्यान व दृष्टि दोनों भौंहों के मध्य टिकायें। पलकें झपकनी नहीं चाहिए। जब आँखें थक जायें और पानी निकलने लगे, तो इस क्रिया को छोड़ दें, कुछ देर ठहरकर फिर करें। आरम्भ में दो-तीन बार करना यथेष्ट रहेगा।

इस क्रिया से उन माँसपेशियों को शक्ति मिलती है, जो आँख से सम्बन्धित हैं और जिनकी सहायता से अक्षिगोलक क्रियाशील होता है।

इससे मन को ध्यानावस्थित करने की भी शक्ति मिलती है।

यह एक प्रकार का त्राटक ही है, परन्तु इस क्रिया से अधिक लाभ होता है। इस प्रकार के त्राटक को गुप्त रखने चाहिए।

5. गर्दन के लिए व्यायाम

व्यायाम (क) :– गर्दन को आगे-पीछे झुकायें, भीतर को साँस लें और बाहर निकालें।

व्यायाम (ख) :– गर्दन को गोलाई में घुमायें।

व्यायाम (ग) :– गर्दन को ऊपर की ओर खींचकर लम्बा करने का यत्न करें। ऊँचा करने का यत्न करते हुए साँस भीतर लें और नीचे लाते हुए साँस को बाहर की ओर निकालें।

इन व्यायामों से गले और गर्दन को शक्ति मिलती है तथा माँसपेशियाँ क्रियाशील होती हैं। गले के सब रोग दूर होते हैं तथा टॉन्सिल आदि होने का भय भी नहीं रहता।

6. भुज-स्कन्ध व्यायाम

व्यायाम 1 :– यह व्यायाम कन्धों के लिए है, क्योंकि यदि कन्धे और उनके जोड़ ही निर्बल होंगे तो शेष भुजा, हाथ व कोहनियाँ आदि अंग कैसे दृढ़ हो सकते हैं?

शारीरिक स्थिति :– सीधे खड़े हों। हाथ का अँगूठा अन्दर को मोड़कर मुट्ठी बन्द कर लें तथा उन्हें जाँघों से सटाकर रखें।

अभ्यास :– मुँह फुलाकर साँस अन्दर भर लें। ठोड़ी को गले की हड्डी पर टिकाकर साँस अन्दर ही रोके रखें। इस प्रकार खड़े हुए कन्धों को ऊपर-नीचे हिलायें, उन्हें हरकत दें। कमर सीधी रखें। दोनों बाँहें नीचे को सीधी लटकी रहनी चाहिए। नाक से साँस बाहर निकाल दें। इसी तरह पुनः दोहरायें। आरम्भ में चार-पाँच बार करें।

व्यायाम 2 :– यह व्यायाम कन्धे से कोहनी तक के लिए है। सीधे खड़े होकर और मुट्ठियाँ बन्द करके तथा कोहनी से कन्धे तक के भाग पर ध्यान देते हुए बाँहों को बार-बार कन्धों के समानान्तर मोड़ें और फैलायें।

बाँहें सामने की ओर भी फैला सकते हैं। इस स्थिति को कुछ लोग भिन्न व्यायाम मानते हैं।

व्यायाम 3 :– कुछ लोग इसे भुजा आसन भी कहते हैं। यह सामान्य तौर पर क्रिया जाने वाला व्यायाम है।

यूँ तो व्यक्ति सारे दिन अपने हाथों से कुछ न कुछ न कुछ काम करता रहता है, परन्तु कन्धों से लेकर अँगुलियों पर पूरे हाथ का व्यायाम बहुत कम हो पाता है। इसलिए यहाँ ऐसा व्यायाम दिया जा रहा है जिससे हाथ, भुजा व कन्धों से जुड़े सभी भागों का व्यायाम हो जाता है।

स्थिति :– चित्र-9 (1) में दिये संकेत के अनुसार सीधे खड़े हों। जाँघें, पाँव व एड़ियाँ मिले रहें, हाथ नीचे लटके रहें। अब हाथ के पूरे भाग को अकड़ाइये, इससे उसमें कम्पन पैदा होगा। कम्पन इतना अधिक पैदा करें कि अँगुलियाँ तक कांपने लगें।

अब हाथ को ऊपर उठाकर पुनः ढीला छोड़ें और कम्पन पैदा करें।

व्यायाम 4 :– व्यायाम-3 के चित्र के अनुसार दोनों भुजाओं को ज़ोर-ज़ोर से ऊपर-नीचे गोल चक्कर में घुमाकर भी व्यायाम कर सकते हैं।

लाभ :– क्रमांक 2, 3 तथा 4 के व्यायामों से हथेलियों में रक्तसञ्चार होता है। उनमें तीव्रता के साथ भली प्रकार रक्त का प्रवाह होने से उनकी सुन्दरता भी बढ़ती है।

दोनों भुजाओं का व्यायाम हो जाता है और उनकी कार्यक्षमता बढ़ती है। उनमें शक्ति आती है। उनके द्वारा अधिक वज़न उठाया जा सकता है।

हाथ के अन्य सभी अंगों में लचीलापन आता है।

7. कलाई के व्यायाम

व्यायाम 1 :– यह व्यायाम भी हाथों से ही सम्बन्धित है।

स्थिति :– सीधे खड़े हो जायें। पाँव परस्पर सटे रहें, हाथों को जोड़ें। हथेलियों को नीचे रखें।

अब कलाई को मोड़ते हुए ऊपर-नीचे घुमायें। यह अभ्यास 10-12 बार कर सकते हैं।

व्यायाम 2 :– व्यायाम-1 के अनुसार खड़े होकर दोनों हाथ सामने की ओर फैलायें, अँगुलियां और अँगूठे दूर-दूर फैला दें तथा हाथ के खुले हुए पंजों को 10-12 बार ऊपर-नीचे झटकें।

हाथों को छाती के सामने लाकर, पंजों को पुनः 10-12 बार झटकें तथा ऊपर-नीचे झुलायें।

व्यायाम 3 :– खड़े होकर हाथ व अँगुलियाँ फैलायें। अब पहले अँगूठा मोड़ें, फिर अँगुलियाँ मोड़ते हुए मुट्ठी बाँधें। यह क्रिया इतना ज़ोर लगाकर करें कि हाथों की नसों में खिंचाव पैदा हो। अब बँधी मुट्ठियों को ज़ोर लगाकर खोलें तथा 10-12 बार ऐसा ही करें।

व्यायाम 4 :– व्यायाम-3 के अनुसार हाथों को सामने की ओर फैलायें। हाथों की अँगुलियाँ सटी हुई हों तथा पंजे कलाई से मुड़कर ऊपर की ओर उठे रहें। हथेली यथास्थान रखते हुए, कन्धों से इस प्रकार ज़ोर लगायें जैसे कि हथेलियों से किसी दीवार को बड़े ज़ोर से धकेल रहे हों। हाथ की पेशियों में 10-12 बार तनाव उत्पन्न करें, फिर उन्हें ढीला छोड़ दें।

हाथों को सीने के सामने लाकर हथेलियाँ आमने-सामने करें। अब इस प्रकार प्रयास करें मानो किसी अत्यन्त ठोस वस्तु को हथेलियों से सप्रयास दबा रहे हों। यह अभ्यास भी 10-12 बार करें।

व्यायाम 5 :– हाथों को पैरों के समानान्तर फैलायें। हाथों की अँगुलियों को पूरी शक्ति लगाकर खोलें। अँगुलियों में वैसा ही तनाव बनाये हुए, आधी दूर से मोड़ते हुए ऐसा प्रयास करें मानो किसी अदृश्य व अत्यन्त ठोस वस्तु को ज़ोर से पकड़ व छोड़ रहे हों। यह व्यायाम 10-12 बार करना चाहिए। हाथों को सीने के सामने करके हथेलियों को आमने-सामने लगाकर फिर वही क्रिया दोहरायें। बार-बार शक्तिपूर्वक किसी ठोस वस्तु को दबाने तथा छोड़ देने का यह अभ्यास 10-12 बार करें।

व्यायाम 6 :– हाथों को पैरों के समानान्तर फैलायें। हथेलियों को कलाइयों से मोड़ते हुए नीचे की ओर झुकायें। अँगुलियाँ इतनी ढीली छोड़ दें मानो बिलकुल निर्जीव हों। अँगुलियों तथा अँगूठों को ऐसी ही स्थिति में आधे मिनट तक ज़ोर से हिलाते रहने का अभ्यास करें।

यही व्यायाम हाथों को सामने की ओर झुकाकर भी करें।

व्यायाम 7 :– पालथी मार कर बैठें। दोनों हाथों को सामने की ओर फैलाकर, दोनों हाथ मिलाकर छह बार बायीं ओर से दायीं ओर तथा छह बार दायीं ओर से

बायीं ओर को इस प्रकार गोल-गोल घुमायें मानो चक्की चला रहे हों। शरीर को भी आगे-पीछे झुकाइये।

एक-एक हाथ से भी एक अभ्यास किया जा सकता है। गर्भवती महिलाओं के लिए यह अभ्यास बहुत लाभदायक है। इससे आँतों और गर्भाशय में नरमी आती है तथा बाँहें और कलाइयाँ पुष्ट होती हैं।

व्यायाम 8 :– बैठकर, हाथों को पैरों के समानान्तर फैलाकर, एक हाथ ऊपर तथा दूसरा हाथ नीचे रखें। दोनों मुट्ठियाँ इस प्रकार बाँधें, मानो रस्सा पकड़े हुए हों। अब ऐसी क्रिया कीजिये मानो ऊपर से नीचे की ओर किसी भारी वस्तु से बँधी हुई रस्सी को ज़ोर से खींच रहे हों। 10-12 बार करें।

रस्सी को नीचे से ऊपर की ओर खींचने जैसा अभ्यास भी बार-बार दोहरायें।

ध्यान रखें कि इस अभ्यास में धड़ सीधा रहे।

व्यायाम 9 :– हाथों और पैरों की स्थिति वैसी ही रखें जैसी कि रस्सा खींचते समय करते हैं। ऐसी क्रिया कीजिये मानो रस्सा बँट रहे हों।

यही क्रिया विपरीत दिशा में भी कीजिये।

व्यायाम 10 :– सावधान की स्थिति में खड़े हों। दोनों हाथ सिर से ऊपर उठाकर इस प्रकार बाँधें मानो कोई अदृश्य कुल्हाड़ी पकड़े हुए हों। अब झटके से सामने की ओर झुककर इस प्रकार अभ्यास करें मानो लकड़ी फाड़ रहे हों।

नीचे की ओर झुकते समय साँस बाहर छोड़ने तथा सीधे होते समय साँस भीतर खींचने का ध्यान रखें।

गर्भवती महिलाओं के लिए यह एक अत्यन्त लाभप्रद व्यायाम है। छातियों में दूध की वृद्धि करने में भी सहायक है। गर्भाशय तथा स्नायुओं को पुष्ट करता है।

व्यायाम 11 :– व्यायाम-8 के समान बैठकर दोनों हाथ दोनों दिशाओं में फैलायें। हथेलियाँ आकाश की ओर उन्मुख हों तथा अँगुलियाँ व अँगूठा आपस में मिले हुए हों। हाथों को कोहनी से मोड़कर कन्धों की ओर झुकायें। मिली हुई अँगुलियाँ कन्धों पर रखें।

इस स्थिति में दोनों कोहनियाँ नीचे से ऊपर की ओर तथा ऊपर से नीचे की ओर 10-12 बार गोल-गोल घुमायें।

व्यायाम 12 :– खड़े होकर दोनों हाथ दोनों ओर फैलायें। हथेलियाँ आकाश की ओर उन्मुख हों। हाथों को अन्दर की ओर मोड़कर कन्धों पर झुकायें। कोहनियाँ व्यायाम-11 के अनुरूप ही घुमायें।

लाभ :– इससे पूरे हाथ की नसों में रक्त का सञ्चालन तीव्र होगा।

हाथ के विभिन्न भागों के व्यायाम के लिए हमने यथासम्भव अनेक व्यायाम बता दिये हैं। मुख्य बात यही है कि हाथ के जिस अंग की ओर आप विशेष ध्यान देना चाहें, उस पर ध्यान टिकाकर उसे फैलायें, सिकोड़ें और घुमायें। लेकिन ये क्रियाएँ इस प्रकार होनी चाहिए मानो उस अंग पर विशेष ज़ोर पड़ रहा हो। यथा–हथेली में ही लीजिये–

इसके लिए हथेली व पूरी अँगुलियों को खूब ज़ोर लगाकर अच्छी तरह फैलायें और इसी प्रकार सिकोड़ें।

हाथ के व्यायामों के सम्बन्ध में मुख्य बात उस अंग पर ध्यान रखना तथा उस भाग के विषय में ही मन में चिन्तन करना है।

पेट के अधिकांश व्यायाम हम कोष्ठबद्धता से सम्बन्धित परिच्छेद में बता चुके हैं। कोष्ठबद्धता पर हमने आरम्भिक परिच्छेदों में इसलिए विस्तार से बता दिया है कि योग के किसी भी अंग का अभ्यास करने से पूर्व यह आवश्यक है कि शरीर मल–विमुक्त और स्वच्छ होना चाहिए।

हम यह भी पहले ही बता चुके हैं कि हम जो कुछ भी खाते हैं, उसका कुछ भाग तो आमाशय आदि विभिन्न स्थानों पर से गुज़रता हुआ माँस, मज्जा, रक्त और वीर्य आदि बनता हुआ शरीर की पुष्टि में लग जाता है, परन्तु जो भाग मल के रूप में बचा रहता है और बड़ी आँत के नीचे के भाग में जाकर इकट्ठा होता है, उसे निकल जाना चाहिए। यदि वह मल भली प्रकार विसर्जित नहीं होता, तो उससे शरीर में अनेक रोग पैदा हो जाते हैं।

मल के भली प्रकार विसर्जित न होने के अनेक कारण हैं। उनमें मुख्य कारण हैं–खाये हुए भोजन का अच्छी तरह परिपाक न होना, सही भोजन न खाना तथा उचित श्रम न करना।

कोष्ठबद्धता से सम्बन्धित परिच्छेद में जो आसन बताये गये हैं, उनसे भोजन के परिपाक में सहायता मिलती है और साथ ही मल–विसर्जन में भी।

इन आसनों का ध्येय उदर के भागों को सशक्त बनाकर उन्हें अपना कार्य करने में सक्षम बनाना है। यदि आँतें सक्षम और निर्दोष होंगी, तो भोजन स्वयं पचने लगेगा और समय पर ही मल–विसर्जन की हाजत भी होगी।

8

योग

योग का अर्थ
(Meaning of Yoga)

योगासन भारत के व्यायाम की प्राचीनतम विधि है। आजकल यह व्यायाम देश-विदेश में अत्यधिक लोकप्रिय हो रहा है। इसका कारण इसकी उपयोगिता है। योग आत्मा को परमात्मा से मिलाने का महत्त्वपूर्ण साधन माना जाता है। इस मधुर मिलन का माध्यम शरीर है। शक्तिशाली शरीर द्वारा ही परमात्मा के दर्शन हो सकते हैं, क्योंकि योग शरीर को शक्तिशाली बनाता है, इसलिए ही यह आत्मा को परमात्मा से मिलाने का महत्त्वपूर्ण साधन माना गया है। ईश्वर अलौकिक गुण, कर्म तथा स्वभाव वाला विद्यायुक्त है। यह आकाश के समान व्यापक है। जीव सत्य तथा चित्त है अर्थात् उसका अस्तित्व (वजूद) है तथा उसमें चेतन तत्त्व है। मनुष्य कर्म करने के लिए स्वतन्त्र है। वास्तव में जीव प्रकृति तथा ईश्वर में एक-दूसरे के साथ सम्बन्ध होना चाहिए तथा योग इन सम्बन्धों को बनाने में तथा दृढ़ करने में हमारा सम्बल व सहायक बनता है।

योग शब्द संस्कृत भाषा के शब्द 'युज्' से बना है, जिसका अर्थ है संयोग या मिलाप। इसलिए शरीर तथा मन के संयोग को योग कहते हैं। योग मनुष्य के गुणों, ताकतों या शक्तियों का पारस्परिक मिलाप है। इसके द्वारा मनुष्य की छिपी हुई ताकतों का विकास किया जाता है। योग और इसकी क्रियाओं के द्वारा मनुष्य को पूर्ण स्व-विश्वास प्राप्त हो जाता है।

योग मनुष्य के गुणों तथा शक्तियों का आपस में मिलना है। योग एक साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य की गुप्त या छिपी हुई शक्तियाँ Letent Power विकसित होती है। यह धर्म, दर्शन, शारीरिक सभ्यता तथा मनोविज्ञान का समूह है। इससे मनुष्य को आत्मविश्वास की प्राप्ति होती है। इसके द्वारा शरीर स्वस्थ तथ लचकदार बनता है। सत्य तो यह है कि योग शरीर तथा आत्मा की आवश्यकताएँ पूर्ण करने का सर्वोत्तम तथा उपयुक्त एवं सबल साधन है।

योग का इतिहास (History oh Yoga)

'योग' शब्द प्राचीन काल से प्रचलित है। भगवद्गीता में भी भगवान कृष्ण ने योग के बारे में वर्णन किया है। रामायण तथा महाभारत काल में भी इस शब्द का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। इन धार्मिक ग्रन्थों में योग द्वारा मोक्ष (Salvation) प्राप्त करने के बारे में विस्तारपूर्वक लिखा हुआ मिलता है। इसके बारे में अनेक विद्वानों ने भी महत्त्वपूर्ण बातें लिखी हैं। इन विद्वानों में पातजंलि (Patanjali) के अनुसार, ''चित की वृत्ति के निरोध का नाम योग है।''

{Yoga has been defined as the Nirodh of the virti of the citta (mind).}

डॉ. सम्पूर्णानन्द (Dr. Sampurnanand) के अनुसार, ''योग आध्यात्मिक कामधेनु है, जिससे जो मांगो, उपलब्ध होता है। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है कि उचित विधि से कार्य करना ही योग होता है।'' व्यास जी (Vyasji) लिखते हैं, ''योग का भाव समाधि है।''

इन विचारों से ज्ञात होता है कि योग का शाब्दिक अर्थ जोड़ना या संयोग करना है। योग के कारण मानवीय शरीर नीरोग तथा मन शुद्ध होने के कारण उसका प्रभु से मिलाप हो जाता है। इसके द्वारा शरीर नीरोग हो जाता है। मन की एकाग्रता बढ़ जाती है। इससे आत्मा तथा परमात्मा से एक हो जाना (घुल मिल) सरल हो जाता है।

प्राचीन समय के साधु-सन्तों की बातें हम सुनते आ रहे हैं। उनके मतानुसार किसी व्यक्ति को आत्मा तथा परमात्मा के साथ मेल करना है तो उसका मार्ग हमारा शरीर है। वही व्यक्ति आत्मा तथा परमात्मा को मिला सकता है या दर्शन कर सकता है जो शारीरिक तौर पर निरोग हो। निरोग तथा हृष्ट-पुष्ट शरीर के कारण ही आत्मा का परमात्मा से मिलन हो सकता है तथा उसे सर्वशक्तिमान परमात्मा के दर्शन हो सकते हैं। जीव तथा प्रभु का एक-दूसरे से सम्बन्ध होना आवश्यक है। योग इन सम्बन्धों को दृढ़ करने में सहायक होता है।

महर्षि पातंजलि ने योग के द्वारा स्वास्थ्य तथा निरोगता प्राप्त करने का ढंग बताया है। इसको 'अष्टांग योग' का नाम दिया जाता है। अष्टांग योग के प्रमुख अंग इस प्रकार हैं-

1. यम (Yama, Forbearance)
2. नियम (Niyama, Observance)
3. आसन (Asana, Posture)

4. प्राणायाम (Pranayama, Regulation of Breathing)
5. प्रत्याहार (Pratyahara, Abstraction)
6. धारणा (Dharana, Concentration)
7. ध्यान (Dhyana, Meditation)
8. समाधि (Samadhi, Trance)

इनका संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है-

अष्टांग योग की आठ अवस्थाएँ

(Eight Components of Ashtang Yoga)

1. यम (Yama, Forbearance) :– यह अनुशासन का वह साधन है जो मनुष्य के मन के साथ सम्बन्ध रखता है। इसका अभ्यास करने से मनुष्य अहिंसा, सच्चाई, चोरी न करना, पवित्रता एवं त्याग करना सीखता है। इसमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह सम्मिलित है।

2. नियम (Niyama, Observance) :– नियम वे ढंग हैं जो मनुष्य के शारीरिक अनुशासन से सम्बन्धित हैं। इसमें शरीर तथा मन की शुद्धि, सन्तोष, दृढ़ता तथा ईश्वर की आराधना है। साथ ही इसमें सफाई, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर की अधीनता सम्मिलित है।

3. आसन (Asana, Posture) :– मानवीय शरीर को अधिक से अधिक समय के लिए किसी विशेष स्थिति में रखने को आसन कहते हैं। जैसे रीढ़ की हड्डी को बिल्कुल सीधा रख कर तथा टाँगों को किसी विशेष दिशा में रखकर बैठने को पदम आसन कहा जाता है। इससे शरीर निरोग रहता है।

4. प्राणायाम (Pranayama, Regulation) :– एक स्थिर स्थान पर बैठकर किसी विशेष विधि अनुसार श्वास को भीतर ले जाने तथा बाहर निकालने की क्रिया को प्राणायाम कहते हैं। इसके तीन अंग हैं-(1) पूरक, (2) रोचक एवं (3) कुंभक।

5. प्रत्याहार (Pratyahara, Abstraction) :– प्रत्याहार का अर्थ मन तथा इन्द्रियों को उनकी सम्बन्धित क्रिया से हटाकर परमात्मा की ओर लगाना है। यह प्रत्याहार कहलाता है।

6. धारणा (Dharana, Concentration) :– इसका अर्थ मन को किसी विशेष ऐच्छिक विषय पर लगाना है। इस प्रकार एक ओर ध्यान लगाने से मनुष्य में एक महान् शक्ति उत्पन्न हो जाती है। इससे उसके मन की इच्छा पूर्ण होती रहती है।

7. ध्यान **(Dhyana, Meditation)** :– यह धारणा से और ऊँची अवस्था है, जिसमें मनुष्य दुनियादारी की भटकनों से ऊपर उठ जाता है तथा स्वयं में अन्तर्ध्यान हो जाता है।

8. समाधि **(Samadhi, Trance)** :– समाधि के समय मानवीय आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है।

योग की इन आठ अवस्थाओं में से प्रथम पाँच अवस्थाओं का सम्बन्ध बाह्य यौगिक क्रियाओं से है तथा शेष तीन अवस्थाओं का सम्बन्ध भीतरी यौगिक क्रियाओं से है।

योग के प्रथम चार अंग यम, नियम, आसन, प्राणायाम का दुनियादारी में रहने वाले लोग अभ्यास कर सकते हैं। प्रत्याहार, धारणा तथा समाधि का अभ्यास तो योगी, ऋषि या मुनि ही कर सकते हैं।

योग का मुख्य लक्ष्य शरीर को लचकीला, अरोग्य, जोशीला तथा जीवन की आवश्यकताओं से अधिक स्वस्थ रखना है। योग शरीर तथा आत्मा की आवश्यकताओं को पूर्ण करने का एक उचित साधन है। आत्मा को परमात्मा से मिलाकर आवागमन के चक्कर से छुटकारा पाना ही मुक्ति (Moksh) है। शारीरिक शिक्षा द्वारा योग के केवल दो साधन–आसन (Asnas) तथा प्राणायाम (Prarayama) सम्बन्धित है।

योग का महत्व **(Importance oh Yoga)**

योग का मानवीय शरीर के लिए बहुत महत्त्व है। यह हमें अरोग्य, सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट बनाता है। यह हमारे व्यक्तित्व में चार चाँद लगा देता है। सत्य तो यह है कि योग हमें उस दुनिया में ले जाता है जहाँ जीवन है, अरोग्य है और परम सुख है। योग तो ज्ञान की वह गंगा है जिसकी प्रत्येक बूँद में रोग नष्ट करने की शक्ति है। योग ईश्वर से मिलने का सर्वोच्च एवं सर्वोत्तम साधन है। शरीर, आत्मा तथा परमात्मा के मिलने का माध्यम है। एक अरोग्य शरीर द्वारा ही परमात्मा के दर्शन किए जा सकते हैं। योग शरीर को अरोग्य तथा शक्तिशाली बनाता है। योग व्यक्ति को सुयोग्य, गुणी तथा अरोग्य बनाता है। ये हमारे शरीर में शक्ति उत्पन्न करता है। योग केवल रोगी व्यक्तियों के लिए ही लाभकारी नहीं अपितु स्वस्थ व्यक्ति भी इसके अभ्यास से लाभ उठा सकते हैं। विशेष रूप से 40 साल के ऊपर वाले व्यक्तियों को योगाभ्यास अत्यधिक लाभकारी है।

योगाभ्यास द्वारा शरीर के सारे अंग अच्छी प्रकार से काम करते रहते हैं। योगाभ्यास द्वारा माँसपेशियाँ मज़बूत होती हैं और दिमागी सन्तुलन बढ़ता है। योग का महत्त्व इस बात से भी है कि देश-विदेश में भी इसकी लोकप्रियता बढ़ रही

है। देश-विदेश के डॉक्टरों तथा शारीरिक शिक्षा के अध्यापकों ने इसकी बहुत प्रशंसा की है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि योग का आधुनिक मानवीय जीवन में विशेष महत्त्व है।

योग-विज्ञान व्यक्ति के विकास में निम्नानुसार योगदान देता है-

1. मनुष्य की शारीरिक तथा मानसिक बुनियादी शक्तियों का विकास (Development of Physical and Latent Powers of Man) :- सभी आसन व्यक्ति की बुनियादी शक्तियों का विकास करते हैं। योग-नियम तथा आसन व्यक्ति के शारीरिक तथा मानसिक विकास में सहायक होते हैं। आसनों द्वारा शारीरिक क्रियाएँ करने से मानव के शरीर के सभी अंग हरकत में आ जाते हैं। इससे उनका समुचित विकास होता है। इससे शारीरिक विकास के साथ मानसिक विकास भी होता है, जैसे प्राणायाम द्वारा फेफड़ों के रोग दूर होते हैं।

2. शरीर की आन्तरिक सफाई (Internal Cleanliness of Body) :- योगाभ्यास करने से शरीर स्वस्थ रहता है एवं स्वच्छ रहता है एवं इसकी सफाई हो जाती है जैसे कि धोति क्रिया से आमाशय की सफाई होती है और बस्ती क्रिया से आंतड़िया साफ होती हैं। प्रत्याहार से दृढ़ता बढ़ती है।

3. शारीरिक अंगों की मज़बूती और उनमें लचक लाना (Development of Strength and Elasticity) :- योग द्वारा शारीरिक अंग सुदृढ़ होते हैं तथा आसनों द्वारा जोड़ों तथा हड्डियों का विकास भी होता है। रक्तचाप तीव्र हो जाता है। धनुरआसन तथा हल आसन रीढ़ की लचक बढ़ाने में सहायक होते हैं, जिससे मनुष्य में शीघ्र बुढ़ापा नहीं आता। मयूर आसन से कलाई मज़बूत होती है। इस प्रकार की क्रियाएँ करने से शरीर में मज़बूती तथा अंगों से समुचित लचक आती है।

4. शारीरिक प्रणालियों का उचित कार्य करना (Proper Hunctioning of Physical Posture) :- आसन करने से शरीर की सभी प्रणालियाँ ठीक काम करना आरम्भ कर देती हैं, क्योंकि शरीर के सारे अंग आसन करने से मज़बूत हो जाते हैं। प्राणायाम से श्वास प्रणाली का सारा काम ठीक हो जाता है, जैसे फेफड़ों की कसरत हो जाती है, पुट्ठे मजबूत होते हैं तथा अधिक से अधिक हवा फेफड़ों के अन्दर जाती है।

5. शरीर को अच्छी स्थिति में रखना (Maintaining the Body in Proper Posture) :- यह अच्छे व्यक्तित्व का एक आवश्यक गुण है। विक्रम आसन करने से घुटने आपस में नहीं टकराते। पद्म आसन करने से न तो कन्धे में कूब पड़ता है और न ही पेट आगे की ओर ढलकता है।

6. रोगों की रोकथाम तथा उपचार **(Prevention and Treatment of Diseases)** :– प्राणायाम करने से फेफड़ों के रोग नहीं होते। मतशेदर आसन तथा वक्र आसन से शक्कर (Diabaties) का रोग ठीक होता है।

7. थकावट दूर होना तथा ताजा रहना **(Refreshing after Removing Hatigue)** :– जीवन के झमेलों को पूरा करते हुए शारीरिक तौर से व मानसिक रूप से थक जाएँ तो शव आसन करने से पुनः तरोताज़ा (Refresh) हो सकते हैं।

8. मानसिक संतुलन व खुशी प्राप्त करने का उचित साधन **(Best means of achieving Mental Balance and Happiness)** :– पद्मासन में जब योगी बैठता है तो उसके चेहरे से चमक, उसकी आन्तरिक शान्ति तथा खुशी प्रकट होती है।

9. शरीर में लय (ताल) लाना **(Producing Rhythm in the Body)** :– श्वास पर काबू रखने से सभी क्रियाएँ धीरे-धीरे करने की आदत पड़ जाती है। शरीर में लय (Rhythm) आ जाती है तथा व्यक्ति शारीरिक शक्ति को संयम से खर्च कर सकता है।

10. मानसिक अनुशासन **(Mental Discipline)** :– यम का पालन करने वाला व्यक्ति अहिंसा का पालन करता है तथा चोरी नहीं करता। यम व नियम का पालन करने वाला व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं, अनुचित इच्छाओं और भावनाओं, संवेग, विचार आदि पर नियन्त्रण रखता है।

11. बुद्धि का तेज होना **(Sharpning of Intelligence)** :– प्राणायाम करने से स्वच्छ वायु फेफड़ों में पहुँचती है, रक्त-चाप तेज़ हो जाता है, पूर्ण भोजन तथा ताज़ी हवा अन्तिम कोशिका तक पहुँचते हैं। प्राणायाम करने वाले व्यक्ति का दिमाग तीव्र काम करने लगता है। शरीर और मन में चुस्ती-फुर्ती आ जाती है। शीर्षासन भी बुद्धि को तीव्र करने तथा स्मरण शक्ति को बढ़ाता है।

आसन

योग क्रिया के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के आसन किए जाते हैं। उनकी जानकारी इस प्रकार हैं–

1. पद्मासन (Padam Asana)

स्थिति (Position) :– इस आसन की स्थिति कमल के समान होती है। जब आसन लगाकर हाथ घुटनों के ऊपर रखे हों तो शरीर कमल जैसा लगता है। इसी कारण इसे पद्मासन कहते हैं।

पद्मासन की विधि
(Technique oh Padam Asana)

पद्मासन बहुत ही सरल तथा आसान है। प्रत्येक व्यक्ति इसे बड़ी आसानी से कर सकता है। सर्वप्रथम चौकड़ी मार कर बैठ जाओ, बैठने के पश्चात् दायाँ पाँव बायीं टाँग पर इस प्रकार रखो कि दायें पैर की एड़ी बायीं टाँग की पेडू की हड्डी को स्पर्श करे। स्मरण रहे कि रीढ़ की हड्डी बिल्कुल सीधी होनी चाहिए। भुजाओं को फैला कर हाथों को घुटनों तक ले जाओ और वहाँ जाने के पश्चात् काफी आसानी से यह आसन किया जा सकता है।

पद्मासन के लाभ
(Use of Padam Asana)

इसके लाभ इस प्रकार हैं-

1. इस आसन से पेट और दिल के रोग नहीं लगते।
2. इस आसन से कमर का दर्द दूर हो जाता है।
3. पेशाब के रोगों को दूर रखता है।
4. पद्मासन मन की एकाग्रता को बनाए रखता है।
5. इस आसन से पेट के रोग दूर रहते हैं और पाचन शक्ति भी बढ़ती है।

2. सर्वांग आसन
(Sarvang Asana)

स्थिति (Position) :– इस आसन में शरीर की स्थिति अर्द्ध-हल की भाँति होती है।

सर्वांगासन की विधि
(Technique of Sarvang Asana)

यह आसन करने के लिए सबसे पहले भूमि पर पीठ के बल सीधे लेट जाओ तथा हाथों को टाँगों के समान रखो। दोनों पाँवों को धीरे-धीरे उठाकर हथेलियों के साथ पीठ को सहारा देते हुए कुहनियों को भूमि से टिकाओ। सारे शरीर को बिल्कुल सीधा रखो ताकि पूरे शरीर का भार गर्दन तथा कन्धों पर पड़े। ठोड़ी को गर्दन के साथ स्पर्श करो। कुछ समय ऐसी अवस्था में रहकर धीरे-धीरे पहली वाली अवस्था में आ जाओ। सर्वांगासन या सर्व-अंग आसन शीर्षासन की पूर्ति है। जो व्यक्ति शीर्षासन नहीं कर सकते, उनको सर्वांगासन करना चाहिए।

सर्वांगासन के लाभ

(Uses of Sarvang Asana)

इस आसन के लाभ इस प्रकार हैं-

1. यह आसन करने से कब्ज़ दूर होती है।
2. खून का दौरा तेज़ और शुद्ध होता है।
3. बवासीर के रोगों से मुक्ति मिलती है।
4. मोटापा दूर होता है।
5. शरीर में चुस्ती और फुर्ती आती है।
6. पेट के रोगों से मुक्ति मिलती है। इस आसन से शीर्षासन के सारे लाभ उपलब्ध हो जाते हैं। पेट-गैस रोग नहीं रहता। पुरुषों और स्त्रियों की जननेन्द्रियों के दोष दूर हो जाते हैं।

मियाद (Duration) :– प्रारम्भ में इस आसन को एक मिनट से दो मिनट तक ही करें। धीरे-धीरे इस आसन का समय बढ़ाकर पाँच मिनट से सात मिनट तक किया जा सकता है। जो मनुष्य शीर्षासन नहीं कर सकता, उसे सर्वांगासन करना चाहिए।

3. हल आसन

(Hal Asana)

नामकरण (Nomenclature) :– शरीर की स्थिति हल की भाँति हो जाने से इस आसन को हल आसन कहते हैं।

सर्वांगासन की भाँति पीठ के बल लेट कर टाँगे तथा धड़ धीरे-धीरे ऊपर की ओर उठाकर टाँगों को ऊपर सीधा करके फिर आगे की ओर धीरे-धीरे लाना चाहिए तथा पैरों को भूमि के साथ लगा देना चाहिए। हथेलियाँ पीछे की ओर ले जाकर ज़मीन से लगा लेनी चाहिए। कुहनियों को सीधा रखना चाहिए। ठोड़ी व गर्दन घुटनों में लगा ली जाती है। पीठ से लेकर पैरों तक शरीर का सारा भाग खींचा हुआ होता है। तत्पश्चात् शरीर को भूमि पर पहले वाली स्थिति में लिटा दिया जाता है।

टिप्पणी :– यदि हाथ भूमि पर रखकर हल आसन करना कठिन हो तो कुछ दिनों के लिए हाथ कमर पर रख कर सहारा दिया जा सकता है। अभ्यास हो जाने से हाथ भूमि पर लगाकर आसन करना चाहिए ताकि आसन का पूरा लाभ प्राप्त हो सके।

सावधानियाँ (Precautions) :– औरतों को यह आसन दो मिनट से अधिक समय तक नहीं करना चाहिए। गर्भधारण से तीन महीने के पश्चात् यह आसन बिल्कुल नहीं करना चाहिए।

हल आसन के लाभ

(Uses of Hal Asana)

इस आसन के लाभ इस प्रकार हैं–

1. यह आसन करने से पेट की आँतड़ियों को शक्ति उपलब्ध होती है।
2. इस आसन के करने से पुट्ठे मज़बूत होते हैं।
3. यह आसन भूख बढ़ाता है तथा कब्ज़ दूर करता है।
4. सर्वांगासन की भाँति थायराइड ग्रन्थि को रोगमुक्त करता है। जिगर, तिल्ली और गुर्दे पर दबाव पड़ने से इन अंगों की मालिश हो जाती है, जिससे लाभ पहुँचता है तथा इन अंगों का बढ़ना भी रुक जाता है।
5. इससे रीढ़ की हड्डी में लचक आ जाती है। रीढ़ की हड्डी में लचक न होना बुढ़ापे की निशानी है। इस लचक करके शरीर अरोग्य रहता है तथा शरीर में शक्ति, उत्साह एवं फुर्ती रहती है।

समय अवधि (Duration) :– यह आसन आरम्भ में आधा मिनट तथा अभ्यास हो जाने पर दस मिनट तक किया जा सकता है।

4. चक्र आसन

(Chakra Asana)

नाम तथा स्थिति (Nomenclature and Position) :– इस आसन में शरीर की स्थिति गोले की भाँति हो जाती है तथा शरीर को चक्र में लाया जाता है। इसी कारण इसे चक्र आसन कहते हैं।

चक्र आसन की विधि

(Technique of Chakra Asana)

इस आसन से शारीरिक स्थिति बिल्कुल गोल हो जाती है। इस आसन को करते समय भूमि पर पीठ के बल लेट कर शरीर को ढीला छोड़ दिया जाता है। फिर लम्बे तथा धीरे-धीरे सांस लेते हुए शरीर के अंगों को खोल दो। सिर घुटनों को मोड़कर पाँवों की तलियों से भूमि से लगाओ। दोनों पाँव एक-दूसरे से एक फुट की दूरी पर हों। इसके पश्चात् हाथों को पीछे भूमि पर रखो। हथेलियों और अँगुलियों को भूमि पर जमा कर रखो। अब हाथों और पाँवों से शरीर को चक्र की शक्ल में

ले जाओ, सारे शरीर का आकर गोले की भाँति बन जाएगा। यह आसन करते समय श्वास की गति बिल्कुल साधारण हो और आँखें बन्द रखो।

दूसरा ढंग **(Another Technique)** :– चक्र आसन एक अन्य ढंग से भी किया जा सकता है। दीवार की और तीन फुट के फासले पर पीठ करके खड़े हो जाओ और हाथों को खिसकाते जाओ, हथेलियाँ दीवार के साथ लगाओ। अब धीरे-धीरे हाथों को भूमि की और सरकाते जाओ तथा धरती पर रखने की कोशिश करो। इस प्रकार अभ्यास करने से चक्र आसन करना आ जाता है।

समय **(Duration)** :– पहले-पहले शुरू में यह आसन बहुत कम समय (एक मिनट) तक किया जाए, फिर धीरे-धीरे समय तीन मिनट तक बढ़ा दो।

हल आसन के लाभ

(Uses of Chakra Asana)

चक्र आसन के लाभ इस प्रकार हैं-

1. यह आसन करने से गुर्दे के रोग दूर होते हैं।
2. शारीरिक कमज़ोरियाँ दूर होती हैं।
3. कमर दर्द से मुक्ति मिलती है।
4. शरीर के अंगों को लचकीला बनाता है।
5. पाचन शक्ति बढ़ती है।
6. गर्दन तनी रहने से थायराइड ग्रन्थि पर प्रभाव पड़ता है।
7. दृष्टि की खराबी तथा मन की चंचलता दूर होती है। दोनों पाँव तथा सारे जोड़ों का व्यायाम हो जाता है।
8. इस आसन से हरनिया (Harnia) आदि से मुक्ति मिलती है। जिगर (Liver), तिल्ली (Spleen), गुर्दा, पेशाब थैली तथा ग्रन्थि (Pancreas) इन सभी पर खिंचाव पड़ने से रक्त-चाप काफी तेज़ होकर इन रोगों से मुक्ति दिलाता है।
9. कब्ज तथा दमे के रोग को दूर करने में सहायता मिलती है।

इस आसन से धनुर, भुजंग आसन आदि से होने वाले लाभ भी उपलब्ध होते हैं।

5. धनुर आसन

(Dhanur Asana)

नामकरण तथा स्थिति **(Nomenclature and Position)** :– इस आसन में शरीर की स्थिति कमान जैसी हो जाती है। शरीर तथा घुटनों तक का भाग धनुष तथा आपस में जुड़े हुए तीर की भाँति लगता है। इसीलिए इस आसन का नाम धनुर आसन रखा गया है।

धनुर आसन की विधि
(Technique of Dhanur Asana)

धनुर आसन का अर्थ कमान जैसा आसन है। इसीलिए इस आसन की स्थिति कमान की तरह होती है। सबसे पहले धरती पर पेट के बल आराम से लेट जाओ। फिर घुटनों को पीछे की ओर मोड़ कर रखो तथा एड़ियों के निकट पांवों को हाथों से पकड़ लो। अब गहरा सांस खींच कर सिर तथा छाती को अधिक से अधिक जितना ऊपर उठा सकते हो, उठाओ। अब हाथों तथा पांवों को कसकर शरीर की स्थिति को कमान जैसा बना लो। अन्त में सांस छोड़ते हुए धीरे-धीरे शरीर को ढीला छोड़ते हुए पहली अवस्था में आ जाओ। इस आसन को तीन-चार बार करो।

नोट (Note) :– भुजंग आसन और धनुर आसन बारी-बारी करने चाहिए।

सावधानियाँ (Precautions) :– धनुर आसन में विशेष ध्यान रखना चाहिए कि कहीं भी शरीर को झटका न लगे तथा न ही किसी जोड़ में अकड़ आए। प्रारम्भ में घुटने साथ रहने से मुश्किल होती है। पहले-पहले घुटनों के बीच चार-पाँच इंच की दूरी रख लेनी चाहिए और अभ्यास हो जाने पर यह दूरी कम की जा सकती है।

धनुर आसन के लाभ
(Uses of Dhanur Asana)

इस आसन के लाभ इस प्रकार हैं-

1. शरीर का मोटापन दूर हो जाता है।
2. आमाशय तथा आँतड़ियों को ताकत मिलती है।
3. पाचन शक्ति में वृद्धि होती है।
4. गठिया जैसे रोग से छुटकारा मिलता है।
5. माँसपेशियों और रीढ़ की हड्डी में लचकीलापन आता है। शरीर की हड्डियों को शक्ति मिलती है। भुजंग आसन तथा सुलभ आसन के लाभ भी इससे प्राप्त हो जाते हैं।

6. मयूर आसन
(Mayur Asana)

नामकरण (Nomenclature) :– 'मयूर' संस्कृत का शब्द है। इस शब्द का अर्थ है 'मोर'। जब यह आसन किया जाता है तो आसन की स्थिति मोर से मिलती-जुलती होती है। इसीलिए इसे मयूर आसन कहते हैं।

मयूर आसन की विधि
(Technique of Mayur Asana)

इस आसन को करने के लिए शरीर हृष्ट-पुष्ट तथा सुधरा हुआ होना चाहिए। मयूर आसन करने के लिए पंजों के बल बैठ कर एड़ियाँ ऊपर उठा कर दोनों बाजू इकट्ठे करके हथेलियाँ धरती पर लगानी चाहिए। हाथों की अँगुलियाँ पैर की ओर हों तथा कुहनियों के ऊपर पेट का नाभि वाला भाग आये। हाथों को इस प्रकार रखना चाहिए कि शरीर का सारा भार उठाकर टाँगों का काम कर सके। अन्तट केवल पंजों का होगा। पैरों के पंजे आगे की ओर परन्तु इस आसन में हाथों के पंजे पीछे की ओर रखते हैं। हाथों को ऐसे रखने से शरीर का भार इन पर स्थित रह सकता है। हाथों को इस प्रकार रखकर पैरों को साथ-साथ रखते हुए पीछे की ओर करो। सिर को नीचा करके पैरों को धरती से ऊपर उठाओ, जिससे सारा शरीर धरती के समानान्तर हो जाए। कलाई के ऊपर वाला भाग थोड़ा-सा आगे की ओर होगा। इसमें नये योगी को श्वास रोकना चाहिए।

अवधि **(Duration)** :– प्रारम्भ में यह आसन चार-पाँच सैकिण्ड करना चाहिए। अभ्यास हो जाने पर इसको एक मिनट तक किया जा सकता है।

मयूर आसन के लाभ
(Uses oh Mayur Asana)

इस आसन के लाभ इस प्रकार हैं-

1. इस आसन से शरीर को कुछ ही सैकिण्डों में कसरत उपलब्ध हो जाती है जिससे शरीर हृष्ट-पुष्ट तथा सुन्दर बन जाता है।
2. शरीर में चुस्ती आ जाती है।
3. इस आस से शूगर (Sugar) का रोग ठीक होता है। गुर्दे की काम करने की शक्ति बढ़ती है।
4. शरीर में रक्त-चाप बढ़ने से शरीर सुडौल लगता है तथा जवानी बढ़ती है।
5. पेट के आन्तरिक अंग तथा फेफड़े मज़बूत हो जाते हैं। रक्त-चाप फेफड़ों से रुककर पेट के अंगों की ओर बढ़ता है, जिससे सारे अंग रोगमुक्त होकर सुचारु रूप में काम करने लग जाते हैं।
6. इस आसन से पाचन क्रिया ठीक हो जाती है। यह कब्ज दूर करने में सहायक होता है।

7. इससे भूख भी बढ़ती है। अनुचित भोजन के प्रभाव को दूर करता है।
8. इस आसन से पेट-गैस रोग दूर होता है। पेट के ऊपर दबाव पड़ने से जिगर तथा पित्त का बढ़ना रुक जाता है। जिगर सही ढंग से काम करने लग जाता है।

7. शव आसन

(Shav Asana)

नामकरण (Nomenclature) :– सभी आसनों में किसी न किसी अंग पर खिंचाव पड़ता है तथा साथ ही साथ कुछ अंगों को आराम मिलता है। फिर भी आसन करने के उपरान्त शरीर को शिथिल (Relax) करने के लिए शव आसन आवश्यक है। शव आसन में शरीर के सारे अंग तथा दिमाग शिथिल होते हैं। इसी कारण इसे शव आसन कहा जाता है।

शव आसन की विधि

(Technique of Shav Asana)

इस आसन की विधि या तकनीक जितनी आसान है, उतना ही इसे करना कठिन है, क्योंकि इस विधि में सभी अंगों को शिथिल करने के साथ-साथ मन को बाहरी दुनिया से हटाकर एकाग्र करना होता है।

यह आसन को करते समय लेट कर सारे शरीर को ढीला छोड़ दिया जाता है। यह आसन करने के लिए धरती पर पीठ के बल सीधे लेट जाओ। शरीर के सभी अंगों को बिल्कुल ढीला छोड़ दो। धीरे-धीरे लम्बे श्वास लो। पैरों के बीच की दूरी एक से डेढ़ फुट तक होनी चाहिए। आँखें बन्द रखो तथा यह ध्यान में लाएँ कि शरीर आराम करने की स्थिति में है। हथेलियों को आकाश की ओर करके शरीर से थोड़ी दूरी पर रखो। कुहनियाँ धरती पर हों, पैरों के पंजे धरती के साथ होने चाहिए। आँखें बन्द करके किसी अंग से शिथिल करना आरम्भ कर सकते हैं, परन्तु पैरों से आरम्भ करना उचित रहेगा। पेशियाँ तो पहले ही आराम के रूप में होंगी तथा ध्यान रखना चाहिए कि सभी अंग पैर से सिर तक शिथिल हो गए हैं। श्वास क्रिया को सामान्य करना ही आसन की मुख्य विशेषता है।

यदि श्वास उचित ढंग से लिया जाए तो अभ्यास करने वालों को नींद आने लग जाती है। आँखें मूँद कर अर्न्तध्यान होकर सोचो कि शरीर आराम की अवस्था में है।

अवधि (Duration) :– यह आसन करने का समय चार से पाँच मिनट तक है।

नोट (Note) :– इस आसन का अभ्यास प्रत्येक आसन के अंत में करना आवश्यक है।

शव आसन के लाभ
(Uses of Shav Asana)

इस आसन के लाभ इस प्रकार हैं-

1. इस आसन से नाड़ी-प्रणाली मज़बूत होती है।
2. रक्त-चाप तेज़ तथा मानसिक तनाव से छुटकारा मिलता है।
3. शारीरिक थकावट दूर होती है और सैलों (Cells) तथा तन्तुओं (Tissues) को आराम प्राप्त होता है।
4. नाड़ियों में रक्तचाप बढ़ने के कारण सारा मैल शरीर से बाहर निकल जाता है।
5. इस आसन से दिमाग को ताज़गी मिलती है।
6. काम करने की शक्ति बढ़ने से चुस्ती तथा फुर्ती आती है।
7. नाड़ियों की कमज़ोरी तथा उनके कारण उत्पन्न होने वाले रोगों को दूर करने में सहायता करता है।
8. शिथिल होने के कारण माँसपेशियों की शक्ति बढ़ती है। वह अधिकतम काम करने का सामर्थ्य रख सकती हैं।

प्राणायाम

प्राणायाम तथा इसका महत्त्व
(Pranayama and its Importance)

परिभाषा (Definition) :– प्राणायाम दो शब्दों प्राण+याम के संयोग से बना है। 'प्राण' से भाव है 'जीवन' तथा याम से 'नियन्त्रण' अर्थात् प्राणायाम का भाव है–जीवन का नियन्त्रण या श्वास का नियन्त्रण। प्राणायाम वह क्रिया है जिससे जीवन की शक्ति को बढ़ाया जाता है तथा उसे काबू किया जाता है।

मनु ने मनुस्मृति में कहा है- ''प्राणायाम से मनुष्य के सभी दोष खत्म हो जाते हैं तथा कमियाँ दूर हो जाती हैं।''

प्राणायाम का आधार
(Basis of Pranayama)

श्वास को बाहर निकालना, फिर अन्दर खींचना तथा अन्दर ही रोक कर फिर कुछ देर उपरान्त बाहर निकालने की यह तीनों क्रियाएँ प्राणायाम का आधार है। इन

तीनों क्रियाओं को अलग-अलग नाम दिए गए हैं। जैसे-

(क) श्वास बाहर निकालने की क्रिया को रेचक कहते हैं।

(ख) जब श्वास अन्दर की ओर खींचते हैं तो इस क्रिया को पूरक कहते हैं।

(ग) श्वास अन्दर खींच कर वहीं पर रोकने की क्रिया को कुम्भक कहते हैं।

प्राण के नाम

(Names oh Prana)

व्यक्ति के पूरे शरीर में प्राण समझा जाता है। इसके पाँच नाम हैं जो इस प्रकार हैं-

1. प्राण-यह गले से दिल तक होता है। इस प्राण की शक्ति द्वारा श्वास शरीर में नीचे तक जाता है।
2. अपाण-नाभि से नीचे वाले प्राण को अपाण कहते हैं। छोटी तथा बड़ी अन्तड़ियाँ यही प्राण होता है। यह मल पदार्थ जैसे मूत्र, हवा तथा मल को शरीर से बाहर निकालने में सहायता करता है।
3. समाण-नाभि तथा दिल तक रहने वाली क्रिया को समाण कहते हैं। यह प्राण पाचन-क्रिया तथा एड्रीनल गिल्टी की काम करने की समर्था को बढ़ाती है।
4. उदाण-गले से सिर तक रहने वाले प्राण को उदाण कहते हैं। इसी प्राण के कारण नाक, कान, आँखें तथा दिमाग का काम होता है।
5. ध्यान-यह प्राण शरीर के सभी भागों में होता है तथ शरीर के अन्य प्राणों से संयोग करता है। इसके कण्ट्रोल (नियंत्रण) में ही शरीर हिलता-डुलता रहता है।

प्राणायाम करने की विधि

(Technique of doing Pranayama)

प्राणायाम श्वासों पर नियंत्रण करने के लिए किया जाता है। इस क्रिया द्वारा श्वास अन्दर की ओर खींच कर रोक लिया जाता है तथा कुछ समय रोकने के पश्चात् फिर श्वास बाहर निकाला जाता है। इस प्रकार श्वास को धीरे-धीरे नियंत्रण करने का समय बढ़ाया जा सकता है। अपने नाक के नथुने को बन्द करके बायें नथुने से श्वास खींचें। इस प्रकार आठ बार करो। इसके पश्चात् नौ तथा दस गिनते हुए श्वास रोके रहो। तत्पश्चात् बायां नथुना बन्द करके आठ तक गिनती करते हुए श्वास थोड़ी

निकालें तथा फिर नौ दस गिन कर। इस प्रकार सारा श्वास बाहर निकल जाएगा। अब उसी प्रकार दाएँ नथुने से गिनते हुए श्वास खींचो तथा नौ दस तक गिन कर इसे रोक दो। फ़िर दाएँ नथुने को बन्द करके बाएँ से आठ गिनते हुए श्वास बाहर निकालो तथा नौ दस तक रोको।

प्राणायाम के प्रकार

(Types of Pranayama)

हमारे शास्त्रों में प्राणायाम कई प्रकार के दिए गए हैं, परन्तु आमतौर से निम्नलिखित आठ प्रकार के होते हैं–

1. सूर्य भेदी प्राणायाम,
2. उजयी प्राणायाम,
3. भ्रमरी प्राणायाम,
4. भस्त्रका प्राणायाम,
5. कपाल भाती प्राणायाम,
6. शीतकारी प्राणायाम,
7. शीतली प्राणायाम एवं
8. मूर्छा प्राणायाम

1. सूर्य भेदी प्राणायाम :– यह प्राणायाम करने से शरीर में गर्मी उत्पन्न होती है। इससे इच्छाशक्ति में बढ़ोत्तरी होती है तथा सामर्थ्य बढ़ती है। इस प्राणायाम को पद्मासन लगाकर करना चाहिए। गर्दन, छाती, पीठ तथा रीढ़ की हड्डी को सीधा रखना चाहिए। अपने बायें हाथ की अँगुली से नाक का बायाँ छेद बन्द करके दायें छेद से श्वास खींचा जाता है तथा श्वास अन्दर खींचकर कुम्भक किया जाता है। जब तक श्वास रोका जा सके, रोकना चाहिए। तत्पश्चात् दायें अँगूठे से दायें छेद को दबा कर बायें छेद से आवाज़ करते हुए श्वास को बाहर निकाला जाना चाहिए। पहले तीन बार अभ्यास होने से पन्द्रह बार किया जा सकता है। इस क्रिया में श्वास धीरे लेना चाहिए तथा कुम्भक भाव श्वास रोकने का समय बढ़ाना चाहिए।

2. उजयी प्राणायाम :– पद्मासन लगाकर श्वास शक्ति से बाहर निकालना तथा अन्दर खींचना उजयी प्राणायाम कहलाता है। श्वास लेते समय खर्राटे भरी ध्वनि उत्पन्न करनी चाहिए।

उपयोग (Advantages) :– (i) यह प्राणायाम करने से नाक, गले, टॉन्सिल तथा कान के रोग नहीं लगते।

(ii) आवाज में मिठास आ जाती है। संगीतकारों के लिए यह प्राणायाम बहुत ही उपयोगी है।

3. भ्रमरी प्राणायाम :– किसी आसन में बैठकर कुहनियों को कन्धों के समान करके श्वास लिया जाता है। कुछ समय तक श्वास रोकने पर श्वास बाहर निकालते हुए भँवर जैसी ध्वनि गले से निकाली जाती है। दो सैकिण्ड तक श्वास निकाल कर रोका जाता है। इसी प्रकार ध्वनि करते हुए श्वास अन्दर खींचा जाता हैं। इस प्राणायाम का अभ्यास सात से दस बार किया जा सकता है। जहाँ तक हो सके, रेचक लम्बा किया जाना चाहिए। ध्वनि तथा रेचक करते समय मुँह बन्द रखना चाहिए।

उपयोग (Advantages) :– (i) गले के रोग दूर हो जाते हैं।

(ii) इसके अभ्यास से आवाज़ साफ तथा मीठी होती है।

4. भस्त्रा का प्राणायाम :– इस प्राणायाम में श्वास लुहार की धौंकनी की भाँति अन्दर तथा बाहर लिया और निकाला जाता है। फिर दोनों द्वारों से श्वास बाहर तथा अन्दर किया जाता है। इस प्राणायाम को आरम्भ में धीरे तथा बाद में इसकी गति बढ़ाई जाती है।

उपयोग (Advantages) :– (i) मनुष्य का मोटापां घट जाता है।

(ii) मन की इच्छा शक्तिशाली होती है तथा विचार शुद्ध रहते हैं।

5. कपाल भाती प्राणायाम :– कपाल भाती प्राणायाम का भस्त्रका प्राणायाम से केवल यही अन्तर है कि इसमें रेचक करते समय जोर लगाया जाता है जबकि भस्त्रका प्राणायाम में पूरक तथा रेचक दोनों में ही जोर लगाना पड़ता है। श्वास को बाहर निकालते हुए कंठ को झटका दिया जाता है। पूरक क्रिया द्वारा पेट साधारण अवस्था में आ जाता है। नाक से पूरा जोर लगाकर श्वास बाहर निकाला जाता है। इसमें श्वास लेने का प्रयत्न नहीं किया जाता। यह प्राणायाम पहले धीरे-धीरे तथा फिर तीव्र किया जाता है। आरम्भ में यह प्राणायाम पन्द्रह बार किया जा सकता है। फिर तीस बार तक किया जा सकता है।

6. शीतकारी प्राणायाम :– शी-शी की ध्वनि उत्पन्न होने के कारण इसको शीतकारी प्राणायाम कहा जाता है। यह प्राणायाम करने से शरीर को ठण्डक मिलती है। सिद्ध आसन में बैठकर दोनों हाथों को घुटनों पर रख लिया जाता है। फिर आँखों को बंद करके दाँत जोड़ लिए जाते हैं। जीभ का अग्र भाग दाँतों के साथ लगाकर दूसरे भाग को तालू के साथ लगा लिया जाता है। होठों को खुला रखा जाता है। श्वास मुँह द्वारा खींचा जाता है। श्वास खींचने पर रोक लिया जाता है। इसके पश्चात् नाक के द्वारों से श्वास बाहर निकाला जाता है। पहले दो तीन बार तथा अभ्यास हो जाने पर पन्द्रह बार किया जाता है।

उपयोग (Advantages) :– (i) इससे रक्तचाप ठीक रहता है।

(ii) गुस्से पर नियन्त्रण किया जा सकता है।

(iii) गले के रोग तथा शारीरिक गर्मी दूर होती है।

(iv) मुँह में पड़े छाले ठीक हो जाते हैं।

7. शीतली प्राणायाम :– इससे शरीर में ठण्डक बढ़ती है। पद्मासन लगाकर नाक के दोनों छेदों से श्वास निकाला जाता है। जीभ को मुँह से बाहर निकाल कर दोनों किनारे मोड़ कर नाली-सी बना ली जाती है। श्वास अन्दर खींचते हुए इस नाली का प्रयोग करना चाहिए। फिर जीभ मुँह के अन्दर करके श्वास निकाला जाता है। जब प्यास लगने पर पानी न मिले तो इस का अभ्यास विशेष उपयोगी होता है। इसे आठ-दस बार करना चाहिए।

8. मूर्छा (नाड़ी शोध) प्राणायाम :– इस प्राणायाम से नाड़ियों की सफाई होती है। सिद्ध आसन में बैठकर नाक के बायीं ओर से श्वास लेना चाहिए। श्वास लेकर कुम्भक किया जाए। इसके पश्चात् नाक की दूसरी ओर से श्वास धीरे-धीरे बाहर निकाला जाता है। फिर दायीं नाक द्वारा श्वास अन्दर भरा जाता है। कुछ देर के लिए आन्तरिक कुम्भक किया जाता है तथा साथ ही बायें नाक द्वारा श्वास बाहर निकाल दिया जाता है। इसमें 1:2:2 का अनुपात होना जैसे कि श्वास लेने में चार सैकिण्ड, श्वास रोकने में दस सैकिण्ड, श्वास निकालने के लिए दस सैकिण्ड। धीरे-धीरे कुम्भक को बढ़ाया जा सकता है। कुम्भक द्वारा ऑक्सीजन फेफड़ों के सभी छिद्रों में पहुँच जाती है। रेचक द्वारा फेफड़े सिकुड़ जाते हैं तथा हवा बाहर निकल जाती है।

उपयोग (Advantages) :– (i) इस प्राणायाम से फेफड़ों के रंग को लाभ पहुँचता है। (ii) दिल की कमज़ोरी को लाभ पहुँचता है।

प्राणायाम का महत्त्व
(Importance of Pranayama)

शरीर की स्वच्छता के लिए जैसे स्नान आवश्यक है, वैसे ही मन की स्वच्छता के लिए प्राणायाम अति आवश्यक है। इस आसन के करने से खून साफ़ होता है, क्योंकि हवा विशेष मात्रा में शरीर के अन्दर जाती है। शरीर का रक्त-चाप होता ठीक है। खून के चक्र बढ़ने से नाड़ी-प्रणाली तथा गिल्टी प्रणाली स्वस्थ रहती है। यह दोनों ही आरोग्यता की नींव हैं। शरीर के प्रत्येक सैल को पूर्ण खुराक उपलब्ध होती है। फेफड़ों तथा दिमाग के कई रोग दूर हो जाते हैं। नाड़ी-प्रणाली (Nerve-system) मज़बूत होती है।

प्राणायम करने से शारीरिक थकावट दूर हो जाती है। चेहरे पर चमक तथा ताज़गी का निखार आ जाता है। काम करने की सामर्थ्य बढ़ जाती है। श्वास के रोग जैसे कि टॉन्सिल आदि से छुटकारा मिलता है।

प्राणायाम से संगीतकारों को विशेष लाभ होता है, क्योंकि आवाज़ सुरीली तथा साफ हो जाती है। इच्छा-शक्ति (Will Power) को बल मिलता है, सुखमना नाड़ियाँ साफ हो जाती हैं। इससे भूख अधिक लगने लगती है, जिससे आरोग्यता में बढ़ोत्तरी होती है।

इससे मन की चंचलता समाप्त हो जाती है। जैसे आग में सोना-चाँदी डालने से इनका मैल समाप्त हो जाता है, वैसे ही प्राणायाम से मन तथा बुद्धि का मैल धुल जाता है। इन्द्रियों पर नियन्त्रण पा लिया जाता है। मनुष्य की आत्मा बलवान होती है। आत्मा पर पड़े बुरे संस्कार समाप्त हो जाते हैं तथा अच्छे संस्कार पनपते हैं। प्राणायाम करने से पेट तथा छाती की माँसपेशियाँ सुदृढ़ होती हैं। पेट के अन्दर विशेष अंगों की मालिश हो जाती है। वह अंग रोगमुक्त तथा सुदृढ़ होते हैं। इन अंगों के आरोग्य तथा सुदृढ़ बने रहने से भोजन पाचन तथा हजम होने में विशेष लाभ होता है।

शुद्धि-क्रिया

शुद्धि क्रिया क्या है?

(What is Shuddhi Kriya)

शुद्धि क्रिया की योग में उतनी ही महत्ता है, जितनी व्यायाम तथा शारीरिक व्यायाम की। व्यायाम तथा शुद्धि क्रिया का पारस्परिक चोली दामन का साथ है, यद्यपि हम व्यायाम चाहे जितना करें। यदि हम शुद्धि क्रिया नहीं करते, हमें व्यायाम का कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता। शुद्धि क्रिया हमारे शरीर के साथ-साथ मन को साफ भी करती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नियमपूर्वक शारीरिक व्यायामों का लाभ हम शुद्धि क्रिया करके ही प्राप्त कर सकते हैं।

शुद्धि क्रिया के भेद

(Types of Cleaning Processes)

शुद्धि क्रियाओं को हम मुख्य रूप में तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं-

(1) सात क्रियाएँ, (2) विचार की शुद्धि, (3) वायुमण्डल की शुद्धि।

1. सात क्रियाएँ (Sat Kriya) :- इन क्रियाओं द्वारा हम शरीर साफ रख सकते हैं। इनमें नेति, जल नेति, धौति, वस्ती, नौलि, त्राटक तथा कपालभाती आदि सम्मिलित है।

2. विचारक शुद्धि (Bhav Shuddhi or Purification of Thoughts):– विचारक शुद्धि के लिए कार्तिकेय चाहता है कि– (1) हमारे मन में समस्त ब्रह्माण्ड का दृष्टिकोण हो, (2) हमारे दिल में बुराई न हों, (3) हमारे विचार शुद्ध हों, (4) हमारा शरीर अच्छे कार्य करने में लगा हो। हमें इन चार आदर्शों पर चलना चाहिए।

3. वायुमण्डल की शुद्धि (Purification of the Atmosphere) :– शरीर हमारी आत्मा (जान) के लिए एक खोल है। ज्ञानेन्द्रियों से आत्मा को समझा नहीं जा सकता। रूहानी साधनों से इसको अनुभव किया जा सकता है। यह शारीरिक ढाँचा मानवीय सेवा का साधन हो सकता है। हमारा ब्रह्माण्ड परमात्मा की शान दिखाता है। हमें तंग दिल नहीं होना चाहिए। हमें अपना मन, विचार तथा कार्यों को शुद्ध करने की शपथ उठानी चाहिए। हमें दूसरों के साथ मिलकर कार्य करना चाहिए तथा किसी को भी नाराज़ नहीं करना चाहिए। हमें दुखी तथा दबे कुचले लोगों की सेवा करनी चाहिए। यह सेवा निष्काम भाव से होनी चाहिए। हमें हमेशा सत्य वचन बोलने चाहिए और ऐसे कार्य करने चाहिए कि हम भी नेक बने तथा शेष भी उनसे लाभ उठाएँ। इसके अतिरिक्त हमें सहनशील होते हुए दूसरों की उन्नति पर ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए।

सात क्रियाओं में निम्नलिखित क्रियाएँ सम्मिलित हैं–

1. **जल नेति :–** एक टोंटीदार लोटा लें, जिसमें 500 ग्राम जल आ सकता है। टोंटी के आगे का भाग इस प्रकार बना हुआ हो जो कि नाक के छिद्रों में सही आ सकता है। लोटे में गर्म नमक मिला पानी लो। पानी इतना गर्म होना चाहिए, जिसको सहन किया जा सके। पानी में उतना नमक डालो, जितना दाल बनाते समय डाला जाता है। कागासन में बैठ जाओ। गर्म नमक मिले जल वाले लोटे (बर्तन) को हथेली पर रखो। नाक का जो स्वर चल रहा हो उधर के नाक के छेद में टोंटी को लगाओ। जिस स्वर में टोंटी लगी हो, उसी ओर सिर को जहाँ तक हो सके, झुकाओ। ऐसा करते ही नाक के दूसरे छेद में पानी गिरना आरम्भ हो जाएगा। नाक के दोनों छेदों में बारी-बारी एक लोटा गर्म नमक पानी का निकालो। पानी निकालते समय मुँह को खुला रखो। श्वास मुँह से लो तथा मुँह द्वारा ही छोड़ो। यदि क्रिया करते समय नाक से थोड़ा-सा भी सांस लिया तो पानी ऊपर चढ़ने से घबराहट होगी। नाभि पर 90^0 का कोण बनाते हुए झुको। ठोड़ी को कण्ठ से लगाओ। सिर को दायें, बायें तथा ऊपर-नीचे घुमाओ ताकि नाक के छिद्रों में चढ़ा पानी निकल जाए। झुकते हुए दोनों हाथ कमर पर रखो।

सावधानी :– जल नेति करने के पश्चात् भस्तरिका अवश्य करनी चाहिए।

लाभ :– 1. इससे बुद्धि तीव्र होती है। भूल जाने का दोष दूर होता है।

2. आँखों की ज्योति बढ़ती है।

3. नेत्र दोष, आँखों में लाली, आँखें आना, रात को दिखाई न देना, धुंध, कीचड़ आदि दूर होते हैं।

4. मस्तिष्क तथा नाक सम्बन्धी सभी दोष दूर होते हैं, जैसे पागलपन, फुन्सियाँ, बढ़ा माँस, नजला-जुकाम।

5. सभी प्रकार का सिर दर्द, नींद न आना तथा नींद बहुत आना दूर होते हैं।

6. बाल पकने तथा झड़ने बन्द होते हैं।

2. सूत्रनेति :– सूत्रनेति को गर्म नमक वाले पानी में पूर्णतया भिगोकर बाँटते हुए भागों को आगे की अर्धचक्र बनाओ। पाँवों के बल कागासन में बैठकर रीढ़ की हड्डी को सीधा रखते हुए अपने दोनों हाथों में धीरे-धीरे नाक के छिद्र में (जिसका स्वर चलता है) नेति डाल दो। लम्बा साँस लो। गले में नेति आ जाने पर अँगूठे के साथ वाली तर्जनी तथा मध्यमा अँगुलियाँ गले के भीतर ले जाओ। नेति के बँटे हुए भाग को आगे से पकड़ो। इसको धीरे-धीरे मुँह से बाहर लाओ। फिर नाक से ही वापिस लौटा दो। इसी प्रकार दूसरी सूत्रनेति नाक के दूसरे छेद में डालकर मुँह द्वारा बाहर निकाल लो। एक हाथ से नेतियों के बँटे हुए भागों को पकड़ो। दूसरे हाथ से नेति के बँटे हुए भागों को पकड़ कर धीरे-धीरे अन्दर बाहर पाँच-सात बार ऐसा करो जैसे दही बिलोया जाता है। फिर मुँह द्वारा नेति बाहर निकालो।

सावधानियाँ :– 1. सूत्रनेति की क्रिया करने के एक घण्टा पश्चात् थोड़ा गर्म किए हुए गाय के शुद्ध घी की 10-10 बूँदें नाक के छिद्रों में डालो।

2. सूत्रनेति अनुभवी योगाचार्य द्वारा तैयार की हुई प्रयोग में लानी चाहिए। यह कच्चे सूत्र का बँटा हुआ मुलायम तथा मोटा डोरा होता है। इसमें गाँठ नहीं होती।

3. जो लोग सूत्रनेति नहीं कर सकते, उनको जलनेति या रबड़ की नेति प्रयोग करनी चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि डोरे की नीति रबड़ की नेति से अधिक सफाई करती है।

लाभ :– 1. मस्तिष्क अपना कार्य सुचारु रूप से करता है। इसलिए मिरगी, पागलपन, हिस्टीरिया आदि रोगों के उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं रहती।

2. नेति के दबाव से कफ वाली नाड़ियों का समस्त मल तथा प्रतिदिन बनने वाला मल बाहर निकल जाता है। सिर के भाग में नसें शुद्ध होकर अमृत उत्पन्न करने के योग्य हो जाती हैं।

3. यह क्रिया प्रत्येक आयु के व्यक्ति (पुरुष तथा स्त्रियाँ) सुविधापूर्वक कर सकते हैं तथा निरोग रह सकते हैं।

4. बाल झड़ने रूक जाते हैं।

5. नींद कम आना या अधिक आना दूर होता है।

6. कन्धों के ऊपर के अंगों जैसे, आँख, कान, दाँत, गला तथा सिर के उन रोगों का नाश होता है जो जुकाम से उत्पन्न होते हैं।

7. पुराना सिर दर्द तथा आधे सिर का दर्द दूर होता है।

8. आँखों की ज्योति बढ़ती है तथा ऐनक उतर जाती है।

9. दाँतों के रोग जैसे दाँतों का हिलना, पायरिया आदि दूर होते हैं।

10.सुनने की शक्ति तथा स्मरण शक्ति तीव्र होती है।

3. घी नेति :– कागासन में बैठ जाओ। जल नेति की भाँति टोंटी वाले बर्तन में थोड़ा गर्म घी डालो। मुँह को सीधा रखो। नाक के एक छिद्र में टोंटी लगाओ। नाक के दूसरे छिद्र को अँगूठे से बन्द करो तथा सिर को थोड़ा ऊपर उठाओ। ऐसा करने से घी मुँह में जाने लगेगा। उसको धीरे-धीरे पीते जाओ। ताकत अनुसार जितना घी आप पचा सको, बारी-बारी नाक में दोनों छिद्रों से पीयो।

लाभ :– 1. नाक से रक्त आने को रोकता है।

4. कलापभाति :– इसको करने की सर्वोत्तम विधि फुट लाक लगाकर बैठकर करना है। जब छाती साधारण श्वास भीतर खींचने की अवस्था में हो तो पेट को भीतर खींचते हुए सांस को बाहर फेंको। पेट को ढीला छोड़ दो। सांस को स्वयं भीतर जाने दो। अपनी शक्ति अनुसार बार-बार सांस भीतर लो तथा बाहर छोड़ो। इसके प्रकार-

(1) वस्त्र धोति डण्ड धोति (2) वस्ती (3) नेति जल नेति, सूत्र नेति, दूध नेति (4) नौलि (5) त्राटक (6) कपालभाति (भस्तरिका) (7) कुंजल (गजकरनी) (8) बाघी (9) शंख प्रक्षलन वरिसार है।

5. कुंजल :– इसके लिए साफ वस्त्र द्वारा छना हुआ गर्म पानी, जिसको सहन किया जा सके, चाहिए।

कागासन में बैठकर गिलास के साथ पानी पीना आरम्भ करो, तब जब पेट भर जाए या उल्टी करने की इच्छा होने लगे, दोनों पाँवों को आपस में मिलाओ। नाभि पर 90^0 का कोण बनाते हुए खड़े हो जाओ। अपने बायें हाथ को पेट पर रखो। दायें हाथ की तीन अँगुलियाँ (तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका) को मिलाओ तथा मुँह के भीतर दूसरी छोटी जीभ तक ले जाओ। धीरे-धीरे इन तीन अँगुलियों को ध्यान से

छोटी जीभ पर घुमाओ। पानी बाहर निकलते ही अँगुलियों को एकदम बाहर निकाल लो तथा धार बनाकर पानी को बाहर निकालने दो। फिर बार-बार इन तीन अँगुलियों को छोटी जीभ पर घुमाओ जब तक कि उल्टी आने पर भी पानी न निकले। अंत में खट्टा या कड़वा पानी निकलेगा। फिर एक गिलास गर्म पानी पी लो तथा उसी तरह बाहर निकालो।

सावधानियाँ :– 1. पानी न अधिक गर्म हो न ठण्डा, यह इतना गर्म हो कि सहन किया जा सके।

2. कुंजल क्रिया करते समय शरीर को ऊपर-नीचे न करो।

3. यह क्रिया किसी योग विशेषज्ञ से सीख कर करनी चाहिए।

4. कुंजल करने के दो ढाई घण्टे पश्चात् स्नान करना चाहिए, नहीं तो हानि हो सकती है।

सूर्य नमस्कार

(भगवान सूर्य प्रकाश, ऊर्जा और ज्ञान के स्रोत हैं। आसन अभ्यास करने से पूर्व सूर्य नमस्कार करने से शरीर में लचीलापन आ जाता है। सूर्य नमस्कार सब व्यायामों में श्रेष्ठ है। जिस प्रकार सूर्य की बारह कलाएँ होती हैं, उसी प्रकार इस के बारह क्रम हैं।

स्थिति एक

1. दोनों हाथों को बगल में रखते हुए पूर्व दिशा की ओर मुँह करके सूर्योदय के समय सीधे खड़े हो जायें।
2. दोनों हाथों को छाती से चिपकाकर नमस्कार की मुद्रा में रखें। अँगूठे छाती के मध्य भाग पर व कलाई सामने की ओर दृढ़ रहे।
3. आँखें बन्द कर 'ॐ मित्राय नमः' का उच्चारण कर सूर्य को नमस्कार कर आँखें खोलें।

स्थिति दो

1. श्वास भरते हुए दोनों हाथों को सिर के पीछे ले जायें और शरीर को तानिये।
2. 'ॐ रवये नमः' का उच्चारण करें।
3. दोनों हाथ इस तरह ऊपर ले जायें कि हथेली सामने की ओर तथा सिर दोनों भुजाओं के मध्य रहे।
4. कमर के ऊपरी भाग को पीछे ले जायें।

स्थिति तीन

1. श्वास छोड़त हुए 'ॐ सूर्याय नमः' का उच्चारण करें।
2. कमर तथा भुजाओं को धीरे-धीरे सामने की ओर नीचे ले जायें।
3. घुटने सीधा रखते हुए दोनों हाथों को पैरों के बराबर जमीन पर टिका दें।

स्थिति चार

1. श्वास छोड़ते हुए 'ॐ भानवे नमः' का उच्चारण करते हुए दाहिने पैर को यथासम्भव पीछे की ओर ले जायें।
2. पैर के अँगूठे को तथा घुटने को जमीन पर टिकाकर अपने सिर को ऊपर उठायें।

स्थिति पाँच

1. श्वास को रोक कर बांये पैर को भी दाहिने पैर की तरह पीछे ले जायें। 'ॐ खगाय नमः' का उच्चारण करें।
2. पैर के अँगूठे तथा हथेलियाँ जमीन को स्पर्श कर रही होंगी तथा शरीर को कन्धों से पैरों की तरफ ढलान में रखें।

स्थिति छह

1. श्वास छोड़ते हुए नीचे की ओर जायें तथा 'ॐ पुष्णेय नमः' का उच्चारण करें।
2. छाती ओर अँगूठों का स्पर्श भूमि से हो जाये, पेट जमीन से न टिकायें।

स्थिति सात

1. श्वास लेते हुए 'ॐ हिरण्यगर्भाय नमः' उच्चारण करते हुए शरीर के अग्र भाग को हथेलियों के बल उठायें और आँखों की दृष्टि आकाश की ओर करें।
2. घुटने जमीन पर स्पर्श करें।

स्थिति आठ

1. श्वास छोड़ते हुए 'ॐ मरीचयै नमः' का उच्चारण करते हुए सारे शरीर को पिरामिड की तरह ऊपर की ओर उठाइये।
2. सिर बाँहों के मध्य में छाती को छूते हुए नाभि को देखने की कोशिश करें।

स्थिति नौ

1. श्वास भरते हुए 'ॐ आदित्याय नमः' का उच्चारण करें।
2. बायें घुटने को जमीन पर रखते हुए दाहिने पैर को सामने लाकर दोनों हाथों के बीच में रखिये।

स्थिति दस

1. श्वास छोड़ते हुए बांये पैर को सामने लाकर दाहिने पैर के साथ मिलाइये। 'ॐ सावित्र्ये नमः' का उच्चारण करें।
2. माथे को घुटने से लगाने की कोशिश करें।
3. पैर सीधे रखें।

स्थिति ग्यारह

1. श्वास लेते हुए दोनों हाथों को पीछे ले जायें। 'ॐ अर्काय नमः' का उच्चारण करें।
2. शरीर को तानिये तथा घुटनों को सीधा करें।

स्थिति बारह

1. श्वास छोड़ें।
2. सीधे खड़े होकर हाथ जोड़ते हुए सूर्य भगवान का 'ॐ भास्कराय नमः' का उच्चारण करते हुए नमस्कार करें।

सावधानियाँ

1. हर्निया, उच्च रक्तचाप तथा गर्भधारण करने वाली महिलाएँ तीन माह के बाद इसे न करें।

लाभ

1. यकृत व प्लीहा के लिये लाभदायक।
2. फेफड़े व गुर्दे के लिये अच्छा व्यायाम है।
3. पेट पर पड़ी चर्बी कम होती है।
4. अनिद्रा तथा अतिनिद्रा दूर होती है।
5. मानसिक तनाव दूर होता है।
6. रक्त शुद्ध होता है।
7. कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।

शवासन

सूर्य नमस्कार के बाद कुछ देर शवासन करें।

❑❑❑

10

मनोरंजनात्मक एवं शैक्षणिक खेल

मनोरंजनात्मक अर्थात् जो मन को अच्छा लगता हो, या मन को प्रसन्न करता हो। समय का सदुपयोग खेल, नृत्य, गायन या दूसरी मनोरंजनात्मक क्रियाओं को सम्पन्न करके किया जा सकता है। कड़ी व कठिन मेहनत की क्रियाओं को करने के पश्चात् बालक कुछ ऐसा करना चाहता है, जिससे उसका मनोरंजन हो और वह आन्तरिक प्रसन्नता भी प्राप्त कर सके। इसके साथ ही कठिन कार्य करने में जो शक्ति खर्च होती है, उसे वह इन मनोरंजनात्मक क्रियाओं द्वारा पुनः प्राप्त कर सके।

खेल व मनोरंजन बालक के सर्वांगीण विकास के लिए अनिवार्य क्रियाएँ हैं। मनोरंजन में लोकनृत्य, लोकगीत, लेजिम व डम्बल आदि ऐसी क्रियाएँ हैं जो ताल, लय, शान्ति व प्रसन्नता प्रदान करती हैं। लोकनृत्य व लोकगीत हमारी संस्कृति व सभ्यता के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। नृत्य में केवल कला का प्रदर्शन ही नहीं होता वरन् उसमें शारीरिक गठन के विकसित होने का पर्याप्त अवसर भी है। लय के साथ नृत्य के कदम व उन कदमों के साथ शरीर का संचालन शरीर का पूर्ण व्यायाम है। इससे नई स्फूर्ति आती है और आत्मविश्वास का विकास भी होता है। नृत्य हमें भावों की अभिव्यक्ति करना तो सिखाते ही हैं, साथ ही शान्ति व एकाग्रता को भी बढ़ाते हैं। इससे माँसपेशियों में लचक आ जाती है और शरीर हल्का व तनावरहित हो जाता है। इसी प्रकार गायन फेफड़ों के लिए अच्छा व्यायाम है। इनमें आरोह-अवरोह फेफड़ों में ऑक्सीजन लेने की क्षमता को बढ़ाता है। लेजिम व डम्बल नृत्य का ही एक भाग है। ताल व लय के साथ की जाने वाली क्रियाओं से बालक आनन्द व ऊर्जा प्राप्त करता है।

शैक्षणिक खेल हम उन्हें कह सकते हैं, जिनके माध्यम से खेलों व उनकी तकनीक के बारे में जानकारी मिलती हो तथा मनोरंजन भी होता हो। अध्यापक खेलों की तकनीक को सिखाने के पश्चात् कुछ शैक्षणिक खेलों का चयन व निर्माण करता है, जिससे बालक ऊर्जावान होकर खेल के प्रति और भी अधिक आकर्षित हो जाता है। प्रतियोगिता सदा मन में उत्साह व क्षमता को बढ़ावा देती है। अधिकतर शैक्षणिक खेल प्रतियोगिताओं पर आधारित होते हैं।

1. लोकनृत्य

राजस्थान पारम्परिक कला व संस्कृति का घर है। यहाँ जो लोकगीत हम गाते हैं, उस पर नृत्य भी करते हैं। यहाँ नृत्य सामूहिक होते हैं। इनमें सर्वाधिक प्रचलित घूमर नृत्य व गीत हैं। यह मारवाड़ की ओर गाया जाने वाला नूर (घूमर) का गीत है। बालिकाओं व स्त्रियों द्वारा नृत्य किया जाता है। यह मारवाड़ की स्त्रियों का सामूहिक गीत है–

सागर पाणीड़े नै जाऊँ सा, हो नज़र लग जाय।
म्हारी हिंगलू री टीको रो, रंग उड़ जाय॥
म्हारी सोसन्या साड़ी रो, रंग उड़ जाय। सागर.....
म्हारी पतली कमर ढोला, लुल-लुल जाय॥
म्हारी सांमली हवेली वालो, लारे लग जाय।
सागर पाणीड़े नै जाऊँ सा, हो नज़र लग जाय।

डाँडिया-गैर उदयपुर में गाये जाने वाले लोकनृत्य व गीत हैं। ये नृत्य धीमी गति से प्रारम्भ होकर पूरी रफ्तार में आते हैं। स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर समूह में नृत्य करते हैं। गीत है–

साले-साले रे, अरे हारे फोड़ा घाले रे,
नणद बाई रा बीर, काँटो घण ने साले रे,
चंदा तो थारे चानणे, अरे वा-वा-2
पाणीड़े ने गई रे तालाब, काँटो साले रे
मारग मारग जावती, अरे वा-वा-2
उजड़ पड़ गयो पाँव, काँटो साले रे
काँटो तो लाग्यो केर को, अरे वा-वा-2
खटक्यों रे पेड़ रे मांय, कांटो साले रे
पुण वारो काँटो काड़सी, अरे वा-वा-2

राजस्थान के जयपुर क्षेत्र में यह मधुर लोकगीत व लोकनृत्य अत्यन्त प्रचलित है, जो सावन के महीने में झूला झूलती महिलाएँ गाती हैं–

बन्ना रे, बागाँ में झूला डाल्यां
म्हारी बन्नीणे, म्हारी लाड़ी ने
झूलण दीजो, बन्ना गेंद गजरां

बन्ना रे, जयपुरिया में जाइजो
म्हारी बन्नी ने, म्हारी लाड़ी ने
रखड़ी लाइजो, बन्ना गेंद गजरा
बन्ना रे कोटा-बूँदी जाइजो
म्हारी बन्नी ने, म्हारी लाड़ी ने
लहरियो लाइजो, बन्ना गेंद गजरा
बन्ना रे, चूड़ीगर रे जाइजो
म्हारी बन्नी ने चुड़लो लाइजो, बन्ना गेंद गजरा

प्रचलित लोकगीतों के बोल एवं भावों के अनुसार शिक्षक बालक-बालिकाओं को मुख भंगिमा व शारीरिक क्रियाओं द्वारा गीत व नृत्य को सिखाएँगे।

बालक गीत के भाव के अनुसार हाथ, पैर, कमर व गर्दन की क्रियाओं का सम्पादन इस तरह करेंगे कि लोकगीतों की स्वाभाविकता व संस्कृति को सीखते हुए शारीरिक मुद्राओं द्वारा शरीर के विकास में सहयोग देंगे। स्थानीय विद्यालयों एवं स्थान को ध्यान में रखते हुए प्रयत्न करेंगे कि अधिक से अधिक बालक सामूहिक नृत्य करें।

2. लेजिम नृत्य

लेजिम पकड़ :– लेजिम की छोटी गुल्ली दायें हाथ में तथा डंडा बायें हाथ में और लेजिम को पकड़ कर रखना।

स्थिति :– लेजिम को आगे सामने उछाल कर, बड़े डंडे को बायें हाथ में लम्बाकार पकड़ना। छोटी गुल्ली डंडा के समानान्तर मिली हो।

पहली क्रिया

1. छोटी गुल्ली दाहिनी ओर खोलना।
2. वापिस बड़े डंडे के साथ ताल व लय के साथ मिलाना।

दूसरी क्रिया

1. छोटी गुल्ली दाहिनी ओर खोलना।
2. वापिस बड़े डंडे के साथ ताल व लय के साथ मिलाना।
3. लय के साथ छोटी गुल्ली के धड़ के साथ मिलाना।
4. लय के साथ वापिस बड़े डंडे के साथ मिलाना। 1 से 4 बार 16 की गिनती तय करें।

तीसरी क्रिया

स्थिति :– कूदकर पैर खोलना।

1. सामने से कमर मोड़कर लेजिम को दायीं ओर खोलना, छोटी गुल्ली नीचे की ओर रहेगी।
2. कमर सीधी करके लय के साथ लेजिम सामने बजाना।
3. सामने से कमर मोड़कर लेजिम को बायीं ओर खोलना।
4. कमर सीधी करके लय के साथ लेजिम सामने बजाना। कूद कर वापस अपनी स्थिति में आना, 1 से 4 बार 16 की गिनती तय करें।

चौथी क्रिया

1. लेजिम मुँह के सामने खोलना।
2. वापिस सामने लय के साथ लेजिम बजाना।
3. हाथों को सिर के ऊपर घुमाकर लेजिम खेलना।
4. सामने लाकर लय के साथ लेजिम बजाना। 1 से 4 बार 16 की गिनती में करें।

पाँचवीं क्रिया

स्थिति :– ताल व लय के साथ बायें घुटने को समकोण में उठायें, पाँव जमीन की ओर हों। लेजिम को दोनों हाथों से लम्बाकार पकड़ें।

1. बायाँ पैर नीचे लाकर बायीं ओर नीचे झुक जाओ और बायीं ओर लेजिम खोलो। लेजिम को नीचे जमीन से 15 से.मी. ऊपर जमीन के समानान्तर रखो। हाथ सीधे हों।
2. लेजिम को शुरू की अवस्था में ले जाओ, साथ ही दायाँ घुटना इस प्रकार उठाओ कि पंजा जमीन की ओर हो।
3. दाहिने पैर को आरम्भ की अवस्था में ले आओ, दाहिनी ओर नीचे झुको और दाहिनी ओर लेजिम खोलो।
4. वापिस पूर्व स्थिति में आओ। 1 से 4 बार 16 की गिनती में करें।

छठी क्रिया

स्थिति :– लेजिम दायीं ओर कमर के पास सामने, बड़ा डंडा ऊपर बायें हाथ में, छोटी गुल्ली को दाहिने हाथ में पकड़े हुए डंडे से क्रॉस करके लगाना।

1. दायीं ओर कमर को झुकाकर, दायें पैर के सामने लेजिम को खोलना।

2. वापिस दायीं कमर के पास लेजिम लय के साथ बजाना।
3. बायीं ओर कमर को झुकाकर बायें पैर के सामने लेजिम को खोलना।
4. वापिस बायीं कमर के पास लेजिम लय के साथ बजाना।
5. दोनों हाथों को घुमाकर सिर के ऊपर ले जाते हुए लेजिम को खोलना।
6. ताल व लय के साथ लेजिम सिर के ऊपर बजाना।
7. दायीं ओर कमर को झुकाकर दायें पैर के सामने लेजिम को खोलना।
8. वापिस दायीं कमर के पास लेजिम ताल व लय के साथ बजाना।

डम्बल क्रियाएँ

स्थिति :– सावधान। डम्बल दोनों हाथों में पकड़ना। (1 से 8 तक की क्रियाओं में यही स्थिति रहेगी)

पहली क्रिया

1. ताल के साथ डम्बलों को भुजा के ऊपर ले जाते हुए बजाना। मुट्ठी सामने की ओर बन्द रहेंगी।
2. वापिस भुजा को साइड से नीचे लाते हुए सावधान की स्थिति में आना। यह क्रिया 1 से 2 गिनती में 8 बार 16 की गिनती तक करेंगे।

दूसरी क्रिया

1. डम्बल सहित दोनों भुजाओं को ऊपर ले जाते हुए सिर के ऊपर बजाना। मुट्ठी सामने की ओर बन्द हो।
2. भुजा वापिस साइड से लायेंगे, जांघ के सामने डम्बल बजाना।
3. भुजा के ऊपर ले जाते समय नं. 1 की स्थिति में रहेंगे।
4. वापिस अपनी स्थिति में आना। यह क्रिया 1 से 4 बार 16 की गिनती में करेंगे।

तीसरी क्रिया

1. ताल के साथ कूद कर दोनों पैर दायें-बायें फैलाना, डम्बल सिर के ऊपर बजाना, भुजा ऊपर सीधी रहें।
2. कमर नीचे मोड़ते हुए दोनों टाँगों के बीच डम्बल बजाना, निगाह सामने व घुटने मुड़े नहीं।
3. वापिस डम्बल ऊपर बजाना।
4. कूदकर सावधान की स्थिति में आना। यह क्रिया 1 से 4 बार 16 की गिनती में करेंगे।

चौथी क्रिया

1. ताल के साथ कूदकर दोनों पैर बायें फैलाना तथा डम्बल सिर के ऊपर बजाना, भुजा ऊपर सीधी होंगी।
2. वापिस कूद कर सावधान की स्थिति में आना।
3. दोनों भुजा ऊपर ले जाते हुए डम्बल सिर के ऊपर बजाना।
4. बायीं टाँग ऊपर ले जाते हुए डम्बल सिर के ऊपर बजाना।
5. दोनों भुजा ऊपर ले जाते हुए डम्बल सिर के ऊपर बजाना।
6. दायीं टाँग ऊपर ले जाते हुए डम्बल मुड़ी टाँग के नीचे बजाना।
7. कूदकर सिर के ऊपर बजाना। दोनों पैर दायें-बायें फैलाना।
8. कूदकर पुनः सावधान की स्थिति में आना। 1-8 बार करते हुए दो बार करना।

पाँचवीं क्रिया

1. ताल से कूदकर बायीं टाँग आगे रखते हुए दायीं टाँग अपनी जगह। डम्बल सिर के ऊपर बजाना।
2. डम्बल आगे सामने लाते हुए बायीं टाँग के घुटने के सामने बजाना।
3. भुजा ऊपर लाना, डम्बल सिर के ऊपर बजाना।
4. कूदकर सावधान की स्थिति में आना।
5. 6 से 8 तक दायीं टाँग आगे लाकर पूर्वानुसार क्रिया करना। गिनती 1 से 8 तक दो बार करके 16 की गिनती तक करना।

छठी क्रिया

1. ताल से दायीं टाँग को बायीं टाँग के सामने से, बायीं ओर पंजे पर रखना तथा बायीं जांघ के सामने डम्बल बजाना, भुजा सीधी रहेगी।
2. वापस सावधान की स्थिति में आना।
3. बायीं टाँग को दायीं टाँग के सामने से दायीं ओर पंजे पर रखना, दायीं जाँघ के सामने डम्बल बजाना, भुजा सीधी रखना।
4. वापिस सावधान की स्थिति में आना। क्रिया 1 से 4 की गिनती में 4 बार करना। 16 की गिनती तक करना।

सातवीं क्रिया

1. क्रिया नं. 6 को 1-4 तक की गिनती तक ताल एवं लय के साथ कूदकर करना।

आठवीं क्रिया

1. बायीं ओर घूम कर बायाँ पैर आगे दांया अपनी जगह, सिर के ऊपर डम्बल बजाना, भुजा ऊपर सीधी, मुँह बायीं ओर।
2. दांये पैर को बांये के साथ मिलाना और डम्बल जांघ के सामने बजाना।
3. फिर बायीं ओर घूमना, डम्बल सिर पर बजाना।
4. नं. 2 की स्थिति में डम्बल बजाना।
5. फिर बायीं ओर घूमना, बांया पैर आगे, दायां पीछे पंजे पर, डम्बल जाँघ के सामने बजाना।
6. डम्बल नीचे सामने बजाते समय सावधान होना।
7. फिर बायीं ओर घूमते, बायाँ पैर आगे, दायाँ पीछे पंजे पर, डम्बल सिर पर बजाना।
8. 8 की गिनती पर दांया पैर बांये पैर से मिलाना, सावधान की स्थिति में आना। 1 से 8 की गिनती तक बायें से एक पूरा चक्कर लगाकर शुरू की स्थिति में आना। यही क्रिया 1-8 तक दायें से बायें घूमते हुए करना।

लघु और उत्थानक खेल
(Lead up Games)

बालकों में शारीरिक कौशल, मानसिक दक्षता, सामाजिक गुण तथा इसके साथ प्रतियोगिता के लाभों का विकास हो सके, इसके लिए छोटे खेल तथा उत्थानक खेलों की आवश्यकता पड़ती है। हमारे देश में भौगोलिक परिस्थितियाँ अलग-अलग प्रकार की होती हैं, जैसे कभी बरसात अधिक होती है तो कभी गर्मी अधिक होती है, तो कभी सर्दी अधिक होती है। अतः बालकों की खेल प्रवृत्ति की पूर्ति के लिए कभी-कभी कक्षा में खेल करवाना आवश्यक होता है, जिससे उनका विकास सही प्रकार से हो सके।

लघु खेल

1. अन्दर-बाहर

खेल के नियम :– इस खेल में कक्षा के समस्त विद्यार्थियों को एक गोल घेरे के अन्दर खड़ा किया जाता है। घेरे का आकार बालकों की संख्या के आधार पर होगा। अध्यापक बालकों पर सम और विषम संख्याओं का प्रयोग करेगा अर्थात् एक संख्या पर अन्दर और दो पर बाहर। इसी तरह तीन पर अन्दर और चार पर बाहर।

अध्यापक के सम-विषम संख्या बोलने पर जो बालक गलती करेगा, उसे बाहर निकाला जावेगा। यह क्रम उस समय तक चलेगा। जब एक बालक रह जाता है।

खेल की सावधानियाँ :–

1. केवल दो अंकों की सम अथवा विषम संख्याओं का ही प्रयोग होगा।
2. घेरे के अन्दर उछलना आवश्यक है।
3. कोई एक-दूसरे को धक्का नहीं देगा।
4. सम अथवा विषम संख्या के आदेश पर कोई विद्यार्थी गलत कार्य करता है तो उसको बाहर निकाल दिया जावेगा।

निर्णय :– अन्त में बचने वाला विद्यार्थी विजेता होगा।

2. छड़ी को रखना

खेल के नियम :– घेरे के अन्दर कक्षा के विद्यार्थियों को खड़ा किया जावेगा। एक विद्यार्थी के हाथ में छड़ी रहेगी जो क्रमशः तेजी से अपने बायीं तरफ के विद्यार्थी को देगा। कक्षा-शिक्षक के आदेश पर छड़ी आगे देना रुक जावेगा। जिसके हाथ में छड़ी रह जायेगी, उस विद्यार्थी को बाहर निकाल दिया जावेगा। पुनः पहले वाली प्रक्रिया प्रारम्भ होगी। निश्चित अवधि तक यह क्रिया चलती रहेगी।

खेल की सावधानियाँ :–

1. छड़ी बायीं तरफ दी जावेगी।
2. एक हाथ का प्रयोग किया जावेगा।
3. शिक्षक के आदेश पर छड़ी देना रोका जायेगा।

निर्णय :– जो खिलाड़ी अन्त में बचता है (जिसके हाथ में छड़ी न हो) वही विजेता घोषित होगा।

3. खजाना

खेल के नियम :– इस खेल में 20X20 मीटर वर्गाकार मैदान को दो बराबर भागों में बाँट दिया जाता है। मैदान के दोनों ओर पीछे की लाइन पर एक मीटर व्यास का घेरा बनाया जावेगा, जिसमें 10 ईंट या लकड़ी के टुकड़े रखे जावेंगे। कक्षा को दो भागों में विभाजित किया जावेगा जो मैदान के अन्दर अलग-अलग भागों में खड़े हो जायेंगे। अध्यापक के आदेश पर एक दल दूसरे दल के खजाने से घेरे के अन्दर लकड़ी के टुकड़े (धन) लेकर अपने खजाने में रखने का प्रयास करेंगे।

खेल की सावधानियाँ :–

1. एक बार में केवल लकड़ी को एक दल अपने खजाने में ले जा सकता है।

2. टुकड़े ले जाने के बाद पुनः लौटा दिया जावेगा एवं विपरीत दल को (ले जाने वाले दल को) 2 अंक दिया जावेगा।

निर्णय :– जो दल अधिक अंक अर्जित करेगा, उसे विजेता घोषित किया जायेगा।

4. शेरों का शेर

खेल के नियम :– सम्पूर्ण विद्यार्थियों को दो बराबर दलों में बाँट दिया जाता है। दोनों दलों द्वारा एक-एक शक्तिशाली विद्यार्थी एक-दूसरे के घेरे के अन्दर रखते हैं। शिक्षक के आदेश पर अन्दर का विद्यार्थी घेरे को तोड़कर बाहर निकलने का प्रयास करता है। खेल निर्धारित समय तक चलता है।

खेल की सावधानियाँ :–

1. यदि कोई विद्यार्थी घेरा तोड़कर बाहर निकलता है, तो उसे 5 अंक दिये जायेंगे।
2. प्रत्येक विद्यार्थी को अवसर प्रदान किया जायेगा।

निर्णय :– जिस दल ने अधिक अंक अर्जित किये हों, उसे विजेता घोषित किया जायेगा।

उत्थानक खेल
(Lead up Games)

1. मारो तो पावो

खेल का विवरण :– इस खेल में मैदान के मध्य में दो मीटर व्यास का एक घेरा खींचा जाता है, जिसके मध्य एक डिब्बा रख देते हैं। घेरे के मध्य बिन्दु से लगभग 20 मीटर की दूरी पर एक सरल रेखा खींच दी जाती है। शिक्षक के आदेश पर प्रत्येक विद्यार्थी क्रमशः इसी रेखा पर से बॉल के द्वारा डिब्बे को मारने का प्रयास करेगा। प्रत्येक विद्यार्थी को तीन अवसर प्रदान किए जायेंगे।

नियम :–

1. यदि डिब्बा घेरे के बाहर निकल जायेगा, तो विद्यार्थी को 2 अंक दिये जायेंगे।
2. दौड़कर बॉल को मारना वर्जित है।

2. रुक कर देखो

खेल का विवरण :– इस खेल के अन्दर 10X10 मीटर वर्गाकार मैदान को बराबर दो भागों में बाँट दिया जावेगा। इसी प्रकार से कक्षा के विद्यार्थियों को दो

बराबर दलों में बाँट लिया जावेगा जो मैदान के दोनों भागों में खड़े रहेंगे। शिक्षक के आदेश पर एक दल के क्षेत्र में विपक्ष का एक विद्यार्थी प्रवेश करता है एवं बिना मुँह खोले व बिना आवाज के घूमता रहेगा और विद्यार्थियों को छूने का प्रयास करेगा। इसी प्रकार से पुनः दूसरे दल के विद्यार्थी भी क्रिया करेंगे। खेल निश्चित समय तक चलता रहेगा।

नियम :–

1. एक विद्यार्थी को छूने पर विपक्ष को एक अंक मिलेगा।
2. यदि छूने वाले विद्यार्थी के मुँह का दाँत दिखाई पड़ता है तो विपक्ष को एक अंक मिलेगा।

निर्णय :– सर्वाधिक अंक अर्जित करने वाले दल को विजेता घोषित किया जायेगा।

3. दीवार पर फैंको

खेल का विवरण :– इस खेल में कक्षा के विद्यार्थियों को एक पंक्ति में किसी दीवार से 10 मीटर की दूरी पर खड़ा किया जायेगा। दीवार पर जमीन से आठ फुट की ऊँचाई पर 1X1 फुट का एक वर्ग तैयार किया जावेगा। शिक्षक के आदेश पर प्रत्येक विद्यार्थी क्रमशः दीवार पर अंकित जगह के अन्दर बॉल को अपर हैंड पास के द्वारा बिना जमीन पर गिरे उछालता रहेगा। अधिक से अधिक देर तक इसी क्रिया को प्रत्येक विद्यार्थी करने का प्रयास करेंगे। यह कार्य निश्चित अवधि तक चलेगा।

नियम :–

1. प्रत्येक विद्यार्थी दीवार से दस फुट की दूरी से वॉलीबॉल को पूर्व निश्चित घेरे के अन्दर फेंकेंगे।
2. प्रत्येक व्यक्ति का स्कोर अलग-अलग लिया जायेगा।

निर्णय :– सर्वाधिक स्कोर वाले विद्यार्थी को कुशल खिलाड़ी घोषित किया जायेगा।

4. बॉल फैंको

खेल का विवरण :– इस खेल में कक्षा के सम्पूर्ण विद्यार्थियों को एक घेरे के अन्दर की रेखा पर खड़ा किया जावेगा। गोले का व्यास 15 मीटर होगा। गोले के अन्दर मध्य में खड़ा विद्यार्थी शिक्षक के आदेश पर हॉकी से बॉल फेंकेगा और सभी खिलाड़ी अपनी हॉकी से बॉल को सही ढंग से रोकेंगे।

नियम :–

1. घेरे में उतने ही विद्यार्थियों को खड़ा करें, जितनी हॉकी आपके पास उपलब्ध हों।
2. गेंद को रोककर पुनः सही ढंग से मध्य में खड़े विद्यार्थी को पास देना चाहिए।
3. सभी विद्यार्थी घेरे पर दौड़ते रहें।

मनोरंजनात्मक क्रियाएँ

मनोरंजन से तात्पर्य मनः+अनुरंजन है अर्थात् मन की प्रसन्नता को मनोरंजन कह सकते हैं। मनुष्य स्वस्थ रहने के लिये विभिन्न योगासन, व्यायाम एवं अंग संचालन की क्रियाएँ करता है। उसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य के लिये मनोरंजक क्रियाकलापों का समावेश है, जो कि व्यक्ति के सम्पूर्ण स्वास्थ्य विकास में सहायक हैं।

आधुनिक विकास के युग में फुर्सत के समय का सदुपयोग करके बढ़ते हुए मानसिक तनाव, शारीरिक दुर्बलता और रोगों के निवारण के रूप में मनोरंजन एक महत्त्वपूर्ण औषधीय साधन है। इस प्रकार व्यक्ति द्वारा दैनिक कार्य के पश्चात् उपलब्ध समय को अपनी स्वाभाविक इच्छा एवं प्रसन्नता से रचनात्मक कार्यों को करने में निजी आनन्द को प्राप्त करना ही मनोरंजन है।

बालक द्वारा की गई प्रत्येक क्रिया उसका खेल है, क्योंकि वह उसमें स्वतन्त्रता, स्व–प्रेरणा तथा आत्मानन्द की अनुभूति करता है। यदि किसी क्रिया में दबाव अनुभव करता है तो वह मनोरंजन नहीं है। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि बच्चों में अनुकरण की प्रवृत्ति होती है और वे जल्दी ही अनुकरण द्वारा किसी भी कार्य को सीख जाते हैं। इस प्रकार संगीत के माध्यम से मनोरंजन व व्यायाम जल्दी ही सीख लेते हैं। रामलीला, नृत्य, अभिनय आदि स्वेच्छा से फुर्सत के क्षणों में करना मनोरंजन है। उसमें उनके जीवन में नवीन शक्ति का संचार होता है। वह पूर्ण उत्साह से अन्य कार्यों को करने की क्षमता अर्जित कर लेता है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि प्रसन्नता द्वारा कई रोगों का निवारण किया जा सकता है, जिसका सकारात्मक प्रभाव रोगियों के स्वास्थ्य पर पड़ता है। मनोरंजन आयोजन की दृष्टि से हम सामाजिक समुदायों को तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं–

मनोरंजन– समुदाय, वर्ग एवं क्षेत्र अनुसार श्रेणियाँ :–

1. क्षेत्र आधारित–शहरी एवं ग्रामीण समुदाय।
2. व्यवसाय आधुरित–धनी, मध्यम और निर्धन।

3. आयु, लिंग भेद आधारित–बालक, किशोर, प्रौढ़ एवं वृद्ध।

शहरी समुदाय

खेल क्रीड़ा सम्बन्धी :– खेल प्रांगण, धावन–पथ, जिम्नेज़ियम, तरणताल, स्टेडियम, व्यायामशालाएँ, योगाभ्यास केन्द्र, शरीर सौष्ठव केन्द्र आदि सुविधाएँ।

साहित्य कला सम्बन्धी :– पुस्तकालय, वाचनालय, कवि सम्मेलन, साहित्यिक चर्चाएँ आदि।

आमोद-प्रमोद एवं भ्रमण सम्बन्धी :– सिनेमा, वीडियो फिल्म एवं खेल, जादूगरों के तमाशे, खेल प्रतियोगिताएँ, उत्सव, मेले, त्यौहार, बाग–बगीचे, चिड़ियाघर, पर्वतीय स्थल, शिविर, पद यात्रा, पर्वतारोहण, वन भ्रमण, नदी सैर, ऐतिहासिक और धार्मिक स्थलों की सैर आदि।

दृश्य श्रव्य साधन :– टेलीविजन, रेडियो, रिकार्ड प्लेयर आदि मनोरंजन के भरपूर साधन हैं।

ग्रामीण समुदाय

देशी खेल क्रीड़ाएँ :– कबड्डी, कुश्ती, खो–खो, शतरंज, चौपड़, ताश। इसके अतिरिक्त आँख–मिचौली, मारदड़ी, देशी अखाड़ों के व्यायाम, तैराकी, बैलगाड़ी दौड़, रस्साकसी आदि।

आमोद-प्रमोद :– मेले, त्यौंहार, उत्सव, नदी स्नान, मदारियों के खेल, सपेरा नृत्य, पशु दौड़, चौपाल बैठक, नटों के खेल आदि।

संगीत एवं नृत्य-नाटक आदि :– लोकनृत्य, लोकगीत, भजन, कीर्तन, रामलीला, नौटंकी नाटक, कठपुतली आदि।

संगीत एवं नृत्य मनोरंजन का श्रेष्ठतम साधन है। मनोरंजन आज के तनावपूर्ण जीवन में एक जीवनदायक शक्ति है। इसी दिशा में जगह–जगह हास्य क्लब खुल रहे हैं। जहाँ लोग मुक्त रूप से हँसकर तनावरहित रहने का प्रयास करते हैं। विभिन्न प्रकार के विश्रामयुक्त मनोरंजनों द्वारा मानसिक रोगों से छुटकारा मिलता है, आनन्द तथा आत्मसंतोष की प्राप्ति होती है और बालकों की अतिरिक्त शक्ति का सदुपयोग हो जाता है।

संगीत (नृत्य, ताल और लय) :– संगीत का मानव जीवन से अटूट सम्बन्ध है। जिस प्रकार मानव को जीवनयापन के लिए रोटी, कपड़ा और मकान की आवश्यकता है, उसी प्रकार संगीत को भी मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकता कहा जाता है। जब बालक जन्म लेता है तो सर्वप्रथम उसे मंगल गीतों का मधुर स्वर सुनाई देता है और जीवन की अंतिम यात्रा में भी घंटे घड़ियाल की ध्वनियाँ उस का साथ पंचतत्त्व में विलीन होने तक देती हैं।

संगीत का शाब्दिक अर्थ है, सम्यक गीत अर्थात् गीत जो सही प्रकार से गाया या बजाया गया है। स्वर, ताल और लय के साथ जो गीत मधुरता से गाया या बजाया गया हो, वही संगीत है। संगीत–गायन, वादन और नृत्य तीनों के योग से बना है। 'सामवेद' में ही आधुनिक भारतीय संगीत का बीज है।

विभिन्न शारीरिक अंगों के साथ आपसी समन्वय ही संगीत में लय और ताल है। स्वर और लय संगीत के दो आधार हैं। सृष्टि के कण–कण में भी लय विद्यमान है। आजकल वाद्यों का महत्त्व इतना बढ़ गया है कि इन के अभाव में संगीत के किसी भी कार्यक्रम की कल्पना नहीं की जा सकती है। जैसे–हारमोनियम, तबला, ढ़ोलक, पखावज़ आदि।

संगीत में स्वर भी प्रमुख है, किन्तु जिस समय किसी राग का विस्तार किया जाता है, उस समय आलाप, बोल, ज्ञान एवं सरगम आदि विभिन्न लयों में किए जाते हैं। लयहीन स्वर न तो श्रोताओं को आनन्द दे सकता है और न ही उसे कला की श्रेणी में ले सकते हैं।

सरगम :– कानों से सुनकर जो प्रिय लगे, वही श्रुति या संगीत है। यह श्रुतियाँ सात हैं– सा, रे, ग, म, प, ध, नि। हारमोनियम पर या किसी भी वाद्य यंत्र पर सबसे पहले उस राग या गीत से सम्बन्धित सरगम का ही अभ्यास करवाया जाता है।

नृत्य :– नृत्य भी सम्पूर्ण शरीर के लिए एक उपयोगी व्यायाम है। नृत्य ऐसा होना चाहिये, जो हमारा मनोरंजन तो करे ही, अच्छा व्यायाम भी हो जाए और आसानी से सीखा भी जा सके। नृत्य के अनेक प्रकार हैं–लोक नृत्य, वर्गाकार नृत्य, गोलाकार नृत्य, पंक्ति नृत्य आदि। बालक को नृत्य सिखाने से पहले ऐसे व्यायाम जो शरीर की कठोरता या जकड़न को लचीला बनाने में सहायक हों, जैसे आगे पीछे पैर रखना, क्रॉस करते पैर रखना, दिशा में कूदकर पैर रखना, कमर मोड़ना, घुमाना, भुजाओं की क्रिया, गर्दन की क्रिया आदि कराने चाहिये। पहले कमर पर हाथ रखकर केवल टाँगों का व्यायाम ही हो, फिर भुजा का समन्वय करके बच्चों में लय लाने का प्रयास किया जाए। यह मुद्राएँ शरीर की माँसपेशियों को मजबूत और लोच देने के साथ–साथ ही कमर और पेट के नीचे के भाग को भी मजबूत बनाती हैं। नृत्य से शरीर में रक्त–संचालन बेहतर बनता है, वहीं विषैले तत्त्व शरीर से बाहर निकल जाते हैं। इससे हृदय और फेफड़े भी मजबूत होते हैं।

ताल और लय :– ताल के 10 प्राण हैं। लय उनमें से एक है।

लय

गायन, वादन तथा नृत्य की क्रियाओं में जो समय लगता है, उस समय को ताल और गति को लय कहते हैं। लय एक समानान्तर चाल होती है। यह तीन प्रकार की होती है।

(1) विलम्बित लय, (2) मध्य लय, (3) द्रुतलय।

(1) विलम्बित लय :– बहुत ही धीमी गति में जब कोई गायन प्रस्तुत किया जाता है, जैसे राग में ख्याल गाया जाता है।

(2) मध्य लय :– यह धीमी गति और तेज गति का मध्य है, जिसमें शनैः-शनैः गायक की क्षमता के अनुसार लय को बढ़ाया जाता है।

(3) द्रुतलय :– यह बहुत ही चपल गति की लय है। राग का समापन (ख्याल के रूप में) तीव्र गति में स्वरों के बोल से होता है। तराना गायकी का रूप भी इसमें आ जाता है।

ताल

संगीत में ताल का महत्त्व विशेष रूप से है। जिस तरह जीने के लिये हवा, पानी की आवश्यकता है, उसी प्रकार संगीत और ताल का सम्बन्ध अटूट है। ताल संगीत की आत्मा है। जो ताल में नहीं होता है, वह बेताला ही कहलाता है।

कंठ और वाद्य संगीत में राग सिखाते समय, उस राग को तालमय बंदिश (स्वरों को स्वर लिपि सहित बद्ध करना) कहते हैं। प्रत्येक ताल के कुछ निश्चित बोल, ताली, खाली तथा मात्राएँ होती हैं। इससे गायक को सरलता से मालूम हो जाता है कि वह गाते समय किस मात्रा पर है। किसी भी संगीत सभा में ताल देने के लिए किसी न किसी वाद्य का प्रयोग अवश्य होता है, उदाहरणार्थ–

महिला संगीत में ढोलक एवं फाल्गुन के महीने में चंग पर ताल देकर झूम-झूम कर नाचती-गाती पुरुष टोलियाँ नजर आयेंगी।

ताल, संगीत का वह तत्व है, जिसके द्वारा श्रोता झूमकर हाथ से और कोई पैर को जमीन से लगाकर ताली बजाने लगता है। अन्ततः बिना ताल के संगीत और नृत्य सम्भव ही नहीं हैं। तालें निम्न हैं–

दादरा :– यह छह मात्रा की ताल है। इस ताल का प्रयोग भजन, गजल गीत आदि में अधिक होता है।

कहरवा :– यह 8 मात्र की ताल है। भजन, गीत, फिल्मी संगीत, गज़ल आदि में इसका प्रयोग अधिक होता है।

तीन ताल :– इस ताल में 16 मात्रा हैं। छोटे ख्याल, भजन आदि में प्रयोग किया जाता है।

रूपक ताल :– इस ताल में 7 मात्रा हैं। भजन, गीत आदि में प्रयोग किया जाता है।

दीपचंदी :– इस ताल में 14 मात्रा हैं। होली तथा ठुमरी गायकी में बजायी जाती है। इसे होली ताल भी कहते हैं।

झपताल :– इस ताल में 10 मात्रा हैं। नृत्य की संगत में भी इसका प्रयोग होता है और श्रृंगार रस की परिचायक है। इसमें गीत, गतें और ख्याल गाया जाता है।

एक ताल :– इस ताल में 12 मात्रा है। तराने आदि की गायकी में प्रयोग होता है।

चौताल :– इस ताल में 12 मात्रा हैं। यह ताल पख़ावज की प्रचलित ताल है। ध्रुवपद की गायकी में इसका अधिक प्रयोग है।

संगीत की उपयोगिता

1. संगीत मानसिक व शारीरिक तनाव कम करने में सहायक है।
2. संगीत से मानव की कार्यक्षमता व स्मरण शक्ति बढ़ती है।
3. संगीत न केवल आत्मा को शान्ति प्रदान करता है बल्कि परमात्मा की अनुभूति का सशक्त साधन है।
4. संगीत हमारे शरीर को स्फूर्तिमय बनाता है।
5. संगीत अर्न्तमुखी लोगों को बहिर्मुखी बनाने और उनके एकाकीपन और उदासी को दूर करने और उन्हें प्रफुल्लित करने में सहायक है।
6. संगीत का प्रभाव चराचर समस्त प्राणी जगत पर पड़ता है और इसके जादू से गाय और भैंसें अधिक दूध देने लगती हैं।

लोकगीत :– लोकगीतों का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। विभिन्न प्रान्तों के लोकगीतों में हमें वहाँ की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों की झाँकी देखने को मिल सकती है। जैसे राजस्थान के लोकगीतों में बादल, वीर दुर्गादास तथा वहाँ की वीरांगनाओं के बारे में गीत बहुत कुछ बतलाते हैं। इसी तरह बुंदेलखण्ड के लोक गीतों में बाज बहादुर, आल्हाउदल आदि, महाराष्ट्र के लोकगीतों में शिवाजी और पंजाब के लोकगीतों में महाराजा रणजीतसिंह एवं बैसाखी, छत्तीसगढ़ के लोकगीतों में सुआ गीत ज्यादा प्रचलित हैं।

विभिन्न त्यौहार, व्रत, उत्सव के अलग-अलग लोकगीत हैं। सन्तान के जन्म, लड़की को विदा करना, चक्की पीसते समय गाना, चरखा चलाते समय गाना, होली, दीवाली, चैती का गायन, चैत बैसाख और कजली का गायन, झूले के अवसर पर सावन में, रसिया और चंग फाल्गुन में काफी गाए जाते हैं। अलग-अलग प्रान्तों में अपनी-अपनी धुनें हैं।

❑❑❑

ISBN 978-81-8378-069-8
9 788183 780698

About the Author

Dr. Krishna Kant Sahu
Associate Professor & Asst. Director, ASPESS, Amity University

Date of Birth- 26 January, 1974

- Working as Associate Professor/Assistant Director at Amity School of Physical Education and Sports Sciences, Amity University from October, 2005 to December, 2015.

Areas of Teaching Proficiency include the following:

- Football
- Sports Management
- Interdisciplinary Approach through Sports.
- Physical Fitness, Sports Training and Conditioning Module
- Adventure Camps

EDUCATION AND CERTIFICATION

- **Doctor of Philosophy in Physical Education," *Role of Media and Sponsors in promotion of Soccer in India*"** LNIPE, Gwalior, 2005.
- **Master of Philosophy in Physical Education,**LNIPE,Gwalior,1999
- **Master of Physical Education** ,LNIPE,Gwalior,1998
- **Bachelor of Physical Education** ,.LNIPE,Gwalior,1996
- **National Educational Test (NET),** U.G.C., June1998.

GLOBE
ग्लोब पब्लिकेशन्स